CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजस्थान सरकार

प्रतिष्ठान पत्रिका

(मुनि जिनविजय विशेषांक)

1988-89

प्रधान सम्पादक
डॉ. पद्मधर पाठक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

8·1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजस्थान सरकार

प्रतिष्ठान-पत्रिका

[वार्षिकी]

वर्ष 5 | 1988–1989 | अङ्क 4-5

(मुनि जिनविजय विशेषांक)

प्रधान सम्पादक
डॉ. पद्मधर पाठक
(निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
राजेन्द्र मार्ग, जोधपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूल्य रु० 64-00

सम्पादन–मण्डल :

* श्री ओंकारलाल मेनारिया
* डॉ० दत्तात्रेय बालकृष्ण क्षीरसागर
* श्री ओमप्रकाश शर्मा
* श्री ब्रजेशकुमार सिंह

मुद्रक :
कमल प्रिण्टर्स,
त्रिपोलिया बाजार,
जोधपुर.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रधान-सम्पादकीय

संस्कृत-काव्यों की परम्परा में कुछ काव्य इस प्रकार के हैं जिन्हें ऐतिहासिक-काव्य कहा जाता है—चूँकि वह राजा-महाराजा के शासनकाल से सम्बन्धित होता है—इसलिये वह ऐतिहासिक बन जाता है—परन्तु प्राय: उसका उद्देश्य अपने आश्रयदाता की प्रशंसा या महिमा का वर्णन करना होता है—इसलिये वह अतिशयोक्ति और कल्पनाओं से घिर जाता है—फलत: उसमें ऐतिह्य कम रहता है—उसकी घटनाओं को समकालीन प्रमाण मिलने तक सत्य मानने में अनेक बाधाएँ रहती है।

प्राय: हर रियासत में कवि और कलाकार नियुक्त होते रहे हैं—इसलिये हर राज्य से सम्बन्धित, उसके शासकों का गुणगान करने वाले काव्य भी उपलब्ध हुए हैं—जहाँ तक मारवाड़ में राज्याश्रय में लिखे गये संस्कृत काव्यों अथवा महाकाव्यों की परम्परा का सम्बन्ध है, महाराजा अजीतसिंह (1707-24) के काल में जगजीवन भट्ट के द्वारा रचे गये—अजीतोदय महाकाव्य से ही मारवाड़ की संस्कृत काव्यों की परम्परा का होना स्वीकार किया जाता रहा है।

परन्तु राठौड़-शासक राजा सूरसिंह (1595-1619) के काल के किसी माधव भट्ट नामक कवि के द्वारा लिखा गया सूरसिंह वंश प्रशस्ति काव्य उपलब्ध हो जाने से मारवाड़ की संस्कृत काव्यों की परम्परा की पूर्ववर्ती सीमा अनुमानत: 100 वर्ष अधिक प्राचीन हो जाती है। माधव भट्ट के द्वारा लिखी गयी यह सूरसिंह वंश प्रशस्ति—एक लघुकाव्य है—कवि ने चार खण्डों के स्थान पर इसे चार सर्गों में विभाजित किया है—प्रारम्भिक दो सर्गों में राठौड़ो की पौराणिक वंशावली के नाम गिनाने के पश्चात्—राष्ट्रकूटों की जोधपुर शाखा के सूरसिंह के पूर्वकालीन शासकों की कुछ घटनाओं का अत्यन्त संक्षेप में वर्णन कर कवि चौथे सर्ग में सूरसिंह से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन करना प्रारम्भ कर देता है—इनमें दक्षिण-भारत के कुछ प्रदेशों पर मुगल आधिपत्य स्थापित करने की सूरसिंह की सफलता प्रमुख है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

...

इतिहास की दृष्टि से इस पुस्तक की उपादेयता चर्चा का विषय हो सकती है परन्तु मारवाड़ के राष्ट्रकूट-शासकों से सम्बन्धित उपलब्ध होने वाले संस्कृत-अभिलेख की दृष्टि से यह काव्य अपने आपमें महत्वपूर्ण है।

प्रतिष्ठान की वार्षिकी "प्रतिष्ठान पत्रिका" में इस काव्य को प्रकाशित किया था, उसे पुस्तक के रूप में विद्वानों के हाथों सौंपते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। मे. कमल प्रिण्टर्स ने अपनी व्यस्तता के बावजूद इस पुस्तक के मुद्रण को अस्त-व्यस्त नहीं होने दिया—इसलिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

—पद्मधर पाठक
निदेशक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो शब्द

मुनि जिनविजयजी की स्मृति में पत्रिका का यह जन्मशती विशेषाङ्क प्रतिष्ठान के लिए श्राद्ध-कर्म सदृश है। उनके ऋण से हम इतने सस्ते में उऋण तो क्या हो स्कगे तो भी उनकी इस सचित्र जीवन-झाँकी का प्रकाशन महज कर्त्तव्य पालन न होकर सच्चे मन से जुटाई गई सामग्री है जिसे भरे मन से उन्हें याद करते-करते हम एकत्र करते रहे हैं।

मुनिजी महाराज के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व पर अनेक लेख अपनी-अपनी बात लेकर आगे सम्मिलित हैं। अति प्राचीन दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों का जो उद्धार उनके हाथों हुआ है, वह अविस्मरणीय रहेगा। इस दृष्टि से राहुलजी और मुनिजी में एक प्रकार की समानता पायी जाती है। इनका सैलानीपन ही नई से नई सामग्री की खोज में इन्हें थका नहीं सका। ताड़पत्रीय प्राचीन ग्रन्थों को प्रकाश में लाने में शायद मुनिजी सबसे आगे निकल जाते हैं।

मुनिजी से मेरा इतना अन्तरंग सम्बन्ध रहा है कि, कहाँ से प्रारम्भ कर कहाँ ठहरुँ, यह मेरे लिए दुष्कर हो जाता है। दूसरे, यदि मैं इन पुण्य-स्मृतियों को बाँटने लगा तो मेरी वह पूँजी समाप्त हो जायगी जिसके प्रति मुझे कंजूसी बरतनी ही चाहिये।

दिशा-ज्ञान के लिए अन्वेषक उन्हें भूले नहीं, यही मेरी हार्दिक कामना है।

पद्मधर पाठक
निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर

वि. सं. 2047, चैत्र, शु. 1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयानुक्रम

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
लगन तुम्हारी प्रशस्य	डॉ० नागरमल सहल	
1. मेरे प्रणाम : मेरे नमस्कार	पं० जनार्दन राय नागर	1-3
2. कर्मयोगी : मुनि जिनविजय	बलवन्तसिंह मेहता	4-7
3. राजस्थान के इतिहास को मुनि श्री जिनविजय की देन	डॉ० राजेन्द्रप्रकाश भटनागर	8-20
4. मुनि जिनविजय : कार्य तथा चिन्तन परम्परा	भँवरलाल सिसोदिया	21-26
5. मुनि जिनविजयजी : जीवन और कार्य	डॉ० भोगीलाल जे० साँडेसरा अनुवाद : डॉ० सत्यनारायण स्वामी	27-81
6. परिशिष्ट : हरिभद्रसूरि स्मारक के विषय में मुनिजी		82-86
7. राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ. गोपीनाथ शर्मा से एक भेंट	वार्ताकार : डॉ० डो० बी० क्षीरसागर	87-90
8. प्रसिद्ध इतिहासविद् श्री पृथ्वीसिंह मेहता से एक अन्तरंग वार्तालाप	भेंटकर्त्ता : श्री ओ३म्प्रकाश शर्मा	91-94
9. सर्वोदयी कार्यकर्त्ता श्री केसरपुरी गोस्वामी के साथ बातचीत के कुछ क्षण	वार्ताकार : डॉ० दामोदर शास्त्री	95-98
10. श्री लाभचन्द यति के साथ कुछ क्षण	भेंटकर्त्ता : श्री रतनलाल कामड़	99-100
11. द्वितीय अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचारक सम्मेलन : सभापति श्री मुनि जिनविजय का भाषण ता० 25-2-50		101-122
12. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, उदयपुर 1945 स्वागताध्यक्ष मुनि जिनविजयजी का वक्तव्य		123-140

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

13. एक संस्मरण : मुनि जिनविजय की आचार्य-धर्मिता — ओंकारश्री — 141-144

14. SCHOLAR WHO HELPS SPREAD WISDOM OF THE AGES — Prof. K.B. Vyas — 145-147

15. परिशिष्ट-1
मुनिश्री जिनविजयजी के कुछ महत्वपूर्ण पत्र : सहयोगियों के नाम — I से xviii

16. परिशिष्ट-2 — xix से xxiv
जिनविजय कृतित्व : एक दृष्टि

17. जिनविजय चित्रावलि

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगन तुम्हारी प्रशस्य

विद्या परा अपरा के धनी
अभ्युदय निःश्रेयस के हामी
सरस्वती-सुत ! एकनिष्ठ, स्वनिष्ठ
भाषाओं के मर्मी
कार्यकुशल ! काम में तत्पर, तल्लीन
बाधा न कर सकी बाधित ।

हर योग को बना सुयोग
बढ़े चले अभीक ।

साधुता की तलाश में
खरा ढूँढ़ा वैदुष्य
सहज लाँघ प्रान्त जाति के भेद
शोध का मार्ग
तुमने किया प्रशस्त ।

हस्तलिखित प्रतियाँ खोज-खोज
उनके सम्पादन-प्रकाशन का
बीड़ा उठाया तुमने ।

मेधावी, अध्यवसायी
लगन तुम्हारी प्रशस्य ।

चल मार्ग उसी पर
अधूरा तुम्हारा काम
डट कर करें सब पूरा
उसी तर्पण से तृप्त
होगी आत्मा तुम्हारी
वही बने
पाथेय हमारा !

—डॉ० नागरमल सहल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे प्रणाम : मेरे नमस्कार

पं० जनार्दनराय नागर

मुनिजी का परिचय राजस्थान विद्यापीठ कुल के कार्यकर्त्ताओं तथा मेवाड़ के साहित्यिक-सांस्कृतिक जगत् को माननीय बलवन्तसिंहजो मेहता द्वारा तब हुआ, जब हमें राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथमाधिवेशन के लिये योग्य तथा प्रेरणादायक प्रचेता-अध्यक्ष की अनिवार्य आवश्यकता हुई। राजस्थान विद्यापीठ (तत्कालीन नाम्ना हिन्दी विद्यापोठ उदयपुर) ने ही साहसपूर्वक राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन का आह्वान किया था। तब मेवाड़ राज्य ने गुजरात के हिन्दी-सेवियों और विश्रुत व्यक्तित्वों पर प्रतिबन्ध लगा रक्खे थे। भारत-ज्योति हरिभाऊ उपाध्याय, राष्ट्र-बान्धव जमनालालजी बजाज, क्षेमानन्दजी पर मेवाड़-राज्य की सीमा में प्रवेश पर प्रतिबन्ध था और हमने उदयपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन को स्थापना की यज्ञ-वेदी स्थापित की थी। मुनिजो के अध्यक्ष निर्वाचित होते ही इस यज्ञ में जैसे दिव्याग्नि प्रज्वलित स्वयं ही हो गई और मेवाड़ राज्य के उदार महाराणा श्री भूपालसिंहजी ने राजस्थान के साहित्य-जगत् के यशस्वी व्यक्तित्वों को मेवाड़ में आने दिया। फलत. सभी राजस्थान के हिन्दी के मुरब्बी वड़ील राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम मंच पर नक्षत्रों की भाँति सुशोभित हुए। मुनिजी इस यशस्वो पक्ति में देदीप्यमान हुए। राजस्थान हिन्दो साहित्य सम्मेलन के प्रधान मन्त्री के रूप में मैंने 1945 ई. तक कार्य किया और मुनिजी के आग्रह पर उसको छोड़कर मैं राष्ट्रभाषा हिन्दो के भविष्य को चिन्ता में लगा।

सन् 1946 ई. में राजस्थान विद्यापीठ कुल, उदयपुर द्वारा श्रद्धेय पूज्य बाबूजी पुरुषोतमदासजी टण्डन, दादा माखनलालजी चतुर्वेदी तथा हिन्दी जगत् के विशिष्ट बड़ों के आदेश पर हमने अखिल भारतीय हिन्दो साहित्य सम्मेलन, जयपुर अधिवेशन के बाद तुरन्त उदयपुर में 34वाँ अधिवेशन आहूत किया। तत्कालीन मेवाड़ राज्य ने पूरा सहयोग और समर्थन प्रदान किया। "मीरा नगरी" बसाई गई और इसी सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष मुनि जिनविजयजी को 700 सदस्यों की स्वागत-समिति

कुलपति, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने श्रद्धापूर्वक चुना। सभी जानते हैं कि मुनिजी लोक-मनीषी श्रद्धेय मुन्शीजी के मार्गदर्शन में ही चलते थे। मुन्शीजी इस ऐतिहासिक अधिवेशन के अध्यक्ष प्रतिष्ठित हुए और उन्हीं श्रीमान् की भव्य अध्यक्षता में उदयपुर-घोषणा गूंज उठी : हिन्दी राष्ट्रभाषा है; देवनागरी लिपि राष्ट्रलिपि है। बापू के हिन्दुस्तानी आन्दोलन को इस उदयपुर-घोषणा से धक्का ही नहीं लगा, समूचे राष्ट्र ने इस घोषणा को शान्तिपूर्वक नतमस्तक होकर सुना। उदयपुर-घोषणा मुनिजी के स्वागताध्यक्ष की प्रेरणा का उद्‌गार ही कही जायेगी। राजस्थान विद्यापीठ ने समस्त हिन्दी जगत् की साक्षी से भारत-राष्ट्र को सूचित किया कि हिन्दी का गौरव राष्ट्र-भाषा का है - राज्यभाषा की दरबारी प्रतिष्ठा का यह प्रश्न कभी नहीं रहा और नहीं रहेगा। इस ऐतिहासिक उदयपुर अधिवेशन में हमें मुनिजी के स्वागतपूर्वक हिन्दी जगत् के प्रत्येक विश्रुत, ख्यात, बहुश्रुत एवं विशिष्टतम व्यक्तित्व के श्रीचरण-प्रक्षालन का सौभाग्य नसीब हुआ। हिन्दी के नामधारी सम्पादक, कवि, राष्ट्रकवि, लेखक, युग-निर्माता लेखक, कवयित्री तथा महाकवयित्रियाँ सभी मीरां की पुनीत भूमि में पधारे तथा हम राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को स्वागत तथा सेवा का पुनीत अवसर प्रदान किया। "राष्ट्रभाषा हिन्दी है तथा राष्ट्र-लिपि देवनागरी है।" इस ऐतिहासिक उदयपुर घोषणा को हम राजस्थान के विशाल साहित्यिक-सांस्कृतिक स्तम्भ का दिव्य शिलालेख ही मानते हैं तथा मानेंगे। मुनिजी की इस विश्वामित्र के यज्ञस्वरूप "राष्ट्रभाषा" यज्ञ में बराबर वरिष्ठ आहुति रही।

राजस्थान में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के गठन तथा संचालन के मेरे अथक प्रयासों में मुनिजी का नाम मुझे धैर्य ही बंधाता रहा है। अन्त में, मुझे राजस्थान में साहित्य अकादमी की स्थापना के प्रयास में दत्तचित्त होना पड़ा तथा सन् 1958 ई. में राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर की राज्य द्वारा स्थापना संभव हो सकी। राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन प्रयत्न करने पर भी संभव नहीं हो सका तथा धीरे-धीरे राजस्थानी हिन्दी साहित्य सम्मेलन स्वयं ही अपनी विसंगतियों से बिखर गया। कोटा, चुरु, रतनगढ़ आदि स्थानों पर राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन के खंडहर दिखे। अतः विवश होकर मैंने अपने मित्र तथा साथी समाजसेतु श्रीमान् मोहनलालजी सुखाड़िया से राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर का वरदान ही माँगा। सुखाड़ियाजी ने यह वरदान देकर मुझे तथा राजस्थान के साहित्य जगत् के कमल-सरोवर की ही स्थापना संभव की है। यों राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन का यज्ञ पूर्ण हुआ। अवश्य विद्यापीठ का जन्म राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रसार द्वारा ही हुआ। हम जो सीधे राजनीतिक संघर्ष के क्षेत्र में विवशतापूर्वक उतर नहीं सकते थे, उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वतंत्रता के रचनात्मक कार्य संघर्ष का मार्ग पसन्द किया तथा "अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन" के सहस्रशीर्षा रोशनी में सन् 1937 ई. में प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा की रात्रि-कक्षाओं से हिन्दी विद्यापीठ का दीप जलाया, जो आज 50 वर्षों के संघर्ष के बाद राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर (डोम्ड टु बी युनिवर्सिटी) के स्वरूप में निखर कर स्वय ही प्रतिष्ठित हो गया है।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर तथा चन्देरिया के संस्थान द्वारा मुनिजी ने शान्त धीर गम्भीर सरस्वती पुत्र की भाँति साधनात्मक सेवा की है। जैन आगमों का मुनिजी ने पुनरुद्धार ही किया है। अन्तर्राष्ट्रीय विद्या जगत् के मुनि, मुनि जिनविजयजी राजस्थान ही नहीं समूचे भारत के सरस्वती पुत्रों की दिव्य पंक्ति में "साधना की मूर्त्ति के रूप में याद रहेंगे तथा प्राचीन साहित्य की शोध-खोज एवं प्राचीन वाङ्मय के परित्राण यज्ञ में लगे मनीषियों के लिये प्रेरणा के स्रोत तथा एक ज्वलन्त उदाहरण बने रहेंगे।

मेरे प्रणाम, मेरे नमस्कार !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्मयोगी : मुनि जिनविजय

बलवन्तसिंह मेहता

राजस्थान को तीन विभूतियों ने गौरवान्वित किया—म. म. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा, डॉ. डी. एस. कोठारी और स्व. मुनि जिनविजयजी। इनकी ख्याति विदेशों तक पहुँची हुई है।

स्व. मुनिजी इतिहास पुरातत्त्व और संस्कृति के महान् विद्वान् और मनीषी थे। इनके सान्निध्य में बैठकर जब कभी चर्चा हुआ करती थी तो उसमें अनेक विषय आते थे। मैं 1918 ई. में जब पूना में पढ़ता था तब उनके सम्पर्क में आया। तब वे साधु-वेष में थे। उन्होंने मेवाड़ से आये हम 4-5 विद्यार्थियों की सारी व्यवस्था कर दी। वही स्नेह अन्त तक बना रहा। मैं पूना में था तब लोकमान्य तिलक इनके आश्रम में आकर इनसे परामर्श लिया करते थे। भण्डारकर सस्थान के साथ तो उनका संबंध था ही लेकिन प्राय: सभी विद्वान् इनके यहाँ आते जाते रहते थे।

राजस्थान का पुरातत्त्व विभाग और सिंघी जैन ग्रंथमाला इनकी अमर-कृति है। इन्होंने शोध के क्षेत्र में नये साधन उपलब्ध कराये और नये शोधकर्ताओं को प्रेरणा दी।

किन्तु इनका प्रारम्भिक जोवन बड़ा ही संकटमय रहा। लाखों में बिरले हो उस घाटी को पार कर ऊपर उठ सकते हैं। जन्मना क्षत्रिय होने से वे संकटों का सामना करते रहे। स्वभाव से इतने क्रान्तिकारी थे कि कई बार जनता की परवाह न करते हुए उन्होंने साधु-वेष का परित्याग कर दिया मगर साधुत्व की मूल प्रवृत्ति को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा।

महात्मा गांधी के आह्वान पर वे डाण्डी यात्रा में सम्मिलित हुए और 6 मास की सजा भुगत ली। गाँधोजो ने जब विदेशी शिक्षा देने वाले महाविद्यालयों का बहिष्कार किया तो जगह-जगह पर राष्ट्रीय विद्यापीठ खोले

भू. पू. संसद सदस्य, उदयपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गये। स्व. मुनिजी को गुजरात विद्यापीठ का आचार्य बनाया गया। राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन में मुंशीजी के साथ इनकी प्रमुख भूमिका रही। मुंशीजी ही इन्हें भारतीय विद्याभवन ले गये। शान्तिनिकेतन उन्हें स्वास्थ्य के कारण रास नहीं आया, इसलिये वे लौट आये।

जैन धर्म के महान् विद्वान् प्रज्ञाचक्षु सिंघवी जी के साथ इनकी मित्रता थी और अक्सर उनसे मिलने जाया करते थे।

सर्वोदय की विचारधारा को सार्थक बनाने के लिये उन्होंने सर्वोदय आश्रम की स्थापना की। चंदेरिया को इसलिये चुना कि वह वीरों की लीला-स्थली और हरिभद्रसूरि की कर्मस्थली और जन्मस्थली भी थी। वे प्रतिदिन सूर्योदय होने पर इस पुण्य भू‌मि का दर्शन करना चाहते थे। इसलिये उन्होंने चित्तौड़गढ़ में ही हरिभद्र स्मारक,भामाशाह भारती-भवन और सर्व देवायतन मंदिर बनवाया।

वे श्रम को बड़ा महत्व देते थे। भिक्षावृत्ति के वे कड़े विरोधी थे। इसलिये चित्तौड़ में अपनी आजीविका अर्जित करने के लिये खेती-बाड़ी का काम शुरु किया। उनका स्वभाव सर्व-धर्म-समभाव का था। देवायतन मंदिर उसका प्रमाण है। बालकों की शिक्षा के लिये उन्होंने बाल-विद्यापीठ खोला। मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ कि बाल-विद्यापीठ का उद्घाटन उन्होंने मेरे हाथों से कराया।

जर्मन एशियाटिक सोसायटी ने इन्हें अपना सम्मान्य सदस्य बनाकर इनके वैदुष्य को सम्मानित किया। बहुत ही कम भारतीयों को यह सम्मान मिला था। भारत - जर्मनी मित्रता के लिये उन्होंने वहाँ भारत - भवन की स्थापना की। शिक्षा के लिये सतत कार्य करना उनका स्वभाविक-धर्म था। मुझ जैसे बहुत कम पढ़े लिखे व्यक्ति को भी उन्होंने प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाया।

भारतीय इतिहास को उनकी बड़ी देन है। उन्होंने एक शिलालेख के आधार पर हूण–सम्राट् तोरमाण को जैन मतावलम्बी सिद्ध किया था। 'राजस्थान थ्रू दी एजेस्' में उनका अपूर्व योगदान रहा। वे राजस्थान इतिहास परिषद् की स्थापना कर उसे मूर्त्त रूप देना चाहते थे परन्तु दुर्भाग्य से वह योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी।

उनमें कर्मयोग और ज्ञानयोग का अद्भुत समन्वय था। वे मुझे भामाशाह का चरित्र लिखने के लिये बराबर आग्रह करते रहे। उसी का परिणाम है कि मैं डॉ. राजेन्द्र प्रकाश भटनागर से भामाशाह विषयक महत्व-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्ण शोध-ग्रंथ पूर्ण करवाने का कार्य कर सका। उनके अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिये भी मैं सेवा-भावना से निरन्तर लगा रहा।

मेरा प्रायः चंदेरिया आना - जाना होता रहता था। मैंने उन्हें कभी क्रोधित हुआ नहीं देखा। वे सन्त ही थे। उन्हें जब 'पद्म श्री' का सम्मान दिया गया तो मुझे दुःख हुआ। राजनीतिक कारणों से इससे श्रेष्ठ स्तर का पुरस्कार उन्हें नहीं मिल पाया। ऐसा सौम्य आजानुबाहु व्यक्तित्व मैंने अपने जीवन में नहीं देखा।

मैं उदयपुर का कन्वेनर था। तब हम आचार्य विनोबा भावे को उनके आश्रम में ले गये थे। हालाँकि इसका अधिकतर श्रेय श्री केसरपुरीजो को ही है। उन्हें लेकर हम मीरा मंदिर गये थे। वहाँ जाने पर विनोबाजी रो पड़े।

मैं प्रजामंडल में था और क्रान्तिकारी विचार थे। फिर ठक्कर बाप्पा की प्रेरणा से मैंने राजनीति छोड़कर आदिवासियों के क्षेत्र में काम करना शुरु किया। मुनिजी इतिहास के दृष्टान्तों से हमें प्रेरणा देते रहे कि यह भूमि मूलतः आदिवासियों की ही है। वे प्रायः 'कुवलयमाला' आदि ग्रंथों में से आदिवासी समाज के बारे में बताते रहते थे।

परन्तु इन सबसे महत्त्वपूर्ण घटना आबू आंदोलन की थी। इसी के कारण राजस्थान की जनता में मुनिजी की लोकप्रियता बढ़ी। भारत सरकार द्वारा आबू को लेने के निर्णय के पश्चात् राजस्थान सरकार ने स्व. मुनिजो की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया था। उन्हीं की प्रेरणा से इस आंदोलन में मुझे सहयोग करने का अवसर मिल गया। आबू - सिरोही के राजस्थान के अभिन्न भाग होने के संबध में उसकी ऐतिहासिकता और भौगोलिक कारणों को संसद में मैंने इस प्रकार स्पष्ट किया—

Patel has realised Maharana Pratap's dream of United Rajasthan, but if that Patel is broken, I think every Rajasthani would be pained. Sirohi has all along been connected with Rajasthan. It is connected with Rajasthan linguistically, geographically, as well as historically. At least a thousand years history would testify to the fact that Sirohi is an integral part of Rajasthan. Maharana kumbha of Abu had constructed the fort of Achalgarh to defend Rajasthan from attacks of Gujarat, and the remains of that fort are still there. Even today the rich capitalists of Rajasthan have made investments running into hundreds of thousands in that state which is our part and parcel historically, traditionally, geographically and in every way. Its division is very painful for the people in Rajasthan. I think all the people of our Indian

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

States would be pained at this. This is a division which was neither demanded by the people nor the Raja of that State, Neither the local Congress Committee had made a demand for it, nor the public there had made any such demand. Ever since its incorporation in Bombay, the residents there have been demanding its merger with Rajasthan and identifying themselves with the people of Rajasthan. But the sudden and secret way in which this division has been effected has surprised everybody. When the announcement was made here in the Assembly, I learn, Pandit Nehru our leader was fortunately present here and he as also other members were listening with surprise to that statement about the decision to divide Sirohi from immediate effect. We do not know why the partition has been effected, but so far as we can guess, it has been made in view the tower of Abu. Abu has been an important part of Sirohi as well as Rajasthan. It has always been a part of Rajasthan and was like a capital under British rule. Its connection with Rajasthan dates back to thousand years. The people there speak Hindi and Rajasthani. There are only a few people speaking Gujarati. They are hardly 3 or 4 per cent. There was no demand for partition from the public nor had the Raja expressed the least desire for it. So many convenants have been entered into so far, but is the first case of partitioning a region without consulting either the Raja or the people. So I think this is a thing which would cause a deep pain to the people of Rajasthan. I hope this error would soon be rectified.

इसके अलावा मैंने सरदार बल्लभभाई पटेल के इस कार्य की निन्दा की। सिरोही का अर्थ है-तलवार। "सरदार ने सिरोही लेकर हमारी तलवार तोड़ दी।" हमारे आंदोलन और स्व. मुनिजी की रिपोर्ट के कारण ही आज आबू राजस्थान में है। इस वजह से प्रायः सारा ही गुजराती समाज मुनिजी से अप्रसन्न हुआ। उन्होंने बहुत बड़ी ख्याति और प्रतिष्ठा का त्याग किया—अपनी जन्म-भूमि के लिये।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजस्थान के इतिहास को मुनि श्री श्री जिनविजय की देन

डॉ राजेन्द्रप्रकाश भटनागर

राजस्थान के इतिहास और पुरातत्व के क्षेत्र में श्रद्धेय मुनि जिन-विजयजी का नाम सदैव अविस्मरणीय रहेगा। 'पद्मश्री' उपाधि से विभूषित मुनिजी का सम्पूर्ण जीवनकाल इतिहास और पुरातत्व के प्रति समर्पित रहा। मेवाड़ के रूपाहेली कस्बे (जिला-भीलवाड़ा, तह०–हुरडा) में 27 जनवरी, 1888 ई. को सामान्य क्षत्रिय-परमार कुल में जन्मे मुनिजी का बाल्यकालीन नाम किशनसिंह था। विषम परिस्थितियाँ होने से अध्ययन न कर सकने के कारण विवश हो बालक किशनसिंह की ज्ञान और अध्ययन की तीव्र लालसा ने उन्हें जैन मुनि का व्रत धारण करने के लिए प्रेरित किया। मुनि वेष धारण करने पर उन्हें जिनविजय नाम दिया गया।

इतिहास और शोध के प्रति उनकी रुचि प्रारम्भ से थी। 'टॉड राज-स्थान' को पढ़ने के बाद राजस्थान और मेवाड़ के गौरवपूर्ण इतिहास की ओर वे अधिक आकृष्ट हुए। उन्होंने संस्कृत, अपभ्रंश, अंग्रेजी, मराठी आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। प्राचीन लिपियों को पढ़ना सीखा। विशेष रुचि होने के कारण वे अनेक शिलालेखों और पाण्डुलिपियों के अध्ययन में प्रवृत्त हुए। विशेषकर राजस्थान के पुरातत्त्व, शोध और प्रकाशन का जो व्यापक, मौलिक और ऐतिहासिक कार्य किया है वह सदा सम्माननीय और अनुकरणीय रहेगा। यद्यपि मुनिजी ने राजस्थान-इतिहास पर कोई स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं लिखा, किन्तु उन्होंने राजस्थान-इतिहास सम्बन्धी जो कार्य किया उसे हम चार वर्गों में बाँट सकते हैं—

(1) समग्र राजस्थान का इतिहास-लेखन की योजना।

(2) ऐतिहासिक पुरा-कृतियों का पर्यालोचन व समीक्षा-लेखन।

29, कानजी का हाटा, उदयपुर (राज.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(3) राजस्थान-इतिहास सम्बन्धी मूलभूत ऐतिहासिक सामग्री का सम्पादन-प्रकाशन।

(4) ऐतिहासिक स्मारकों का निर्माण।

(1) राजस्थान-इतिहास लेखन की योजना का निर्माण—

सर्वप्रथम मुनिजी ने ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राजस्थान का एकीकरण पूर्ण हो जाने पर राजस्थान के ऐसे इतिहास को लिखने की परिकल्पना की जो इस प्रान्त की भौगोलिक इकाई के अन्तर्गत यहाँ के राजनीति, समाज, संस्कृति और अर्थनीति का समग्र किन्तु स्पष्ट और विस्तृत चित्र उपस्थित कर सके। एतदर्थ राजस्थान राज्य अभिलेखागार के तत्कालीन निदेशक नाथूरामजो खड्गावत से विचार–विमर्श करके राज्य सरकार के समक्ष उसकी एक योजना रखी।

तब तक राजस्थान के विभिन्न राज्यों (पुरानी रियासतों) के सम्बन्ध में अच्छे इतिहास-ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। किन्तु राजस्थानवासियों की संस्कृति और समाज का सर्वांगीण समग्र इतिहास नहीं लिखा गया था, जिसकी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद नितान्त आवश्यकता अनुभव की जा रही थी जो आधिकारिक और प्रामाणिक राजस्थान के इतिहासकारों द्वारा ही लिखा जाना तय हुआ।

राजस्थान सरकार ने इस प्रकार के प्रकाशन को शीघ्रातिशीघ्र प्रकट करने के लिए दिसम्बर 1959 में एक 'सम्पादक-मण्डल' का गठन किया और इसके 'अध्यक्ष' (चेयरमेन) मुनिजी को बनाया गया। इस मण्डल में आठ सदस्य थे—डॉ. एस. पी. बर्मा (प्रिंसिपल, राजस्थान कॉलेज, जयपुर), डॉ. गोपीनाथ शर्मा (अध्यक्ष, इतिहास-विभाग, महाराणा भूपाल कॉलेज, उदयपुर), डॉ. सत्यप्रकाश श्रीवास्तव (डायरेक्टर, पुरातत्त्व एवं संग्रहालय, जयपुर), डॉ. मोतीलाल मेनारिया (राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर), रत्नचन्द्र अग्रवाल (सुपरिंटेन्डेन्ट, पुरातत्त्व और संग्रहालय, उदयपुर) और नाथूराम खड्गावत (डायरेक्टर, राजस्थान राज्य अभिलेखागार राजस्थान, जयपुर)। श्री खड्गावत इस मंडल के 'सदस्य-सचिव' थे।

इसके साथ ही, संपादक-मण्डल को सलाह देने के लिए राज्य सरकार ने चौदह व्यक्तियों के एक 'सलाहकार-मण्डल' का भी गठन किया। इसके 'अध्यक्ष' (चेयरमेन) राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के उपकुलपति डॉ. मोहनसिंह मेहता तथा 'सेक्रेटरी' विष्णुदत्त शर्मा, जो राज्य सरकार में शिक्षा विभाग के सचिव थे, को नियुक्त किया। इस मंडल में डॉ. ताराचन्द, डॉ.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रघुवीरसिंह, पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ, प्रो. नरोत्तमदास स्वामी, डॉ. दशरथ शर्मा (दिल्ली), डॉ. आर. ई. हीलिंग (जयपुर), लक्ष्मीलाल जोशी, डॉ. पी. सरन (दिल्ली), डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव (आगरा), प्रो. जे.एम. घोष, आर. डी. खन्ना. और डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल सम्मिलित थे। बाद में सम्पादक मण्डल में डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव और डॉ. दशरथ शर्मा को सह-वरित सदस्य बनाया गया।

इस ग्रन्थ-योजना के अन्तर्गत राजस्थान-इतिहास को विभिन्न खण्डों में कालक्रमानुसार बाँटा गया और उन्हें सम्पादक-मण्डल के विभिन्न सदस्य-लेखकों को लिखने का दायित्व सौंपा गया। उन खण्डों में भाषा, शैली, प्रस्तुतीकरण और विषयवस्तु की एकरूपता बनाये रखने के लिए किसी एक विद्वान् को इसका रिविजन (पुनरावलोकन) करने का दायित्व सौंपना उचित समझा गया। इस कार्य के लिए मुनिजी ने डॉ. दशरथ शर्मा का नाम प्रस्तावित किया। मुनिजी डॉ. शर्मा के राजस्थान के इतिहास, साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान और शोधकार्य से बहुत प्रभावित थे। मुनिजी ने अपने पत्र में इसके लिए उन्हें 'धैर्यवान् सुयोग्य और उचित कार्यकर्त्ता' माना। राज्य सरकार ने उनके परामर्श को स्वीकार कर लिया इस प्रकार मुनिजी के आग्रह से राजस्थान इतिहास के संशोधन आदि का अन्तिम दायित्व डॉ. दशरथ शर्मा को सौंपा गया।

ग्रंथ-योजना के अनुसार प्रारम्भिक काल से ई. 700 तक का इतिहास डॉ. सत्यप्रकाश ने तैयार किया। डॉ. दशरथ शर्मा ने मुनिजी के निर्देशानुसार इस भाग का पुनर्लेखन किया और स्वयं डॉ. शर्मा ने ई. 700 से 1200 पर्यन्त के काल का द्वितीय भाग भी लिखा, साथ ही ई. 1200 से 1316 तक के तृतीय भाग का एक अंश भी लिख डाला। यह सारा इतिहास (प्रारम्भ से 1316 ई. पर्यन्त) "राजस्थान थ्रू दी एजेज" नाम से प्रथम खण्ड' के रूप में 'राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर' से 1966 ई. में प्रकाशित हुआ। मुनिजी ने इसके प्रारम्भ में अपना 'सम्पादक मंडलीय आमुख' भी लिखा।

इस ग्रंथ की विशेषता है कि इसमें ऊहापोह, विवाद और मतान्तरों का उल्लेख पाद टिप्पणियों और परिशिष्टों में किया गया है। मूलपाठ में इतिहास का स्पष्ट, सरल और सुबोध-शैली में प्रतिपादन किया गया है। राजनैतिक इतिहास के साथ भौगोलिक, सामाजिक, प्रशासनिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सम्बन्धी विवरण विस्तार के साथ प्रायः समकालीन स्रोतों के आधार पर किया गया है।

इस प्रकार मुनिजी के ही प्रयत्नों से उनके स्वप्न के मूर्तरूप में समग्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजस्थान इतिहास की योजना क्रियान्वित हुई तथा उस ग्रंथ का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ।

(2) ऐतिहासिक कृतियों का लेखन—

यद्यपि मुनिजी ने किसी विस्तृत और व्यवस्थित इतिहास का लेखन नहीं किया किन्तु उनके द्वारा लिखी दो—तीन संक्षिप्त ऐतिहासिक कृतियाँ मिलती हैं –

(1) 'गोरा बादल पदमिणी चउपई—एक पर्यालोचन'

(2) रत्नसिंह की समस्या

(3) 'हम्मीरमहाकाव्य—एक पर्यालोचन'

प्रथम दोनों कृतियाँ एक-दूसरे की अनुपूरक हैं तथा कवि हेमरतन कृत 'गोरा बादिल चरित्र' नामक ग्रंथ को स्वयं ग्रंथकर्ता द्वारा लिखित मूलप्रति के आधार पर राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा प्रकाशित (ग्रंथांक 40) की गई है। प्रथम कृति में गोरा, बादल और चित्तौड़ की रानी पद्मिनी की ऐतिहासिकता का तथा दूसरी कृति में रानी पद्मिनी के पति रावल रत्नसिंह की ऐतिहासिकता का प्रमाण-पुरःसर प्रतिपादन-विवेचन किया गया है। मुनिजी की भाषा बड़ी ओजस्वी, सरल और प्रभावशाली है।

'गोरा बादिल चऊपई' की रचना महाराणा प्रताप के राज्यकाल में गोढवाड़ के हाकिम ताराचन्द, जो मेवाड़ राज्य के 'प्रधान' भामाशाह कावड़िया का छोटा भाई था, के अनुरोध पर सादड़ी नगर में जैन यति कवि हेमरतन ने संवत् 1645 श्रावण सुदि 5 के दिन पूर्ण की थी। प्रकाशन के लिए जो प्रति उपयोग में ली गई है, वह सादड़ी नगर में ही कवि हेमरतन द्वारा सं. 1646 मार्गशीर्ष सुदि 15 के दिन लिखी गई है और रा. प्रा. वि प्र. उदयपुर के संग्रह में सुरक्षित है। मुनिजी ने स्वयं इसका संपादन किया। यह दुर्लभ प्रति बनेड़ा निवासी स्व. पं. रविशंकरजी देराश्री संग्रह से उनके सुपुत्र पं. अक्षय कुमार देराश्री ने प्रतिष्ठान को भेंट की थी।

मुनिजी को चित्तौड़ दुर्ग और उसके परिसर की भूमि के प्रति अटूट प्रेम और अपूर्व श्रद्धा थी। यहाँ के वीरों के अपरिमेय शौर्य, त्याग और बलिदान ने तथा पद्मिनी, करमेती जैसी वीरांगनाओं ने नारी-उचित ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया था जिससे न केवल मेवाड़ और अपने कुल का अपितु देश का मस्तक ऊँचा हुआ। इसी से देश के राष्ट्रीय आन्दोलन ने मेवाड़ के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्याग, स्वदेशाभिमान और स्वराष्ट्र-प्रेम की प्रेरणा ग्रहण की थी। मुनिजी जैसे भावुक-हृदय और राष्ट्र-प्रेमी का चित्तौड़ के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक था।

जायसी द्वारा विरचित 'पद्मावत' के कथानक को आलंकारिक वर्णन मानकर एवं समकालीन फारसी इतिहास-ग्रंथों में पद्मिनी की कथा का वर्णन न मिलने से कुछ इतिहासकारों ने पद्मिनी के शौर्य और आत्मबलिदान की गाथा को ही निर्मूल और काल्पनिक मान लिया। इससे देश के स्वदेशाभिमानी लोगों को बड़ा धक्का लगा। रानी पद्मिनी इतिहास के पन्नों में एक अद्भुत वीरांगना और अपने सतीत्व की रक्षा हेतु जौहर की ज्वाला में भस्मीभूत होने वाली आत्मबलिदानी नारी थी, उसकी ऐतिहासिकता पर संदेह कर लेना उसको सम्पूर्ण गाथा को असत्य करार दे देना है। इसी से प्रभावित होकर तिलमिलाकर मुनिजी ने इन दो उच्चकोटि की ऐतिहासिक कृतियों की रचना कर डाली और अनेक प्रमाणों व तर्कों से रानी पद्मिनी, गोरा, बादल और रावल रत्नसिंह को इतिहास-पुरुषों के रूप में सिद्ध कर दिया।

डॉ. फतहसिंह ने इस ग्रंथ के प्रधान सम्पादकोय वक्तव्य में उचित ही लिखा है—"श्री मुनि जिनविजय की यह एक ऐसी अभूतपूर्व कृति है, जिसमें उनके स्वदेशाभिमान, इतिहास-मर्मज्ञता, शोधवृत्ति, सूक्ष्मदृष्टि तथा समीक्षण-पटुता का अद्भुत परिचय मिलता ही है, परन्तु इसके साथ ही इस विद्वान् लेखक ने भारतीय इतिहास के एक अत्यन्त गौरवपूर्ण चरित को विदेशी इतिहासकारों तथा उनके भारतीय शिष्यों द्वारा विस्मृत अथवा उपेक्षित किये जाने के प्रयत्न से बचाने के लिये जो सफल प्रयास किया है, उससे इस देश के इतिहास को एक अपूर्व देन प्राप्त हुई है." (पृ 1)

स्वयं मुनिजी ने हेमरतन कृत 'गोरा बादिल पदमिणी चउपई' कृति के संबंध में लिखा है— "इसमें भारत की एक श्रेष्ठ सती नारो के शीलव्रत का और सच्चे स्वामिभक्त वीर राजपूत योद्धा के स्वधर्म-रक्षक उदात्त जीवन-व्रत का श्रद्धापूर्ण आलेखन है।" ('पर्यालोचन' पृ. 13)।

पद्मिनी सम्बन्धो कथानक को बिल्कुल प्रामाणिक और ऐतिहासिक मानते हुए अपनी नपी-तुली, किन्तु पैनी शैली में मुनिजो लिखते हैं— "पद्मिनी की कथा हमारे देश और राष्ट्र के एक अत्यन्त दुःखद, संकटपूर्ण और विपत्तिजनक समय का हृदयविदारक स्मरण करातो है। पद्मिनो कल्पनाकल्पित केवल एक मनोरंजक कहानी की सामान्य नायिका नहीं है, वह हमारी संस्कृति, समृद्धि और गरिमा की वास्तविक ज्योति की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतीक-सी प्रज्वलित दीपिका थी, जो उस प्रलय-काल के प्रचंड अन्धड़ में स्वयं विलीन हो गई और संवत् 1360 में चित्तौड़ के उस भस्मीभूत महादुर्ग में, अपने राष्ट्र, धर्म और जातीय गौरव की रक्षा के निमित्त, सैकड़ों सती सुन्दरियों के साथ, अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं में उसने अपनी आहुति दे दी। इस प्रकार अपनी अनुपम आत्मबलि द्वारा उसने अपनी जाति की भावी संतति के लिए उक्त विनाश के कठोर एवं करुण क्रंदन के साथ राष्ट्र-गौरव के गर्वपूर्ण गम्भीर गान का हृदयंगम सुर भी वह सुनाती गई। उसके ये सुर हमारे लिए दैवी प्रघोष हैं।" (पृ. 13-14)

मुनिजी का यह नीर-क्षीर विवेक इतिहास के पन्नों को विकृत होने से बचाने के लिए पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त उन्होंने दृढ़ शब्दों में चित्तौड़ के इतिहास की इस घटना के महत्व का आकलन भी किया है—"पद्मिनी से सम्बद्ध चित्तौड़ के इतिहास की घटना का महत्व हमारे देश के इतिहासज्ञ विद्वान् बहुत कम समझ रहे हैं। उनके ज्ञान में इस घटना का तादृश आकलन नहीं हुआ है। यह घटना केवल चित्तौड़ राज्य के उस समय की सामान्य प्रादेशिक घटना की कोटि की नहीं है। यह घटना सारे भारत के राष्ट्रीय इतिहास का प्रवाह बदलने वाली एक असाधारण घटना थी। राजपूत समझते रहे कि जैसा कि हर कोई प्रबल शासक अपनी सत्ता बढ़ाने के लिए अपने पड़ौसी राज्यों पर आक्रमण करता रहता है और लड़-झगड़ कर अपनी सत्ता को सुदृढ़ करना चाहता रहता है। इसी तरह दिल्ली के मुसलमान शासक भी अपनी सत्ता को स्थिर और विस्तृत करने का प्रयत्न करते रहते हैं। .... यह राज्यसत्ता का एक सर्वमान्य और सर्वव्यापी सिद्धान्त है। क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी शासकों की यह सामान्य राजनीति समझी जाती रही। परन्तु अलाउद्दीन के भारत-व्यापी क्रूर आक्रमणों का उद्देश्य केवल इस प्रकार की सामान्य राज्यसत्ता बढ़ाने वाली सीमा तक ही सीमित नहीं था, उसका मुख्य उद्देश्य भारत की प्राचीन संस्कृति को सर्वथा नष्ट कर देने का भी था। वह क्रूरातिक्रूर अत्याचारों द्वारा अपनी दानवी शक्ति बढ़ाता जा रहा था और उसके बल पर भारत के राष्ट्रीय धर्म, गौरव और इतिहास का सर्वनाश करना चाहता था।" ('रत्नसिंह की समस्या', पृ 42-43)

अलाउद्दीन के भारतव्यापी आक्रामक-अभियानों की मानसिक-वैचारिक पृष्ठभूमि की यह समीक्षा बड़ी मौलिक और अनूठी है। मुनिजी के इतिहास-चिन्तन का ही यह सुपरिणाम है। उनके इतिहास सम्बन्धी निष्कर्ष बड़े उत्तेजक, ठोस और हृदयग्राही थे। वे लिखते हैं—"यदि चित्तौड़ के उन ध्वंसावशेषों में छिपे हुए पद्मिनी के पुण्य-स्मरणों के स्फुलिंग प्रस्फुटित न होते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो मेवाड़ का यह प्रतापी राजवंश पुनः प्रतिष्ठित न होता और न राजपूत राज्यों में वह बल ही संचारित होता जो मेवाड़ के पराक्रमी सूर्यवंशी राजाओं द्वारा प्रसारित ज्योति से होता रहा है।" (वही, पृ. 44)।

उनका मानना था—"पद्मिनी के अस्तित्व और पुण्य-जीवन-स्मरण का विलोप करने वाला बुद्धिभ्रामक प्रयास, हमें भारत के राष्ट्रीय गौरव के इतिहास के एक सर्वोत्तम प्रकरण को मिटा देने जैसे कुत्सित अतएव तिरस्करणीय लगता है।" (वही, पृ. 45)।

मुनिजी ने अनेक इतिहासकारों को प्रेरणा दी, विचार दिये और सामग्री दी। इसके लिए इतिहास जगत् मुनिजी का सदैव ऋणी रहेगा। इसी काल के एक अन्य वीर पुरुष हमीर चौहान की वीरगाथा को चित्रित करने वाले जैनाचार्य नयचन्द्रसूरि के संस्कृत में लिखित 'हम्मीर-महाकाव्य' का सम्पादन करते हुए मुनिजी ने उसका 50 पृष्ठों में "हम्मीर महाकाव्य-एक पर्यालोचन" लिखा है। इस इतिहास कृति में मुस्लिम संस्कृति के उदय से प्रारम्भ कर उसके भारत में फैलने एवं राज्यसत्ता कायम करने तक के इतिहास की एक समीक्षा प्रस्तुत की गई है। भारतीय मध्ययुगीन इतिहास की पृष्ठभूमि को समझने के लिए मुनिजी द्वारा दिया गया यह चित्रण अवश्य अध्ययनीय है। उनके तर्क अकाट्य हैं। हम्मीर-महाकाव्य ऐतिहासिक काव्य है। मुनिजी ने इसे 'राष्ट्रीय महाकाव्य' की संज्ञा दी है। (पृ. 25)।

राजस्थान–इतिहास संबंधी सामग्री का संपादन-प्रकाशन—

मानो मुनिजी ने राजस्थान के इतिहास के निर्माण का योजनाबद्ध आयोजन तय कर लिया था। उन्होंने इतिहास की दृष्टि से सर्वाधिक महत्व-पूर्ण सामग्री के संकलन और संग्रह पर बड़ा जोर दिया। प्राचीन ग्रंथ सम्पदा ही इतिहास और संस्कृति की रीढ़ होती है।

राजस्थान के एकीकरण के बाद राज्य में चहुँमुखी उन्नति और विकास की योजना बनाने के लिए तत्कालीन मुख्यमन्त्री हीरालाल शास्त्री द्वारा दस 'मण्डलों' का गठन किया गया। एक 'संस्कृत मण्डल' में मुनिजी भी रखे गये।

प्रत्येक पाण्डुलिपि की, चाहे वह किसी विषय की हो, और चाहे मूल ग्रंथकर्त्ता के हाथ की लिखी हुई हो या प्रतिलिपि के रूप में हो, अपनी ऐति-हासिक महत्ता होती है। राजस्थान में ऐसी हजारों-लाखों की संख्या में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पांडुलिपियाँ मौजूद थीं। इनका यहाँ की संस्कृति, भाषा, साहित्य, विज्ञान, कला और अन्य विषयों के इतिहास से अवश्य संबंध है। धीरे-धीरे यह सम्पदा लुप्त हो रही थी। हजारों ग्रंथ या तो नष्ट हो रहे थे, या विदेशों में वेचे जा रहे थे। 'संस्कृत मण्डल' को वैठक में मुनिजी ने राजस्थान में पांडुलिपियों के संग्रह, सुरक्षा और प्रकाशन के संबंध में बड़ा जोर दिया और उनकी बनायी योजना को राज्य सरकार ने 'राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर' की स्थापना के साथ मूर्त्तरूप दिया। इसे शोध-संस्थान का स्वरूप प्रदान किया गया। इसलिए इसका नामकरण "राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मंदिर" किया। 13 मई 1950ई. को महाराजा संस्कृत कॉलेज, जयपुर के एक कक्ष में इसका शुभारम्भ हुआ और मुनिजी इसके सम्मान्य संचालक नियुक्त किये गये। यद्यपि इस समय वे 'भारतीय विद्याभवन' बम्बई के सम्मान्य संचालक थे तथा अन्य सामाजिक और साहित्यिक गतिविधियों से भी जुड़े हुए थे, फिर भी समय-समय पर संस्था को संचालित करने और परामर्श देते रहने की बात उन्होंने मान ली। बाद में इसका स्वतंत्र विभाग बनकर जोधपुर में भव्य भवन का निर्माण कराया गया तथा 14 नवम्बर 1958 ई. को इस नए भवन का तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया के द्वारा उद्घाटन हुआ। बाद में 'राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर' के स्थान पर इसे 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान' नाम दिया गया। जयपुर, अलवर, कोटा, टोंक, उदयपुर, चित्तौड़गढ़ और बीकानेर में इसके शाखा कार्यालय स्थापित हुए। इन संग्रहालयों में राजस्थान की पाण्डुलिपियों का विशाल संग्रह किया गया। मुनिजो का यह स्वप्न भी साकार हुआ। राजस्थान-इतिहास के लेखन में इस सामग्री के संकलन का कार्य मुनिजी की प्रतिभा की देन ही कहा जाना चाहिए।

केवल ग्रंथों के संग्रह तक ही उनकी कार्य योजना सीमित नहीं थी, वे राजस्थान-इतिहास सम्बन्धी अनेक मौलिक और आधार-भूत ग्रंथों को भी प्रकाश में लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने राजस्थान के जाने-माने इतिहासविदों को प्रेरित किया, उन्हें ग्रंथ और उनको प्रतिलिपियां सुलभ करवायीं और उनका अपने निर्देशानुसार विद्वत्तापूर्ण संपादन कराया। स्वयं भी उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथों का संपादन किया।

अपने द्वारा सम्पादित और अपनी प्रेरणा से सम्पादन कराये गये उन ग्रंथों के प्रकाशन का दायित्व रा. प्रा. वि. प्र. को सौंपा और वहाँ से 'राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला' का 1951 ई. में प्रकाशन प्रारम्भ किया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके स्वयं के द्वारा संपादित राजस्थान-इतिहास के आधारभूत ग्रंथों में नयचन्द्रसूरिकृत 'हम्मीरमहाकाव्य' और कवि हेमरतन रचित 'गोरा बादिल चरित्र' प्रमुख हैं।

भारतीय विद्या भवन, बम्बई में मुनिजी द्वारा संस्थापित, संपादित और संचालित 'सिंघी जैन ग्रंथमाला' के अन्तर्गत मुनिजी ने बीकानेर के 16 वीं सदी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक संस्कृत काव्य "कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनम्" का टीकासहित संपादन कराया था। इससे बीकानेर राज्य के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

इसी ग्रंथमाला में पहले 'हम्मीर महाकाव्य' के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया गया, परन्तु फिर इसे रा० प्रा० वि० प्र० से निकाला गया। रणथंभोर के वीर चौहान राजा हम्मीर के सम्बन्ध में यह एक प्रामाणिक ग्रंथ है। इस पर लेखक के ही शिष्य ने टीका भी लिखी थी।

उनकी प्रेरणा से राजस्थान-इतिहास सम्बन्धी निम्नांकित ग्रंथ संपादित कराये जाकर प्रकाशित हुए —

(1) **कान्हड़दे प्रबन्ध** - कवि पद्मनाभ विरचित यह ग्रंथ 1455 ई. में लिखा गया था। यह अपभ्रंश भाषा का काव्य-ग्रंथ है। इसमें जालोर पर अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण और विजय का वास्तविक चित्रण किया गया है। इसमें चौहान राजा कान्हड़दे की वीरता का वर्णन है।
संपादक—प्रो० कान्तिलाल बलदेवराम व्यास हैं।

(2, **क्यामखां रासा** – कवि जान कृत। सम्पादक डॉ. दशरथ शर्मा, अगरचन्द नाहटा, भंवरलाल नाहटा। कायमखानी मुसलमानों के इतिहास सम्बन्धी मूलभूत ग्रंथ हैं। ये लोग मूल में चौहान राजपूत थे। फतेहपुर शेखावटी आदि भागों में इनका राज्य रहा।

(3) **कूर्मवंश यश-प्रकाश** (लावारासा) — गोपालदान कविया कृत। संपादक—महताब चन्द्रखारेड। इसमें कछवाहों और उसकी नरूका शाखा के वीरों द्वारा लड़ी गई पाँच लड़ाइयों का रोचक वर्णन है।

(4) **बांकीदास री ख्यात** – बाँकीदास चारण विरचित। सम्पादक— स्वामी नरोत्तमदास। यह बांकीदास जोधपुर द्वारा लिखित 'वातों' के रूप में मारवाड़ का इतिहास है।

(5) **नृत्यरत्नकोश**—यह महाराणा कुंभा द्वारा लिखित 'संगीतराज' का खण्ड है। यह नृत्य और अभिनय कला का प्रामाणिक ग्रंथ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(6) राजस्थानी साहित्य संग्रह (भाग 1) सम्पादक—नरोत्तमदास स्वामी। इसमें राजस्थानी गद्य में लिखित तीन वातों का संग्रह है। इससे सामन्ती जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है।

(7) ईश्वरविलास महाकाव्य—श्री कृष्णभट्ट विरचित। सम्पादक—भट्ट मथुरानाथ शास्त्री। यह सवाई जयसिंह (1699-1743 ई.) एवं ईश्वरीसिंह के काल में जयपुर राज्य के इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालता है।

(8) राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज—श्रीधर रामकृष्ण भांडारकर द्वारा लिखित इस रिपोर्ट का बी डी. त्रिवेदी से अनुवाद कराकर मुनिजी ने प्रकाशित कराया था। राजस्थान में उपलब्ध प्राचीन पांडुलिपियों का इससे अच्छा ज्ञान होता है।

(9) गोरा बादल पद्मिनी चौपई—कवि हेमरतन कृत। सम्पादक—डॉ. उदयसिंह भटनागर। स्वयं द्वारा इस ग्रंथ के सम्पादन करने से पहले मुनिजी ने इस ग्रन्थ की उपलब्ध पांडुलिपियाँ देकर संपादक से इसका विस्तृत पाठान्तर सहित संपादन कराया था।

(10) मुंहता नैणसी री ख्यात—मुंहणोत नैणसीकृत। संपादक—बदरीप्रसाद साकरिया। नैणसी की ख्यात राजस्थान के सम्पूर्ण इतिहास पर लिखा हुआ प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि टॉड से भी पूर्व नैणसी ने इस क्षेत्र विशेष की समग्रता की परिकल्पना की थी। राजस्थान के प्राचीन और मध्ययुगीन इतिहास की सामग्री ख्यातों, बहियों, वंशावलियों आदि के रूप में मिलती हैं। "नैणसी की ख्यात" के "संचालकीय वक्तव्य" में ख्यातों के महत्त्व पर मुनिजी ने लिखा है—

"भारतीय साहित्यिक और ऐतिहासिक इतिवृत्त लिखने में ख्यातों से विशेष सहायता मिल सकती है, किन्तु अद्यावधि इनका उपयोग नाम मात्र के लिए ही हुआ है। इसका एक कारण इन ख्यातों का अप्रकाशित रहना है।"

इसी से मुनिजी ने नैणसी की ख्यात, बांकीदास की ख्यात आदि का प्रकाशन करवाया।

(11) राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग 2—संपादक-डॉ. पुरुषोत्तम लाल मेनारिया। इसमें ऐतिहासिक सांस्कृतिक आठ राजस्थानी 'वातों' का संग्रह किया गया है।

(12) सूरज प्रकाश—कविं करणीदान विरचित। संपादक-सीताराम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लालस। लेखक जोधपुर के महाराजा अभयसिंह का राज्याश्रित 'चारण कवि' था। इसमें उसने राठौड़ राजवंश के ऐतिहासिक और पारंपरिक इतिवृत्त को संजोया है।

(13) **रत्नपरीक्षादि सप्त – ग्रंथ–संग्रह**—ठक्कुर फेरुकृत। संपा.- अगरचन्द नाहटा, भंवरलाल नाहटा। लेखक अलाउद्दीन खिलजी का खजांची था। इससे उसे उस काल की टकसाल और सिक्कों का अच्छा ज्ञान था। वह रत्नों की परीक्षा, धातुविज्ञान और मुद्राविज्ञान का ज्ञाता था। मुनिजी ने उसके इन अज्ञात ग्रंथों को प्रकाश में लाकर इन वैज्ञानिक शाखाओं का महत्वपूर्ण साहित्य प्रकट करा दिया है।

(14) **प्रतापरासो** – जाचिक जीवण कृत। संपापक—डॉ. मोतीलाल गुप्त। अलवर राज्य के संस्थापक रावराजा प्रतापसिंह (1756-1870 ई.) के शासन काल की उत्तम काव्यात्मक कृति है।

(15) **बिन्हैरासो**—राव महेशदास कृत। संपादक—सौभाग्य सिंह शेखावत। इसमें शाहजहाँ के पुत्रों के उत्तराधिकार युद्ध का विस्तार से निरूपण है। इस संबंध में यह एक महत्वपूर्ण गैर-फारसी इतिवृत्त है।

(16) **सोढायण**—कविया चिमनजी कृत। यह उमरकोट के सोढा राजपूतों का इतिहास है।

(17) **मारवाड़ रा परगना री विगत**–मुंहता नैणसी कृत। संपादक– डॉ. नारायणसिंह भाटी। मुनिजी चाहते थे कि नैणसी की 'ख्यात' के समान उसकी 'विगत' भी प्रकाश में आये। यह मारवाड़ राज्य का अभूतपूर्व गजेटियर है जिसकी तुलना का ग्रंथ उस काल में अन्य नहीं मिलता। इसके संपादन का कार्य मुनिजी ने डॉ. भाटी को सौंपा। परंतु इसके प्रथम खंड के प्रकाशन से पूर्व ही मुनिजी सेवा निवृत्ति ले चुके थे।

(18) **पश्चिमी भारत की यात्रा**–कर्नल जेम्स टॉड। अनुवादक-गोपाल नारायणजी बहुरा। मुनिजी टॉड के इतिहास 'राजस्थान' से बहुत प्रभावित थे। वे लिखते हैं—"स्वतंत्र भारत को राजस्थान नामक नूतन महाजनपद की कल्पना देने का श्रेय कर्नल जेम्स टॉड को है। उसी ने विश्व के इतिहास विषयक समग्र वाङ्मय के असंख्य ग्रंथरत्नों के पुंज में, सर्वप्रथम राजस्थान के नाम से अंकित और उसके अतीत के इतिवृत्त से अलंकृत, एक अपूर्व और अकल्पित ग्रंथरत्न को समर्पित किया है।"

टॉड के ही दूसरे ग्रंथ को मूल रूप में पढ़ने के बाद मुनिजी की तीव्र इच्छा थी कि उसका हिन्दी में किसी आधिकारिक विद्वान् द्वारा अनुवादित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कराया जाय, वर्षों बाद वे अपनी इस इच्छा को श्री बहुराजी के माध्यम से पूरा करा सके। इसकी उनको बड़ी प्रसन्नता हुई।

टॉड के इस ग्रंथ को अपनी विशेषता थी जो उसके 'राजस्थान' में नहीं थी। आबू, चंद्रावती, अणहिलपुर-पाटण, शंत्रुंजय, गिरनार, सोमनाथ, द्वारका आदि का वर्णन है। मुनिजी लिखते हैं–' इस यात्रा विवरण के लिखने में उसने अपनी विशाल ऐतिह्य जानकारी को लिपिबद्ध किया है। जिसका उसने अपने इतिहास के आलेखन में उपयोग नहीं किया था तथा उन स्थानों, तीर्थों, मन्दिरों आदि का वर्णन है जिनको 'राजस्थान के इतिहास' में स्थान नहीं मिला तथापि जो राजस्थान के इतिहास से घनिष्ठ संबंध रखते हैं।"

मुनिजी ने ऐतिहासिक--सांस्कृतिक महत्व के व्यक्तित्वों पर स्वतंत्र प्रामाणिक विस्तृत रचनाओं को भी प्रकाशित कराया। यथा-'समदर्शी आचार्य हरिभद्र' (शांतिलाल जैन), 'संत कवि रज्जब' (डॉ. ब्रजलाल वर्मा) आदि।

इन सब ग्रंथों पर स्वयं मुनिजी ने अपने वक्तव्य लिखकर इनके संपादन-प्रकाशन के महत्व को प्रकट किया है। ये सब वक्तव्य ऐतिहासिक शोध की दृष्टि से बड़े महत्व के हैं।

(8) ऐतिहासिक स्मारकों की स्थापना—

राजस्थानी कहावत है कि नाम या तो 'भींतड़ों' से रहता है या 'गीतड़ों' से रहता है। ऐतिहासिक महत्व के मूल-साहित्य को प्रकाशित कराने के साथ मुनिजी ने ऐतिहासिक 'स्मारकों' के निर्माण पर भी ध्यान दिया।

मुनिजी को चित्तौड़ दुर्ग के प्रति बड़ा आकर्षण था। चित्तौड़ के त्याग-बलिदान-शौर्य की गाथा के साथ उसके प्राचीन विद्याकेन्द्र–ज्ञानकेन्द्र होने के कारण उनको यह स्थल बहुत प्रिय था। चित्तौड़ से संबंधित दो विभूतियों के संबंध में उन्होंने ऐतिहासिक स्मारकों का निर्माण कराया।

चित्तौड दुर्ग को तलहटी में भामाशाह की पुरानी हवेली के खंडहरों पर उन्होंने 'भामाशाह भारती भवन' का निर्माण कराया। भारत पर चीन के आक्रमण के समय सरकार ने भामाशाह का दृष्टांत प्रस्तुत कर धन एकत्रित किया। परन्तु ऐसे त्यागी, वीर की स्मृति में तब कोई भी स्मारक विद्यमान नहीं था। अतएव मुनिजी ने उसके ही संबंध में स्थित प्राचीन स्थल को स्मारक का रूप देकर उसे पुनः प्रतिष्ठा प्रदान की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्तौड़ में रहकर सारा जीवन जैन धर्म के अनुशासन में बिताने वाले आचार्य हरिभद्रसूरि ने 1440 ग्रंथों की रचना की। अतएव मुनिजी ने ऐसे अद्भुत विद्वान की स्मृति में चित्तौड़ दुर्ग के नीचे ही 'हरिभद्रसूरि-स्मारक-मन्दिर' की स्थापना की।

चन्देरिया-स्थित अपने आश्रम को बिनोबाजी को समर्पित करने के बाद उन्होंने आश्रम के सामने वाली भूमि पर अपना निवास बनाया और वहीं 'सर्वदेवायतन-मन्दिर' बनवाया। इसमें भारत के सब धर्मों के देवों, अवतारों, मुनियों के साथ आधुनिक भारत के राष्ट्रनिर्माता महात्मागांधी नेहरूजी की मूर्तियाँ भी स्थापित करायीं। यह उनकी उदात्त धर्म-भावना और सद्भाव का ऐतिहासिक स्मारक है।

इस प्रकार मुनि जिनविजयजी का संपूर्ण जीवन विशेषकर राजस्थान के इतिहास और पुरातत्व की अनमोल निधि है, जिसे युगों पर्यन्त अविच्छिन्न रूप से स्मरण किया जाता रहेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनि जिनविजय : कार्य तथा चिन्तन-परम्परा

भंवरलाल सिसोदिया

"स्वस्तिश्रीमेदपाटाख्यो देशो भारतविश्रुतः।
रूपाहेलीति सन्नाम्ना ग्रामस्तत्र सुविश्रुतः॥

अपनी पवित्र जन्म-भूमि का वर्णन करने वाले मुनिजी को रूपाहेली ने किसनसिंह के रूप में ही जाना, माना और देखा था। पिता वृद्धिसिंह जहाँ धर्मप्राण और औदार्य के प्रतीक थे, इनकी माता राजकुमारी अपने रूप-लावण्य और चातुर्य के कारण राजकुमारी ही लगती थी। बालक किसनसिंह इन्हीं का प्रिय पुत्र था।

माता उसे प्यार से रणमल कहती थी। दुर्भाग्य से बाल्यावस्था में ही उस बालक के पिता व गुरु श्री देवीहेमजी का स्वर्गवास हो जाने से वह विमूढ़ होकर अपने गाँव, घर, कुटुम्ब व देश छोड़कर निकल पड़ा। मुनिजी द्वारा रचित अनुष्टुप् इस प्रकार है —

दौर्भाग्यात् तच्छिशोर्बाल्ये गुरुतातौ दिवंगतौ।
विमूढेन ततस्तेन त्यक्तं सर्वं गृहादिकम्॥

वह बालक 13 वर्ष की आयु में अपनी माँ और घर से बिछुड़ा तथा बाणसेन के यति जी की सेवा में रहते हुए खाखी साधुओं की संगत में शामिल हो गया। वहाँ उसने वेदान्त का अनुशालन किया और फिर ज्ञान की पिपासा में जैन श्वेताम्बर साधु का बाना अङ्गीकार कर वर्तमान गुजरात प्रान्त के कई प्रमुख नगरों में चातुर्मास किया। वह माँ सरस्वती के चरणों में अखण्ड घोर तपस्या कर उसका स्वयं तो अमृत पान करता हो रहा साथ ही सैकड़ों श्रावक-श्राविकाओं को भी उसका रसास्वादन कराता रहा। परन्तु सच्चा सरस्वतो सेवक केवल जैन दर्शन तक ही अपने अध्ययन को सीमित नहीं रख सका। समूचे भारतीय वाङ्मय का श्रद्धावनत अनुशीलन उसका ध्येय रहा। उन्हीं दिनों में जब देश में गांधी की आँधी का विस्तार हो रहा था, वह ज्ञान की खोज में

रेल्वे फाटक के सामने, चित्तौड़गढ़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जमनी पहुँचा । जैन साधु का वेश त्याग दिया और भारत लौटने पर गाँधीजी ने उसे गुजरात विद्यापीठ के सुसंचालन का भार सौंप दिया । गाँधीजी के सम्पर्क के कारण वह जैन साधु सच्चे अर्थों में स्वतन्त्रता आन्दोलन का सच्चा अहिंसक सेनानी बन गया । जेल को यातनाएँ सहीं । उन्होंने मुख्य रूप से गुजरात को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया, परन्तु यावज्जीवन वे गुजरात में अपने आपको उसका 'पालित पुत्र' ही कहते रहे और सदैव मेवाड़ में आकर बस जाने के लिये उनकी आत्मा छटपटाती रही । वे मातृ-भूमि की गोद में शेष जीवन व्यतीत करना चाहते थे और मृत्यु का भी चित्तौड़ दुर्ग के अनिमेष द्रष्टा बनकर ही वरण करना चाहते थे ।

मुनिजी ने राजस्थान हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, उदयपुर में आयोजित प्रथम अधिवेशन में स्वागताध्यक्ष का पद-भार ग्रहण कर अध्यक्षीय भाषण में अपनी पीड़ा इस प्रकार व्यक्त की—

"ईश्वर ने राजस्थान में मुझे जन्म दिया लेकिन राजस्थान की कोई सक्रिय सेवा करने का मुझे भाग्य नहीं मिला । जीवन के पिछले 25 वर्षों से दूर-दूर के देश-परदेशों में रहकर भटककर कुछ न कुछ सार्वजनिक प्रवृति करने का सुयोग्य प्राप्त करता रहा हूँ । लेकिन इस 'राष्ट्रमुकुट' राजस्थान में जहाँ की प्राणवायु की पहली सांस ने मेरे इस जीवनचक्र को आद्य गतिमान किया, जहाँ के अमृतस्वरूप जल की पहली घूँट ने मेरी चेतना शक्ति के संचालक हृदययंत्र को पहले पहल स्फुरित किया, जहाँ के प्रकाशमान नील आकाश ने मेरी चाक्षुष ज्योति का प्रथम उन्मीलन किया और जहाँ की पुण्य भूमि ने मुझे पैरों पर खड़े होकर सबसे प्रथम चलने की गति प्रदान की, उस जीवनदात्री धरित्री सर्वभूतानां माता मेदिनी की कुछ भी सेवा या सत्कर्म करने का मुझे अभी तक संयोग नहीं मिला ।

बस, इसी का विचार करके जीवन के इस ढलते पहर में मेरे लिए यह सुवर्णमय अवसर उपस्थित किया ।"

ऐसा विचार करके ही मुनिजी ने मेवाड़ के कई स्थानों पर भ्रमण कर चित्तौड़गढ़ नगर के समीप चन्देरिया ग्राम को चुना, क्योंकि वे चित्तौड़गढ़ में हरिभद्रसूरि का एक "नूतन तीर्थ" स्थापित कर एकान्तवास का जीवन व्यतीत करना चाहते थे ।

मुनिजी ने स्वयं ने लिखा—"मुझ में यह नैसर्गिक वैगुण्य है कि मैं जन संसर्ग के साथ अधिक तादात्म्य नहीं साध सकता, मुझे प्राय: एकान्तवास ही अधिक प्रिय है एवं एकान्त में बैठकर ही साहित्य साधना किया करता हूँ । व्याख्यान आदि में मेरी विशेष रुचि नहीं रहती । बोलने की अपेक्षा मौन में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिक आनन्द आता है। [और शायद इसी विषय में मेरा यह 'मुनि' 'उपपद' ठीक सार्थक मालूम होता है। यों मुनि नाम विशेषण के साथ मेरी और कोई खास लेन-देन नहीं है।

संस्थाओं के आन्तरिक व्यवहारों और अधिकारों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं होती। इसलिए मैं उनकी उलझनों में कभी नहीं पड़ता। जहाँ कहीं ऐसा प्रसंग उपस्थित होता है और प्रायः सार्वजनिक संस्थाओं में ऐसा बहुधा हुआ करता है—तो मैं शीघ्र वहाँ से पलायन कर जाता हूँ।"

यह बात मुनिजी ने सन् 1940 में लिखी और सन् 1950 में चन्देरिया आश्रम की स्थापना की। आश्रम जब फलने-फूलने लगा तो उन्होंने यह आश्रम विनोबा भावे को समर्पित कर दिया। आश्रम के भवनों की एक-एक ईंट, एक-एक पत्थर मुनिजी ने अनवरत खड़े रहकर निर्माण करवाया। उसे ठीक उसी नैसर्गिक भाव से छोड़ दिया जैसे पक्षी अपने पंख का विसर्जन कर देते हैं या राम ने वनगमन के समय राजसी वैभव का त्याग किया—कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषण।

ठीक उसी प्रकार उन्होंने 'भामाशाह भारती भवन' का भी समर्पण कर दिया। उसका पुण्य पत्र लिखने का अवसर मुझे मिला। हरिभद्र स्मृति मन्दिर का निर्माण मुनिजी ने कराया जिसमें उनके स्व-अर्जित 70,000/– (सत्तर हजार) रुपये लगे, उसमें मोह नहीं रखा एवं उसका भी समर्पण कर दिया। सर्व-देवायतन मन्दिर का निर्माण कराया, सभी देवी देवताओं की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित कीं जिसमें लगभग 40,000/– (चालीस हजार) रुपये खर्च आये, उसका भी समर्पण-पत्र लिख रजिस्ट्री करा दी एवं उसके सुसंचालन हेतु निजी कृषि भूमि का भी पुण्य-पत्र लिख दिया।

इस प्रकार मुनिजी ने संस्थाओं के आन्तरिक उलझनों से स्वयं को सदैव दूर रखा।

जिस सर्वोदय साधनाश्रम को मुनि जिनविजय जी ने पूज्य विनोबा भावे को भेंट किया, उस आश्रम के निर्माण की परिकल्पना मुनिजी के पत्र दिनांक 28–1-50 से प्रकट होती है। भूदान-यज्ञ, सर्वोदय आदि विनोबाजी के विचार सन् 1953 के पश्चात् के हैं, परन्तु इस आश्रम का बीज रूप नाम संस्करण मुनिजी के जनवरी 1950 के पत्र से हो जाता है। जैसे—

"मैंने प्रायः राजस्थान में कहीं डेरा डालने का निश्चय किया है और अभी तो कहीं चित्तौड़ के पास ही आसन जमाने का विचार है। गत बसन्त पंचमी के शुभ दिन उदयपुर में यह संकल्प किया है। कहीं 15–20

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोघा जमीन का टुकड़ा लेकर उसी पर अपनी झोंपड़ी बनाकर रहना तथा एकान्त जीवन व्यतीत करना, यही मुख्य लक्ष्य रहेगा। सर्वोदय साधनाश्रम के रूप में इसका नामकरण किया जायेगा, वहाँ बैठे-बैठे जो भी सामाजिक सेवा निराकुल भाव से हो सकेगी, उसको करने की थोड़ी बहुत प्रवृत्ति बनी रहेगी। साहित्यिक प्रवृत्ति से प्रायः मन उपरत हो रहा है। 4-5 अनाथ बालकों को लेकर मैं वहाँ झोपड़ी बनाऊँगा।"

मुनिजी की यह परिकल्पना सार्थक हुई और सर्वोदय साधनाश्रम का निर्माण कराया गया तथा बिना किसी झिझक-हिचक के स्वेच्छा से संस्था को सौंप दिया। रूपाहेली में 32,000/– (बत्तीस हजार) की लागत से बना गांधी-ग्राम-भवन भी वहाँ की संस्था को सौंप दिया।

मुनिजी ने अपनी जीवनी की प्रस्तावना में जो उन्होंने 84 वर्ष की आयु में लिखी, इस बात को स्पष्ट किया है :–

"राष्ट्रीय महातीर्थ चित्तौड़गढ़ के समीप चन्देरिया गाँव में जिस सर्वोदय आश्रम की मैंने स्थापना की है, वह मेरी श्रम विषयक अभिरुचि का प्रतीक है। मेरे जीवन में जिस तरह ज्ञान विषयक अभिरुचि प्रवहमान रही परन्तु श्रम विषयक रुचि का प्राबल्य रहा है। अतिप्रिय अध्ययन, संशोधन व लेखन कार्य करते हुए मुझे उपरति हो जाती है, परन्तु शारीरिक परिश्रम करते हुए मुझे कभी उपरति नहीं हुई। यही कारण है कि जितना अधिक आनन्द चन्देरिया में रहते हुए हुआ, उतना आनन्द पूना, बम्बई, अहमदाबाद, शान्तिनिकेतन तथा जयपुर, जोधपुर वाले ज्ञानात्मक केन्द्रों में प्राप्त नहीं कर सका।

यद्यपि मुझे जो कुछ प्रसिद्धि या कार्यसिद्धि प्राप्त हुई, वह मेरी ज्ञानाभिरुचि का ही फल है। श्रमाभिरुचि से केवल आन्तरिक सन्तोष मिलता रहा है। बाकी बाह्य दृष्टि से अनेक आर्थिक लाभों से वंचित रहना पड़ा, कोई अन्य लाभ या विशेष परिणाम प्राप्त नहीं है।

मेरे लिए हरिभद्र सूरि स्मृति मन्दिर का विशेष महत्त्व यों है कि मैंने उसे महान् जैनाचार्य के स्मारक स्वरूप बनवाया है जिनके ज्ञान व जीवन कार्य के प्रति मेरी अत्यन्त श्रद्धा व भक्ति है। ऐसे महान् शास्त्रकार, मर्मोपदेशक, योगविद् परम कोटि के आध्यात्मिक तत्त्व द्रष्टा, विप्ररत्न आचार्य को मेरे अन्धकारपूर्ण व लक्ष्यहीन जीवनमार्ग में मैंने सदैव दीपस्तम्भ माना है। यह दुर्ग उनका कार्यक्षेत्र रहा है।"

यही विशेष कारण रहे कि मुनिजी का चित्तौड़ से विशेष लगाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहा। उनकी इच्छा के अनुरूप चन्देरिया में ही उनकी पालित पुत्री भगवती की छत्री के समीप उनकी स्मृति-स्वरूपा छत्री का निर्माण-कार्य कराया।

ऐसे मनीषी, कर्मयोगी, देवकाय, महापुरुष का स्मरण हमें अपनी जननी जन्मभूमि के प्रति समर्पण के लिये प्रोत्साहित करता है।

मुनिजी ने इस पुण्यभूमि मेवाड़ को इन श्लोकों में स्मरण किया है—

यस्या क्षेत्रं वनवापीकूपसरित्सरोवरम्।
ग्रामनगरगिर्यादिसर्वतोर्थं मम स्थितम्॥

मेवाडाख्या प्रसिद्धा या स्वर्गादपि गरीयसी।
जन्मभूमिः सुपूज्या सा मातृतुल्या प्रियंकरा।

तस्या पुण्यपवित्रा या सत्कीर्तिभूतमन्दिरैः।
करोम्यहं कृतेरस्याः सद्भक्त्या वै समर्पणम्॥

मुनिजी की इसी उक्ति के साथ कि हम हमारी इस जन्मभूमि के प्रति इसके यश को अधिक उज्ज्वल बनाने हेतु अपने आपको समर्पित कर दें, अपने उद्बोधन में एक बार कहा था—

"सोना चांदी पैदा करने वाले तो रोज हजारों जन्म लेते हैं। सोना, चांदी जैसा मिट्टी रूपी धन-सम्पत्ति बिल्कुल गारे के घड़े के समान क्षुद्र स्वरूप व क्षणस्थायी वस्तु है। उद्यमी कुम्हार जैसे एक दिन में सैकड़ों घड़े बना सकता है, उद्यमी व्यापारी भी हजारों लाखों पैदा कर सकता है। परन्तु संस्कारवान्, चरित्रवान्, नैतिकतायुक्त जीवन वन के एक एक कण के सर्जन होने में कई युगों का समय और अनेक आदर्श साधकों का स्वार्पण अपेक्षित होता है। हमारी दृष्टि में तो देश के वे ही पुरुष सच्चे रक्षक व उद्धारक हैं जो प्रजा के इस जीवन-सम्पत्ति की यथाशक्ति रक्षा करते हैं।"

उन्होंने आगे लिखा—

"मेरी दृष्टि में प्रजा की इस जीवन-सम्पत्ति के कौन सच्चे रक्षक व उद्धारक हैं? राजनेता तो रक्षक बनने का नकली स्वांग रचते हैं। इस सम्पत्ति के रक्षक वे राजालोग हैं, वे राजनीतिज्ञ, वे नेतागण हैं। वे रक्षक हो सकते हैं मिट्टीमय भूमि के, धातुमय जडसम्पत्ति के, लेकिन प्रजा की जीवन-सम्पति के रक्षक तो ऋषि, महर्षि व साहित्योपासक विद्वान् ही हो सकते हैं।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"भारतीय संस्कृति के रक्षक रामचन्द्र व कृष्ण नहीं हैं परन्तु महर्षि वाल्मीकि व वेदव्यास हैं। इसलिए राष्ट्र के भाग्यनिर्माता व भाग्य-रक्षक सच्चे चरित्रवान्, समाजसेवी व साहित्यकार ही हो सकते हैं।"

इसीलिए उन्होंने भगवान् महावीर व ऋषभदेव का मन्दिर नहीं बनवाया। उन्होंने मुनिविप्र श्री हरिभद्र सूरि का स्मृति मन्दिर बनवाया।

ऐसे क्रान्तिकारी विचार के थे मुनि जिनविजयजी। देश में आपात्काल लागू हुआ। पद्मश्री मुनि जिनविजय ने पद्मश्री की उपाधि लौटाते हुए "इन्दिराजी" को एक पत्र लिखा और 'जयप्रकाशजी' आदि नेताओं के प्रति किये गये व्यवहार की भर्त्सना की। ऐसे प्रकाण्ड, विद्वान् उत्कट, साहित्यसेवी का चित्तौड़नगर पर भारी ऋण है जिसका चुकारा हम आज के इस आपाधापी व क्षुद्रस्वार्थपूर्ति के युग में उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर ही कर सकते हैं। प्रयत्न हमारे है मुनिजी के आशीर्वाद हमारे साथ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनि जिनविजयजी

जीवन और कार्य

मूल लेखक
डॉ. भोगीलाल जे० सांडेसरा
पूर्व निदेशक,
ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा

अनुवाद
डॉ. सत्यनारायण स्वामी
राजस्थान राज्य अभिलेखागार
बीकानेर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर्पणम्

[१]

ॐ तत्सदित्यविरतं निजबोधरूपं
स्वानंदसिंधुमजमव्ययमाद्यमीड्यम् ।
वन्दे सदाहममृतं तमसः परं तं
सर्वेश्वरं प्रणतपालभवाब्धिपोतम् ॥

[२]

सच्चित्सुखां सुजनहृत्स्थतमोपहन्त्रीं
सच्छारदीयसरसीरुहदिव्यवक्त्राम् ।
श्रीशारदामखिलवाङ्मयसारदां तां
वन्दे मुदामृतकलाममरादिसेव्याम् ॥

[३]

यो वीतराग इह विग्रहवान् सुकीर्तिः
यच्च प्रवर्तकवरः किल शान्तमूर्तिः ।
तीर्थंकरास्यनलिनोपमितास्यकान्तिः
वन्द्यो हि कांतिविजयो मुनिराड्विभूतिः ॥

[४]

यस्तत्पथानुयायो तत्स्मृतिगाङ्गप्रवाहमज्जनकृत् ।
यतिवर्यो जिनविजयो जयति सदा विश्ववंद्यनुतमूर्तिः ॥

[५]

साधुश्रेष्ठो गुणवान् गुणिप्रियः शिष्यवत्सलो मान्यः ।
विज्ञाग्र्यगीतकीर्तिर्जिनविजयो राजते सदा लोके ॥

[६]

पुरातत्त्वाचार्यो जिनविजयसंज्ञो गुरुवरो-
ऽनुसंधानक्षेत्रेऽप्रतिहतगतिस्तीव्रधिषणः ।
यदङ्घ्र्यब्जद्वन्द्वं विमलममलैः सेवितमहो
अलंकर्तुं स्वान्तं सततमयशान्तं सुरुचिरम् ॥

[७]

सांण्डेसरान्ववायजजयचन्द्रसुतेन धीमता भक्त्या ।
भोगीलालेन कृतिः समर्प्यते तत्कराब्जयोरेषा ॥

[८]

संशोधनशास्त्रगुरुर्मम जीवनशिल्पकृत्सदा वन्द्यः ।
मत्कृतिसमर्पणेन हि विश्वात्मकतां गतः स तुष्टोऽस्तु ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रास्ताविक

सद्गत मुनि जिनविजयजी के जीवन और कार्य-विषयक यह पुस्तिका उनकी प्रथम पुण्यतिथि पर, जून १९७७ में प्रकाशित हो जायगी, ऐसी धारणा थी। परन्तु जिस प्रेस में वह पहले छापने के लिये दी गई थी उसने काम बहुत विलम्ब से प्रारम्भ किया और वह भी दो फरमे छापने के बाद रोक दिया गया। पुस्तिका को सामग्रीं के कुछेक पन्ने खो गये, जिन्हें फिर से लिखना पड़ा। मुनिजी के परम सुहृद् (और मेरे विद्यागुरु सद्गत मुनि श्री पुण्यविजयजी के अध्यापक होने से मेरे परमगुरु). प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी इस पुस्तिका का प्रकाशन देखने के लिए उत्सुक थे, किन्तु उनका दिनांक 2 मार्च 1979 ई० के दिन स्वर्गवास हो गया। अंततः आदित्य प्रेस में पुस्तिका छापने के लिये दी गई और मेरे मित्र डॉ मधुसूदन पारेख के स्नेहपूर्ण सहयोग से, मुनिजी की दूसरी पुण्यतिथि के अवसर पर भी वह प्रकाशित हो सकती है।

'जिनविजय जीवनकथा' और 'मेरी जीवनप्रपंच कथा' ये दो आत्मकथात्मक कृतियाँ मुनिजी ने हिन्दी में लिखी हैं। इनमें उन्होंने इक्कीस वर्ष की आयु तक के आत्मवृत्तांत का आलेखन किया है। उनमें निहित जानकारी का प्रस्तुत-पुस्तिका में उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त पं० सुखलालजी और प्रो० रसिकलाल छो० पारीख के लेख तथा उनके साथ हुम्रे वार्तालाप भी उपयोगी ठहरे हैं। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में मुनिजी के एक सहकर्मी डॉ० पद्मधर पाठक द्वारा लिखित हिन्दी परिचय पत्रिका और मुनिजो को श्री विजयधर्मसूरि जैन साहित्य स्वर्णपदक समर्पित किया गया उस अवसर पर प्रकाशित हुई श्री रतिलाल दीपचन्द देसाई कृत गुजराती परिचय-पत्रिका इन दोनों पत्रिकाओं का थोड़ा उपयोग किया गया है। जर्मन विद्वान् डॉ० वोली और प्रो० ल्युडविग आलसडोर्फ ने कुछ जरूरी जानकारी यथासम्भव शीघ्रता से प्रेषित की थी। (प्रो० आल्सडोर्फ का थोड़े दिनों पहले ही, गत २५ मार्च, १९७८ ई० को देहावसान हुआ है। उनके निधन से भारतीय विद्या-विशेषतः प्राकृत भाषाओं और जैन-विद्या के कोष-क्षेत्र को भारी क्षति पहुँची है।) प्रिंसिपल श्री यशवन्तभाई शुक्ल ने कतिपय अतिदुर्लभ ग्रंथ उपयोग हेतु उधार दिये थे। परिशिष्ट में प्रकाशित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनिजी का पत्र प्रो॰ रसिकलाल छो॰ पारीख से प्राप्त हुआ था । मुनिजी के जीवनकार्य का समीचीन मूल्यांकन करतो भावांजलि प्रो. विष्णुप्रसाद त्रिवेदी ने भेजी थी । प्रो. केशवराम शास्त्री, प्रो. दलसुखभाई मालवणिया, पण्डित अमृतलाल भोजक और पं. लक्ष्मणदास भोजक ने तथा मेरे अनुज चि. उपेन्द्रभाई ने विविध प्रकार से मदद की थी । अर्पणपत्रिका के श्लोकों की रचना में श्री विनायक बालकृष्ण प्रकाशकर ने सहायता की थी । इन सभी सज्जनों का मैं उपकार मानता हूं ।

इस पुस्तिका के प्रकाशन हेतु अपनी सुविख्यात प्रकाशन संस्था गुर्जर ग्रंथरत्न कार्यालय का मैं आभारी हूं ।

भोगीलाल जयचन्दभाई सांडेसरा

'संवाद'
6 श्रेयस सोसायटी,
रेसकोर्स सर्कल (पश्चिम),
बड़ोदरा ।
13 अप्रैल, 1978 ई.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपक्रम

ईस्वी सन् १९३१ के मई माह की 20 वीं तारीख थी। नयी प्रारम्भ होने वाली सिंघी जैन ग्रंथमाला के लिये हस्तलिखित प्रतियों आदि की सामग्री एकत्र करने के लिये पूज्य मुनि जिनविजयजी पाटण आये हैं और फाटीपाल के दरवाजे के बाहर जैन छात्रालय में ठहरे हैं-ऐसा मित्रों से सुनकर, स्कूल में पढ़नेवाला एक मुग्ध किशोर उन्हें मिलने गया था और गुजराती भाषा, संस्कृति और इतिहास सम्बन्धी अपने स्वल्प वाचन में उपस्थित होने वाले अनेक नादानी-भरे प्रश्न उनसे किये थे और मुनिजी ने रस और धैर्य-पूर्वक विस्तृत उत्तर देकर उसके कुतूहल को तृप्त करने का प्रयत्न किया था। किशोर की जिज्ञासा में उन्होंने भावी विद्यानुराग के बीज पहचाने होंगे। जैसे महान् मनीषी वैसे हीं महान् तपस्वी मुनिश्री पुण्यविजयजी अपने परम-गुरु प्रवर्तकश्री कान्तिविजयजी के वार्धक्य के कारण उस समय पाटण में कई वर्षों से स्थायी रूप से रह रहे थे। जिनविजयजी ने उनसे उस किशोर का परिचय करवाया और एक विद्यार्थी के रूप में उन्हें स्नेहपूर्वक उसे सौंपा तथा समय-समय पर दूर से तथा समीप से उसकी प्रवृत्ति एवं प्रगति को स्वयं जांच करते रहे।

ठीक पैंतालीस वर्षों बाद, १९७६ ईस्वी के मई माह को 20 वीं तारीख थी। अहमदाबाद में सरदार वल्लभभाई पटेल स्टेडियम के सामने अपने 'अनेकांतविहार' में फेफड़े के कैंसर की प्राणांतक बीमारी से आचार्य जिनविजयजी रुग्णशय्या में थे तब जीवन के साठवें वर्ष में पहुंचा वह पाटण-वाला किशोर उनसे मिलने के लिए आया था। जिनविजयजी अत्यन्त अशक्त थे और आवाज भी अत्यन्त क्षीण थी तथा आंखों का नीर भी गहरा उतरा हुआ था। किन्तु, पूर्वपरिचित मित्र का आगमन सुनकर उठ बैठे। उसकी पत्नी तथा बालकों के स्नेहपूर्वक समाचार पूछे तथा अपने अधूरे कामों की और उनमें से उस मित्र द्वारा स्वेच्छा से पूरा करने के लिये निर्धारित कामों के सम्बन्ध में उत्साहपूर्वक लगभग आधा घण्टे बातें की। आनन्द और सौहार्द के कारण मुनिजी की आवाज में से थोड़ी देर के लिये व्याधिग्रस्तता, जैसे, दूर हो गई थी। सन्तोषपूर्वक बातचीत करके, थक जाने के कारण पानी पीकर वे सो गये। पूर्वोक्त किशोर का जिनविजयजी के साथ यह अन्तिम मिलन था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह किशोर जिनविजयजी का यह ऋषिऋण कदापि नहीं चुका सकने वाला इस अनुस्मृति का लेखक है। लगभग आधी शताब्दी तक चल रहे घनिष्ठ परिचय के कारण निजी संस्मरणों तथा जिनविजयजी के जीवनकार्य की रूपरेखा—इन दोनों की सहज सृष्टि उसके इस लेखन में मिलेगी।

दिनांक ३ जून, १९७६ई. सं. २०३२ वि० की ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी गुरुवार को लगभग साढ़े पाँच बजे अहमदाबाद में जिनविजयजी ने नवासी वर्ष की आयु में कालधर्म को प्राप्त किया। वे दिन समस्त गुजरात में भारी चक्रवात और बरसात के थे। रेडियो का बटन घुमाते ही जयपुर स्टेशन के प्रादेशिक समाचार हिन्दी में अचानक सुनाई पड़े; उनसे जिनविजयजी के देहावसान के सम्बन्ध में अवगत हुआ और उनके पार्थिव देह को उनकी इच्छा के अनुसार अन्तिम संस्कार के लिये अहमदाबाद से चित्तौड़ ले जाया जायगा, यह सुना। अन्तिम बार अहमदाबाद में उनसे मैं मिला तब यह स्पष्टतः देखा था कि उनका शरीर अधिक समय तक टिकनेवाला नहीं है, फिर भी यह समाचार सुनकर मुझे और मेरे कुटुम्बियों को भारी शोक हुआ। भारतीय परम्परा के अनुसार कृतविण्ध तपस्वियों का निर्वाण शोक का नहीं अपितु उत्सव का प्रसंग होता है, परन्तु निकटतम स्नेही लोगों को ऐसे समय पर केवल तत्वचिंतन तत्काल शान्ति कैसे प्रदान कर सकता है?

परन्तु साधुचरित महापुरुषों के इतिवृत्त का, अनुभवों का, चिंतन प्रणाली और विचारसरणी का, जीवन और मृत्यु में उनके पराक्रमों का—समाधिमय जीवन और समाधिमरण का स्मरण करते हैं तब हमें भी अतिशय शांति का अनुभव होता है। इसे प्राप्त करने के प्रयत्न से इस निबन्ध का उद्भव हुआ है। स्वान्तःसुखाय हुआ इस प्रयत्न से समभावी पाठकों को लाभ होगा, ऐसा विश्वास है। सामाजिक दृष्टि से आकर्षक दिखनेवाली साहित्यिक प्रवृत्तियां भी, नरसी मेहता के शब्दों में, 'अेह परपंच सौ पेट भरवा तणा' (ये सारे प्रपंच उदर-पूर्ति के लिए) होते हैं, ऐसा प्रतिभासित हो तब जगन्नियंता की श्रीमद् और ऊर्जित एक विद्याविभूति का, जिसका भारतीय समाज ने आधी शताब्दी से भी अधिक समय तक सतत दर्शन किया है, संकीर्तन प्रेरणादायक होगा—ऐसी आशा है।

पूर्वकथा :

मुनिश्री जिनविजयजी की जन्म-भूमि और जन्मस्थान भूतपूर्व मेवाड़ राज्य को एक प्रतिष्ठित जागीर रूपाहेली है। अजमेर-चित्तौड़ रेल्वे-लाइन पर वर्तमान राजस्थान राज्य के भीलवाड़ा नगर की हुरडा तहसील का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह एक कसबा है। रूपाहेली एक ऐतिहासिक गांव है और लगभग साढ़े सात सौ वर्ष पहले, सं० १२८० (ई. सं. १२२४) में यह बसा था। उस समय गुजरात और राजस्थान का (उस समय 'राजस्थान' शब्द प्रयोग था ही नहीं, यह शब्द तो राजपूत प्रेमशौर्य के परम प्रेमी कर्नल जेम्स टॉड ने प्रचलित किया है), उसमें भी मेदपाट अथवा मेवाड़ का लोकजीवन एकसूत्र में गुंथा हुआ था। उसी वर्ष और उसके आसपास के दशकों में आबू पर्वत पर वस्तु-पाल-तेजपाल की लूणवसति की अद्भुत कलामय स्थापत्य रचना हो रही थी। पाटण-धोळका से आरम्भ होती शत्रुंजय-गिरनार की संघयात्राओं से गुजरात के राजमार्ग भरे थे। शस्त्र और शास्त्र की निपुणता में गुर्जर नागरिक अवन्ति और शारदा देश की स्पर्धा करते थे तथा पाटण, आनन्दपुर और धोळका के वेदपाठी ब्राह्मणों के यज्ञों और ब्रह्मघोष से समस्त गुजरात शब्दायमान था। उस समय ज्ञान संस्कृत-जगत् में था तथा राज्यशासन उदात्तवर्ग का था। सामन्तवादी दमन नहीं था, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, पर भारतीय संस्कारों के सूक्ष्म स्रोत की शीतलता समाज के निम्नतम गिने जाते वर्गों तक में निगूढ़ थी। उत्तर मुगलयुग अथवा इसके बाद के काल में कई शताब्दियों तक भारत में प्रवर्तित मात्स्यन्याय, जिससे मुक्त होने के हर्ष में 'ए उपकार गणी ईश्वरनो हरख हवे तुं हिन्दुस्तान' (इसे ईश्वर का उपकार मानकर हे भारत ! अब तू हर्षित हो) यह ध्रुवपद कवीश्वर दलपतराम ने गाया, के यदाकदा होनेवाले उद्गम को भी दीर्घदर्शी राजवी और उनके अहिंसाप्रिय किन्तु व्यवहारकुशल अमलदार अथवा सचिव कठोरतापूर्वक दबा देते थे। बृहद् गुजरात के उस स्वर्णयुग में रूपाहेली की स्थापना हुई थी।

उस रूपाहेली में सं० १९४४ की माघ शुक्ला १४ (पंचांग को गणनानुसार २७ जनवरी, १८८९ ई.) के दिन सूर्योदय के तुरन्त पश्चात् परमारवंशी वृद्धिसिंहजी की पत्नी राजकुँवर अथवा राजकुमारीजी की कोख से किशनसिंह अथवा रणमल्ल नामक बालक का जन्म हुआ था। वह बालक आगे चलकर मुनि जिनविजयजी के रूप में विख्यात हुआ। वृद्धिसिंहजी के पिता का—किशनसिंह के दादा का नाम तख्तसिंहजी था।

यह परमारवंशी क्षत्रिय कुटुम्ब अवन्तिनाथ मुञ्ज और भोज के विद्याविलसी और पराक्रमी वंशजों का था। ई० सं० १८५७ में समस्त उत्तर भारत में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध क्रांति की अग्नि भड़क उठी जिसकी चिन-गारियां राजस्थान में भी उछलीं। अजमेर के समीप नसीराबाद की छावनी में कतिपय भारतीय सैनिकों ने हंगामा मचाया जिसमें इस कुटुम्ब के अनेक सगे सम्बन्धी थे। उनमें से दो-चार जवानों ने छावनी से भागकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तख्तसिंहजो के पिता संग्रामसिंहजी की अेकलसिंगा नामक गांव की जागीर में आश्रय लिया था। यह समाचार नसीराबाद के अंग्रेज अफसरों को मिलते ही उन्होंने अेकलसिंगा को घेर लिया। जागीरदार संग्रामसिंहजी, उनके भाई सूरतसिंहजी तथा भाई के पुत्र नाहरसिंहजी ने बहादुरी से मुकाबला किया। उसमें संग्रामसिंहजी के साथ-साथ उनके परिवार के कई प्रधानपुरुष[1] मारे गये। किशनसिंह के दादा तख्तसिंहजी और पिता वृद्धिसिंहजी ने भी इस दंगे में पूरा भाग लिया था।

अंग्रेज सेनापति ने अेकलसिंगा गांव को जला देने का तथा कोई भी व्यक्ति हाथ लगे तो उसे गिरफ्तार करने अथवा मार डालने का आदेश दिया। थोड़े-से स्त्री-पुरुष अपना जीवन बचाने के लिये इधर-उधर भाग निकले। तख्तसिंहजी और वृद्धिसिंहजी तथा दूसरे तीन-चार लोग इसी प्रकार निकल पड़े और लुकते-छिपते पुष्करतीर्थ के आसपास की पहाड़ियों में उन्होंने आश्रय लिया। कुछ समय पश्चात् कतिपय सन्तों की सलाह से उन दोनों ने साधु-वेश धारण किया और जन्मस्थान को छोड़कर वे आबू, द्वारका, गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा में निकल पड़े। वर्षों तक इस प्रकार अज्ञातवास और गुप्त वेश में रहने के बाद विद्रोह का उपद्रव कुछ भुलावे में पड़ने पर वे अपने जन्मस्थान के समीप अरावली की पहाड़ियों के निर्जन स्थानों में रहने लगे।

सन् १८५७ ई० के विद्रोह में जिन राजपूत सिपाहियों ने भाग लिया था अथवा जिन्होंने इनकी कुछ सहायता की थी उन्हें पकड़कर सजा देने के लिये अंग्रेज सरकार ने सभी देशी राज्यों को सख्त आदेश दिये थे। मेवाड़ के महाराणा ने भी अपने समस्त सामन्तों और जागीरदारों को इस आदेश को तत्काल अमल में लाने के लिये सख्त चेतावनी दे दी थी।

परन्तु वर्ष बीतते गये और अंग्रेजी सत्ता तथा उसके मांडलिक भी सन् १८५७ की घटनाओं को विस्मृतप्राय गिनने लगे तब तख्तसिंहजी और वृद्धिसिंहजी अपनी विनष्ट जागीर और संतप्त परिवार की सार-सम्भाल लेने के लिये पुनः पुष्कर तीर्थ आये।

तख्तसिंहजी का शरीर जराजीर्ण हो गया था और परिवार पर अपनी अनुपस्थिति में आ पड़े संकटों के कारण उनका मन खिन्न हो गया था।

---

१ नीति शास्त्र का एक श्लोक इसे लिखते-लिखते याद आ रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप 'प्रधान पुरुष' का प्रयोग हुआ —

पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनः निशितैः शरैः।
युद्धे विजयसन्देहः प्रधानपुरुषक्षयः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपाहेली के कुछ निवासी पुष्कर की यात्रा पर गये तो तख्तसिंहजी को उन्होंने पहचान लिया और अज्ञात वेश में भी रूपाहेली आने के लिये आग्रह किया। पर तख्तसिंहजी की इच्छा पुष्कर में ही बसते हुए शेष जीवन केवल भगवद्-स्मरण में व्यतीत करने की होने से उन्होंने अपने पुत्र वृद्धिसिंहजी को रूपाहेली भेजा, और वृद्धिसिंहजी साधुवेश छोड़कर, गृहस्थ के वस्त्र धारण कर रूपाहेली आये। विद्रोह के तुरन्त पश्चात्, सन् १८५८ में वे भूगर्भ में गये थे और पूरे बीस वर्ष पश्चात् सन् १८७८ में संसार में प्रकट हुए थे।

किंतु रूपाहेली-निवास में भी एक कठिनाई थी। सिपाहियों के विद्रोह में भाग लेनेवाला कोई राजपूत योद्धा रूपाहेली में बस रहा है ऐसी खबर उदयपुर दरबार में पहुँच जाय तो भारी संकट खड़ा हो सकता है-इस भय से रूपाहेली के निवासी आन्तरिक सद्भाव रखते हुए भी वृद्धिसिंहजी के साथ कोई खास सम्बन्ध नहीं रखते थे!

इस भयमूलक बहिष्कार से खिन्न होकर वृद्धिसिंहजी अजमेर के समीप काशोला गांव में थोड़े दिनों के लिए गये; उनके चाचा नाहरसिंहजी का वहां ससुराल था। नाहरसिंहजी तो १८५७ के विद्रोह में मारे गये थे पर उनकी पत्नी और पुत्र-पुत्री काशोला में रहते थे। तख्तसिंहजी ने पुत्र वृद्धिसिंहजी को सूचना दी थी कि नाहरसिंहजी के परिवार का पता लगाया जाय और उसे आश्रय दिया जाय। इससे नाहरसिंहजी के पुत्र इन्द्रसिंहजी को लेकर वृद्धिसिंहजी अपने जन्मस्थान आये। काल-क्रम से उन के हमवतनी लोग भी राजकीय भय से कुछ मुक्त हुए और उन्होंने सीमा-रक्षण का तथा आसपास के जंगल का कुछ काम वृद्धिसिंहजी को सौंपा और उन्हें सामान्य आजीविका का साधन प्राप्त हुआ। इस अरसे में उनका विवाह बनेड़ा के राणावत हमीरसिंह जी की पुत्री राजकुमारी के साथ हुआ था, किन्तु दो-तीन वर्ष में राजकुमारी का देहावसान हो गया और इस दम्पति के एकमात्र पुत्र पन्नासिंह का आनन्द-कुंवर नामक एक सम्बन्धी महिला ने लालन-पालन किया।

ऐसे में समाचार आया कि पुष्कर तीर्थ में साधु तख्तसिंहजी की अवस्था अतिक्षीण हो गई है। वृद्धिसिंहजी पुष्कर गये और थोड़े ही दिनों में पिताजी का देहान्त हो गया।

तत्पश्चात् कुछेक कारणवशात् सिरोही महाराव के साथ वृद्धिसिंहजी का परिचय हुआ। वृद्धिसिंहजी कुशल शिकारी थे। उनकी कुशलता से प्रसन्न होकर महाराव ने उन्हें पिंडवाड़ा जिले के जंगल-अधिकारी के रूप में नियुक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया था। पिंडवाड़ा और वसन्तगढ़[1] के बीच एक छोटी-सी जागीर थी। वृद्धिसिंहजी और उनके पिता साधुवेश में गुप्त-वास कर रहे थे तब उस जागीरदार के गांव में थोड़े समय रहे थे। गांव के उपकंठ (सीमा) पर एक जोर्ण शिवालय था और समोप ही साधुसन्तों के रहने के लिये एक छोटी-सी धर्मशाला भी थी। उस जागीरदार की पत्नी का तीन-चार वर्ष पूर्व अवसान हो चुका था और एकमात्र पुत्री के अतिरिक्त उसके कोई सन्तान नहीं थी। पुत्री की आयु भी बोस–बाईस वर्ष की अर्थात् उस जमाने के अनुसार बड़ी थी। वृद्धिसिंहजी और जागीरदार की पुत्री परस्पर एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हुये, गांधर्व-विवाह किया और फिर कन्या के वृद्ध पिता ने अपनी सम्पति के अनुसार धूमधाम से विवाहोत्सव का आयोजन किया। वह कन्या हमारे चरित्रनायक किशनसिंह की भावी माता राजकुमारी थी।

उसके पिता की जागीर दरिद्र जैसो थो, पर जागीरदार के पास बीसेक हजार रुपयों के गहने थे, जो उसने अपनी पुत्री को दे दिये। जागीर का उत्तराधिकारी तो राजकोय रीति-रिवाज के अनुसार एक चचेरा भाई होने वाला था।

वृद्धिसिंहजी विवाह के पश्चात् पत्नी को साथ लेकर आबू पर अचलेश्वर के और पास ही मन्दाकिनी कुण्ड के किनारे सारणेश्वर के दर्शन को गये। अचलेश्वर परमारों का महातीर्थ माना गया है और सारणेश्वर उस समय के सिरोही के देवड़ा चौहान राजवियों का कुलदेव[2]। परमार धारावर्ष

---

१. बन्सतगढ़ का कोई शासकीय महत्व कभी भी नहीं था। परन्तु प्राचीन काल से मथुरा, स्तम्भतीर्थ और पालीताणा की तरह वह शिल्पियों और शिल्पकला का केन्द्र था। ईस्वी सन् ७४४ में शिवनाग नामक शिल्पी द्वारा निर्मित अद्‌भुत सौंदर्यशाली दो प्रतिमाएं बसन्तगढ़ में मिली हैं। उनपर उत्कीर्ण लेख में कहा है—

साक्षात् पितामहेनैव सर्वरूपविधायिना ।
शिल्पिना शिवनागेन कृतमेतज्जिनद्वयम् ॥

अर्थात् साक्षात् पितामह ब्रह्मा की तरह सब प्रकार के रूपों का विधान करनेवाले शिल्पी शिवनाग ने इन दो जिनमूर्तियों का निर्माण किया है।

(सांडेसरा, 'इतिहास अने साहित्य', अहमदाबाद, १९६६, पृ० १७६)

२. परमारों की प्राचीन राजधानी आबू की तलहटी-स्थित चड्डावली अथवा चन्द्रावती थी। भूतपूर्व सिरोही राज्य के दीवान श्री लल्लूभाई भीमभाई देसाई लिखित 'आबूना परमारों' और देवड़ा चौहानों के पराक्रम का वर्णन करने वाली मनोरंजक उपन्यासमाला 'परमार धारावर्ष', 'बाला मन्जी परमार' और 'बालहठ बांका देवड़ा' ऐतिहासिक जनश्रुतियों के रसिकों के लिये पठनीय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के भाई प्रह्लादनदेव, चिसने पालणपुर बसाया था, द्वारा रचित संस्कृत ग्रन्थ 'पार्थ पराक्रम व्यायोग' अचलेश्वर महादेव के पवित्रकारोपण पर्व में अभिनीत हुआ था। परमार धारावर्ष की, धनुर्वेद का प्रयोग करके तीन भैंसों को एक-साथ बींधती हुई पूरे कद की मूर्ति मन्दाकिनी के पास है। वहां से पुष्कर-तीर्थ की यात्रा करके दम्पति अपनी जन्मभूमि रूपाहेली पहुँचे।

तत्पश्चात् दो-एक वर्षों में राजकुमारी के पिताजी का स्वर्गवास हो गया। पिता की मृत्यु के बाद राजकुमारी एक ही बार केवल शोक-प्रदर्शन हेतु अपने गांव गई थीं। चचेरे भाइयों ने घरबार कब्जे में कर लिये थे और जागीर पर अधिकार जमा लिया था; इससे फिर से पीहर जाने की इच्छा उन्हें कभी नहीं हुई।

बालक रणमल्ल और गुरुवर यति देवीहंसजी :

सन् १८८८ में किशनसिंह का जन्म होने के पश्चात् पांचवें वर्ष उनके छोटे भाई बहादुरसिंह का जन्म हुआ था, जिसका लाड का नाम बादल था। उससे पहले एक बहन का जन्म हुआ था, पर वह दो-तीन वर्ष की अल्पायु में स्वर्गस्थ हो गई।

उस समय रूपाहेली में कोई स्कूल अथवा पाठशाला नहीं थी, इस कारण बालक किशनसिंह उर्फ रणमल्ल को ग्यारह-बारह वर्ष तक तो किसी प्रकार का अक्षरबोध भी नहीं हुआ! ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गई त्यों-त्यों समय खेलकूद में बीतने लगा। इस तेजस्वी और तन्दुरुस्त बालक को तालाब और बावड़ियों में डुबकियां लगाने का तथा तैरने का बड़ा शौक था और अन्य बालकों के साथ गुल्ली डण्डा और गेंद-लकड़ी खेलने में तथा दूसरे राजपूत किशोरों के साथ तमंचे से निशानाबाजी सीखने में इसका समय आनन्दपूर्वक व्यतीत हो रहा था।

रूपाहेली में देवीहंस नामक एक वृद्ध और विद्वान् जैन यति रहते थे। ज्योतिष और वैद्यक में भी वे प्रवीण थे। राजकुमारी गुरु-महाराज के दर्शन करने के लिये उपाश्रय में गई तो एक बार बालक किशनसिंह पर उनकी प्रथम दृष्टि पड़ी। हमारे चरित्रनायक किशनसिंह जो आगे चल कर मुनि जिनविजयजी हुये, उन्हीं द्वारा अंकित देवीहंसजी का शब्दचित्र देखिये— 'यतिश्री ऊंचे कद के और भरावदार शरीरवाले थे। उनकी मुखाकृति जितनी सौम्य थी, उतनी भव्य थी; बड़ा-बड़ा नाक और पानीदार आंखे; मस्तक पर रेशम के तार जैसे सफेद केश थे, जो गर्दन तक लटकते थे। मूंछें भरावदार और श्वेत थी तथा आवाज में अद्भुत गुञ्जन था। वे अत्यन्त मधुरभाषी और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हंसमुख थे। उनके प्रथम दर्शन से ही उनके प्रति मेरा अव्यक्त भक्तिभाव मन में अंकित हो गया।'

किशनसिंह के पिता वृद्धिसिहजी का कुटुम्ब उनके सिरोही राज्य की नौकरी में जाने के पश्चात् सामान्यतः सुखी था। रूपाहेली में कच्ची मिट्टी की दीवारों वाला, घास से निर्मित दो कमरों का उनका घर था; सामने एक छोटा दुमन्जिला मकान था; उन दोनों के बीच की खुली जगह चौक के रूप में काम आती थी। उसके बीच में नीम का एक पेड़ था जिसके आसपास मिट्टी से निर्मित, चारों ओर से लीपा हुआ गोल चबूतरा था।

वे दिन तेज गति वाले वाहन चलने के नहीं थे। वन विभाग की नौकरी के कारण वृद्धिसिहजी को दिनों घर से बाहर रहना पड़ता और उस जमाने में राजस्थान में छोटे गांवों में डाक की सुविधा नहीं होने से राजकुमारीजी को लम्बे समय तक उनके कोई समाचार नहीं मिलते थे। गर्मी के दिनों में एक शाम को घोड़े पर सवार हुये वृद्धिसिहजी घर आये। संग्रहणी की गम्भीर बीमारी थी। उन्होंने राजकुमारीजी से कहा—"बड़ी मुश्किल से तुम्हारे पास आ सका हूं, शायद भगवान् मुझे अब अपने पास बुलाने वाले हैं।" बालक किशन को उन्होंने कहा—'बेटे! दूर क्यों खड़ा है? मेरे समीप आ। इस समय मैं बहुत बीमार हूँ—इससे तुम्हारे लिये कोई अच्छी खाने-पीने की चीज नहीं ला सका; पर ये थोड़े से बेर लाया हूं, इन्हें खा ले।'

रूपाहेली के ठाकुरसाहब चतुरसिहजी संग्रहणी के पुराने रोगी थे; उन्होंने हजारों रुपये खर्च कर अजमेर के डॉक्टरों, हकीमों और वैद्यों का इलाज करवाया था, पर वह सार्थक नहीं हुआ। उस समय वे अपना अन्तिम इलाज अजमेरवासी जैन यति अमरहंसजी के पास करवा रहे थे। अमरहंसजी उस समय मात्र अजमेर में ही नहीं, समस्त मारवाड़ में प्रसिद्ध वैद्य गिने जाते थे। पर उन्हें वैद्यकविद्या के कई विशिष्ट रहस्य सिखाने वाले व्यक्ति उनके गुरु के गुरु-भाई यतिवर देवीहंसजी थे। देवीहंसजी स्वभाव से निःसंग थे। कहीं कोई स्थानक बनाकर रहना उन्हें पसन्द नहीं था। वे अनेक स्थानों में विहार करते और अपने विशिष्ट वैद्यक-ज्ञान द्वारा अनेक लोगों को रोगमुक्त कर उनके श्रद्धाभाजन बनते। देवीहंसजी अपने गुरुभाई के शिष्य अमरहसजी के आग्रह से उन दिनों अजमेर में थे। ठाकुर चतुरसिहजी अपने उपचार के लिये गये तब देवीहंसजी महाराज वहां विराजमान थे। वैद्यवर अमरसिहजी ने चतुरसिहजी से कहा—"ठाकुर! जीवन चाहते हो तो मेरे परम गुरु देवीहंसजी के चरण पकड़ लो।" यह सुनकर चतुरसिहजी यति देवीहंसजी के चरणों में जा गिरे और जीवनभिक्षा मांगकर बोले—"कृपा करके आप मेरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गांव रूपाहेली पधारिये। वहां यतियों का एक प्राचीन उपाश्रय है। आप वहां रहिये और मुझे तथा मेरी प्रजा को निरोग बनाइये।' परिव्राजक देवीहंसजी ने ठाकुर चतुरसिंहजी के आग्रह से उनके गांव में आकर स्थायी निवास किया।

यति देवीहंसजी सिद्धहस्त वैद्य थे, वैसे ही मर्मज्ञ ज्योतिर्विद् भी थे। उन्होंने चतुरसिंहजी की जन्मकुण्डली देखकर निर्णय किया कि वे दीर्घायुषी हैं। उनकी चिकित्सा से चतुरसिंहजी ने पूर्ण आरोग्य प्राप्त किया। उस समय से उग्रतविहारी यतिजी रूपाहेली में बसे और पूरे गांव के आबालवृद्ध के श्रद्धाभाजन बन गये।

वृद्धिसिंहजी की गम्भीर बीमारी के समाचार पाकर उनका स्वास्थ्य देखने के लिये यतिश्री दूसरे ही दिन उनके घर पहुंचे। राजकुमारी ने उनके चरणों में मस्तक नवाया और बालक किशनसिंह भी उनके पैरों पड़ा। यतिजी ने मधुर दृष्टि से देखकर पूछा—"बेटे! तुम्हारा नाम क्या है?" बालक ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया— "रणमल्ल"। "वाह, वाह! नाम तो बड़ा सुन्दर है।" ऐसा कह कर वे नीम के नीचे पलंग पर सोये वृद्धिसिंहजी को देखने गये। उनके उपचार से वृद्धिसिंहजी धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे, पर उनका रोग समूल नष्ट नहीं हुआ। गुरु-महाराज प्रसंगवश उनके घर आते और उनके खानदान की पुरानी बातें सुनते। एक बार वृद्धिसिंहजी के औष-धोपचार के लिये मौसम्बी की आवश्यकता पड़ी। उस समय पास में, अजमेर के सिवा कहीं मौसम्बी नहीं मिलती थी। गुरुजी स्वयं अजमेर गये और मौसंबी का टोकरा ले आये। मुनि जिनविजय के रूप में पीछे से विश्वविश्रुत होने वाला बालक लिखता हैं "उस मौसम्बी को रसदार फांके गुरुजी ने सबसे पहले मुझे खाने के लिये दीं। इस प्रकार खूब वात्सल्यपूर्वक गुरुजी ने मौसम्बी खिलाई थी; **मौसम्बी के मीठे रस का (और गुरु के प्रेम-रस का) मैंने जीवन में सर्वप्रथम अनुभव किया था।** इसके बाद मैंने अपने हाथ से रस निकाल कर पिताजी को पिलाया!"

एक बार प्रभात-वेला में गुरुजी वृद्धिसिंहजी की तबियत पूछने आये तब उन्हें आभास हो गया कि रोगी का शरीर अब अधिक टिकने वाला नहीं है। एक सहृदय वैद्य के अनुरूप वे, रोगी का चित्त प्रसन्न रहे ऐसी बातचीत करने लगे। किशनसिंह उर्फ रणमल्ल समीप ही बैठा था। वृद्धि-सिंहजी ने सोते-सोते ही हाथ जोड़कर कहा– "इस बालक को आपकी शरण में सौंप रहा हूँ; इसे ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि हमारे कुल का उद्धार हो जाय!" भविष्य-दर्शन करते-से, अर्धनिमीलित नेत्रों से गुरुजी ने उत्तर दिया—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"ठाकुर ! तुम्हारा पुत्र भाग्यवान है ; यह तुम्हारे वंश और कुल के गौरव को बढ़ायेगा ! " यह सुनकर वृद्धिसिंहजी की आंखों में आंसू टपकने लगे और इस कारण राजकुमारीजो खिन्न हो गईं। गुरुमहाराज उपाश्रय जाने लगे कि राजकुमारीजी ने कहा— 'बेटा रणमल्ल ! गुरांसां[1] को छोड़ आ ! उपाश्रय पहुँचने के पश्चात् किशनसिंह के गाल पर हाथ फिरा कर गुरांसा बोले— "बेटा ! ठाकुर साहब की खूब सेवा करते रहना !"

इस प्रसंग के पश्चात् लगभग तीसरे दिन वृद्धिसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। उन्हीं दिनों वृद्धिसिंहजी के श्रद्धेय मित्र, यतिवर देवीहंसजी को रूपाहेली में बसानेवाले विद्यारसिक ठाकुर चतुरसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मणसिंहजो[2] का विवाहोत्सव राजवंशोचित धूमधाम से सम्पन्न हो रहा था। उस उपलक्ष्य में आयोजित एक दो भोजन-समारोहों में भी बालक किशनसिंह गया था। तत्पश्चात् शोकप्रसंग के कारण जीमने (भोजन करने) जाना बन्द हो गया।

ठाकुर चतुरसिंहजी द्वारा लिखित अपने आत्मवृत्त के अनुसार, उनके ज्येष्ठ पुत्र का विवाह सं० १९५५ (सन् १८९९ ई०) के माघ मास के शुक्ल पक्ष में (तिथि सूचित नहीं की गई है) हुआ था, अतः वृद्धिसिंहजी का स्वर्गवास उसके बाद एक दो दिन में हुआ होगा।

वृद्धिसिंहजी के द्वादशाह (बारहवां) आदि विधि के हो चुकने के थोड़े दिनों पश्चात् राजकुमारीजी को सांत्वना देने के लिये गुरुमहाराज उनके घर गये, और मीठे शब्दों में आश्वासन देकर बोले— "ठकुरानी ! रणमल्ल को मेरे पास भेजते रहना, मैं उसे विद्याभ्यास कराना चाहता हूं; तुम्हारा बेटा बुद्धिमान् होगा और तुम्हारे घराने की प्रतिष्ठा बढ़ायेगा।"

तत्पश्चात् किशनसिंह गुरुमहाराज के पास नियमित रूप से जाने लगा। शुभ दिन, शुभ मुहुर्त देखकर गुरुजी ने पट्टी पर वर्णमाला सिखाना आरम्भ किया। बाद में जैन धर्म के सर्वादिमंगल तथा सर्वान्तिमंगल-रूप मन्त्र 'नमो अरिहंताणम्' आदि नमस्कार मंत्र—नवकार मंत्र कंठस्थ कराया। शब्दोच्चारण की दृष्टि से।

---

१. मेवाड़-मारवाड़ में जैन यतियों को 'गुरांसा' (गुरुसाहब) से सम्बोधित किया जाता है।

२. ठाकुर चतुरसिंहजी के कतिपय पत्रों के लिये देखें, जीवन के प्रथम पन्द्रह वर्षों के संस्मरणों के उल्लेख वाली मुनिजी की हिंदी आत्मकथा 'जिनविजय जीवन-कथा'; पृ० १६८-१८९।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐकारबिंदुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः ।।

यह श्लोक कंठस्थ करवाया और 'कातंत्र व्याकरण' के कुछ प्रारम्भिक सूत्र मौखिक याद करवाये। इसके साथ ही शास्त्र-शुद्ध उच्चारण का शिक्षण भी वे देते रहे। 'उवसग्गहर स्तोत्र' आदि प्राकृत भाषा के विघ्नविनाशक स्तोत्र नित्यपाठ हेतु सिखाये। उपाश्रय के पार्श्व में चारभुजाजी अर्थात् चतुर्भुज का वैष्णव मन्दिर था। उसका पुजारी गांव के महाजन (वणिक) आदिकों के लड़कों को अंक, नाम आदि सिखाया करता था। रात को किशनसिंह अपने घर रहता और दिन का अधिकांश भाग गुरुमहाराज के पास तथा थोड़ा समय चारभजाजी के मन्दिर की ग्राम-पाठशाला में व्यतीत करता।

माता राजकुमारीजी का स्वरूप, सचमुच, राजकुमारी का ही था। बालक किशनसिंह अपनी माता का रेखाचित्र अंकित करता है— "मेरी माता की शरीरत्वचा अत्यन्त मोहक और मुखाकृति रम्य थी। उसके लम्बे केश कमर तक लटकते थे। मुझे बराबर याद है कि जब वह अपने केश छितरा कर बैठती तब उसकी पीठ पर लटक कर, उन बिखरे बालों में छिपकर मैं अपने आपको ढक लिया करता था। मेरी माता राजकुमारी का कण्ठ बड़ा मधुर था। वह प्रातःकाल रोज भजन गाती, जिन्हें उसकी गोद में बैठकर मैं सुना करता। पुराणों की असंख्य कथाएं उसे याद थीं; जिन्हें अपने पास आने वाली स्त्रियों को वह सुनाया करती।"

वृद्धिसिंहजी के स्वर्गवास के पश्चात् एक साल, वि० सं० १९५६ (सन् १९०० ई०) में समस्त गुजरात और राजस्थान में भयंकर दुष्काल पड़ा था जो 'छप्पनिया' नाम से जाना जाता है। दयालु गुरु देवीहंसजी स्वयं अकिंचन थे, पर उन्होंने भूखों के लिये एक अन्नसत्र खोला।

कबीर कहे कमाल कूं दो बातां सीख ले।
कर साहेब की बंदगी अरु भूखे को अन्न दे।।

यह पद्य वे बारम्बार बोलते। उस अन्नसत्र के लिये राजकुमारीजी धर्मार्थ आटा पीसतीं और अन्य स्त्रियों से भी पिसवातीं। दुष्काल-पीड़ितों को गुरुजी रोटी देते साथ ही उनकी चिकित्सा भी करते। धनिक रोगियों से भी गुरुजी कोई फीस नहीं लेते, पर उनकी ओर से कोई भेंट मिलती तो उसे गरीबों और अकालग्रस्तों के निमित्त सेवा-कार्य में लगा देते।

छप्पनिये दुष्काल के पूरे होने पर, सं. १९५७ (सन् १९०१) के लगभग वैशाख माह में प्रातःकाल गुरुजी लकड़ी के तख्त— चारपाई से नीचे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उतरते समय गिर पड़े और उनके दाहिने पैर की हड्डी टूट गई। ठाकुर चतुरसिंहजी ने एक बार कहा था कि गुरुजी की आयु उस समय १०९ वर्ष की थी। पर किशनसिंह की कल्पना के अनुसार "उनकी आयु ९५ और १०० वर्षों के बीच की रही होगी, क्योंकि उनसे मिलने के लिये आसपास के यतिजन आते, उन्हें वे कहा करते कि मेरी आयु अब सौ वर्ष को होने को आई है। उनके इन शब्दों की ध्वनि आज भी मेरे कानों में गूञ्ज रही है!"

वृद्धावस्था में हड्डी टूट जाने पर उसका जुड़ना बहुधा असाध्य हो जाता है। कुशल वैद्य होने से उन्होंने मन-ही-मन विश्वास कर लिया कि निरोग होना अब असम्भव है। चित्तौड़ से उदयपुर जाने के राजमार्ग पर स्थित बानेड़ गांव के धनचन्द यति गुरुजी से मिलने आयें थे; उन्होंने वैयावच्च (शुश्रूषा) के लिये गुरुजी को अपने यहां ले जाने की इच्छा व्यक्त की और गुरुजी माता की अनुमति से किशन को भी अपने साथ ले गये। किसी अन्तः प्रेरणा से माता को लगा होगा कि वह पुत्र का मुख फिर कभी नहीं देख पायेगी, इस कारण गुरुजी की इच्छा और प्रेम के वशवर्ती होने पर भी सारी रात किशन को गले लगाये वह खूब रोयी। किशन तो अबोध बालक होने के कारण नये-नये प्रदेश मुग्ध और जिज्ञासु-भाव से देखने का शौकीन था। पर विधि की लीला अगम है। सं० १९५७ (सन् १९०१ ई.) के भादों वदि द्वादशी के दिन—पर्युषण पर्व के प्रारम्भ के दिन प्रातःकाल चार बजे बानेड गांव में गुरुजी ने निर्वाण प्राप्त किया। मां-बेटे भी एक-दूसरे का मुखदर्शन कभी नहीं कर सके। विश्वविख्यात पुरात्त्वाचार्य मुनि जिनविजयजी के रूप में बरसों बाद किशनसिंह कैसी करुण मनोदशा में रूपाहेली वापिस आये, यह बात आगे बतायेंगे।

मृत्यु के दस-पन्द्रह मिनट पूर्व गुरुजी ने अपने बालक शिष्य को बुलाकर कहा—'बेटे रणमल्ल! तू विद्या पढ़ने का प्रयत्न करना। तू बड़ा विद्वान् और भाग्यशाली बनेगा। अब हम तो इस संसार से विदा ले रहे हैं!"

खाखी बाबा किशनभैरव और स्थानकवासी मुनि किशनलालजी

गुरुजी के अवसान के बाद उस बालक का भ्रमणशील-जीवन प्रारम्भ हुआ। जिन धनचन्द यति के घर गुरुजी का अवसान हुआ था वे बाल बच्चेदार और खेती-बाड़ी वाले समृद्ध गृहस्थ जैसे थे। उनका परिवार किशनसिंह से रातदिन खेत में काम करवाता, किंतु पूरा खाने को ही नहीं देते। इस आपत्ति और जिज्ञासा ने एक-साथ मिलकर किशन को संसार से जूझने का बल दिया। सं० १९५८ (सन् १९०२) के वैशाख माह में एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खाखी बाबा के पास भैरवो दीक्षा लेकर वह बालक किशन भैरव बना। बाबाओं के दुश्चरित्र देखकर, त्रस्त हो उनके टोले से भागकर, सं. १९५९ (सन् १९०३) में शास्त्रज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय की दीक्षा एक मारवाड़ी साधु के पास ली। उस दीक्षा का सात-आठ वर्ष तक बराबर पालन किया। किन्तु वहां भी ज्ञानपिपासा तृप्त न होने पर सं० १९६५ (सन् १९०९) में जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय के संविज्ञ मार्ग की दीक्षा ली और, दीक्षार्थी के अपने शब्दों में कहें तो— 'यह शरीर उस दिन से मुनि जिनविजय के नाम से जाना जाने लगा। परन्तु, अपने किसी अज्ञात प्रारब्ध-योग के बल से सात-आठ वर्ष पश्चात् मैंने उस सम्प्रदाय के साधुवेश का भी परित्याग कर दिया, और उस दीक्षित जीवन से विरत हो गया। केवल 'मुनि जिनविजय' नाम इस शरीर से जुड़ा रहा और इसीलिये लोग मुझे 'मुनिजी' के रूप में जानते हैं। उस समय मैंने देशसेवा और साहित्य-सेवा की चौथी दीक्षा ली, और मैं साधुजीवन के मार्ग से भिन्न मार्ग में प्रवृत्त हुआ……" ('ज्ञानांजलि', मुनिश्री पुण्यविजयजी अभिवादन ग्रंथ, बड़ोदरा, १९६९, पृ० २८-२९, मुनिश्री जिनविजयजी का लेख 'सत्त्वपरिपूर्ण समदर्शी जीवन'।)

ऊपर लिखे अनुसार, सन् १९०९ में सम्प्रदाय-परिवर्तन कर बालक किशनसिंह अथवा रणमल्ल जिनविजय हो गये।

स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा उन्होंने सं १९५९ के आसोज सुदि १३ के दिन, पन्द्रह वर्ष की आयु में ली थी। स्थानकवासी सम्प्रदाय में, श्वेताम्बर को तरह, दीक्षित साधु का नाम न बदले जाने से हमारे नवदीक्षित बालसाधु किशनलालजी के रूप में जाने गये। उस समय वे अपने गुरु के साथ परमार राजा मुंज और भोज के अवंतिदेश की मध्यकालीन राजधानी धारा-नगरी– मांडू के पास धार में थे। वहां कमाल मौला की मस्जिद के रूप में जानी जाती मस्जिद भोजराजा द्वारा बनवाया गया विद्यालय था, ऐसी स्थानीय किंवदती सुनकर उन्होंने किसी गृहस्थ के साथ उस स्थान की यात्रा की और अपने परमारवंशोय पूर्वज को सारस्वत सेवा का सान्निध्य-अनुभव किया।[1] सुप्रसिद्ध विद्वान् रामकृष्ण गोपाल भांडारकर के सुपुत्र श्रीधर रामकृष्ण भांडारकर पूना के डेकन कॉलेज के संस्कृत के प्रोफेसर होने के साथ-साथ भारतीय आर्कियोलोजी विभाग के वेस्टर्न सर्कल के अधीक्षक होकर अपने सेवाकार्य हेतु धार आये थे। उन्होंने भोजशाला के रक्षण की

---

१. इस स्थान के ब्यौरेवार वर्णन के लिये देखें, 'बुद्धिप्रकाश', जून १९६६ में मेरा लेख 'भोजराजानुं सरस्वती-सदन,' जो लेख-संग्रह 'अन्वेषण' में भी ग्रंथस्थ हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यवस्था की, शिलालेखों के फोटो, छापे (Rubbings) आदि लिये, और प्राचीन ऐतिहासिक स्थापत्य को मुसलमान अथवा दूसरे कोई अब और अधिक हानि नहीं पहुंचायें, इसके लिये धार राज्य को पक्की हिदायत दे दी— इन सबका बालसाधु किशनजी के अन्तःस्थ भावी महामनीषी के चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ा।

पुराणप्रसिद्ध उज्जयिनी नगरी धार से कोई विशेष दूर नहीं है। गुरुवर देवीहंसजी ने किशनजी को जो स्तोत्रादि कंठस्थ करवाये थे उनमें से 'कल्याणमन्दिर स्तोत्र' सिद्धसेन दिवाकर नामक पूर्वाश्रम के ब्राह्मण आचार्य की कृति थी, यह किशनजी ने सुन रखा था। जैन जनश्रुति बतलाती है कि सिद्धसेन दिवाकर ने उज्जयिनी में महाकाल के मन्दिर में बैठकर इस स्तोत्र को रचना की थी और उससे महाकाल के धाम में पार्श्वनाथ की मूर्त्ति प्रकट हुई थी; उसे जैन लोग अवन्ती पार्श्वनाथ के नाम से पूजते हैं। यह जनश्रुति सुनकर किशनलालजी महाराज को मन्दिर के भीतर जाकर महाकालेश्वर के बाण (शिवलिंग) के दर्शन करने की इच्छा हुई। एक दिन दो श्रावकों के साथ वे मन्दिर के द्वार पर गये तो वहां बैठे ब्राह्मण पुजारी ने उन्हें कठोर स्वर से कहा— 'ढूंढ़िया महाराज, आप यहां किस लिये आये हैं ?' महाराज ने उत्तर दिया—'पुजारीजी ! हमें भीतर जाकर मन्दिर देखना है।' पुजारी ने तिरस्कारपूवक कहा— 'आप ऐसे नहीं जा सकते। पहले नदी पर जाकर हाथ-मुँह धो आइये और फिर आपकी बगल में यह जो झाड़ू (जैन साधु का रजोहरण) है उसे यहां रखिये और आपके मुँह पर बांधी हुई पट्टी(मुहपत्ती) भी उतार कर यहां रख दें ! फिर भीतर जाना हो तो जाइये !" यह सुनकर किशनलाल महाराज मन-ही-मन क्रुद्ध होकर वापिस लौट गये।

उन्होंने महाकालेश्वर का मन्दिर, भीतर प्रविष्ट होकर तो बहुत वर्षों बाद, गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर के आचार्य होने के पश्चात् देखा था। यूरोपियन विद्वानो को जैन साहित्य, हस्तलिखित ग्रंथ आदि प्रदान कर अर्वाचीन काल में पहली बार उदारतापूर्वक सहायता करनेवाले युगवीर आचार्य विजयधर्मसूरि के शिष्य न्यायविशारद न्यायाचार्य मुनिश्री न्यायविजयजी महाराज के आग्रह से जिनविजयजी उज्जैन गये तब वहां के ऐतिहासिक स्थानों का उन्होंने प्रथम बार निरीक्षण किया।

पण्डित सुखलालजी लिखते हैं कि "उज्जैन के खण्डहरों में फिरते-फिरते एक संध्याकाल क्षिप्रा के तट पर उन्होंने (मुनिजी ने) स्थानकवासी साधुवेश छोड़ दिया।" सतत बन्धो मुंहपत्ती के कारण पड़े सफेद दाग को कोई पहचान नहीं ले, अतः उसे मिटा डालने के उन्होंने अनेक प्रयत्न किये और पीछे से कोई पकड़ नहीं ले इसलिये एक-दो दिन में तो वे अनेक कोस भाग निकले। इस दौड़ में एक बार वे पानी से भरे कूए में अचानक गिर पड़े।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संवेगी दीक्षा और विद्याभ्यास

परन्तु पुरुषार्थी को कुछेक सुविधाएं अचानक मिल जाती हैं। मार्ग के किसी गांव में श्रावक लोग पर्युषण में कल्पसूत्र बँचाने के लिये किसी यति अथवा साधु की खोज में थे। किशनजी वहां जा पहुंचे। उनके त्वरित वाचन से आश्चर्यचकित होकर ग्राम-जनों ने उन्हें वहां रोक लिया और पर्युषण के अन्त में सत्कारपूर्वक थोड़ी दक्षिणा दी। किशनजी ने सुना था कि अहमदाबाद बड़ा शहर है और वहां जैन-मूर्तिपूजक सम्प्रदाय बड़ा है; साथ ही वहां विद्वान् हैं और विद्या प्राप्त करने की सुविधा है। इससे उन्होंने अहमदाबाद का टिकट कटवाया। पर अहमदाबाद जाकर उन्हें कोई विशेष अनुकूलता नहीं मिली। व्यवहार की जानकारी का अभाव और अपने आप को व्यक्त नहीं करने की वृत्ति के कारण भी उन्हें काफी-कुछ सहन करना पड़ा। तत्पश्चात् अनेक स्थलों का पर्यटन करते-करते मारवाड़ के पाली शहर में उन्हें सुन्दर-विजयजी नामक श्वेताम्बर संवेगी साधु मिले। उनके पास उन्होंने संवेगी दीक्षा ली और मुनि जिनविजय के रूप में जाने गये।

सुन्दरविजयजी अत्यन्त सरल और शांत प्रकृति के थे। अपने शिष्य जिनविजयजी के सभी स्थितिपरिवर्तनों के सम्बन्ध में वे कहते कि 'वह जो करेगा वह ठीक ही होगा।' जिनविजयजी ने सुन्दरविजयजी का आश्रय विद्वान के रूप में नहीं अपितु उनके आश्रय से विद्या प्राप्त करने में विशेष सहूलियत होगी, इस दृष्टि से लिया था। थोड़े समय पश्चात् अभ्यास में विशेष अनुकूलता प्राप्त करने के लिए एक अन्य प्रसिद्ध जैन साधु के सहवास में वे गये। वहां देखने-जानने के लिये विस्तृत क्षेत्र मिला, पर जिज्ञासा की वास्तविक पूर्ति नहीं हुई। अन्ततः वे प्रवर्तक श्री कांतिविजयजी के सहवास में आकर उनके अंतेवासी (शिष्य) बन गये। कांतिविजयजी परम विद्यानुरागी, शांतमूर्ति और विद्वानों को प्रेरणा देने वाले थे। उनके पास जिनविजयजी को अभ्यास करने की बड़ी सुविधा मिली, विद्वानों का सान्निध्य मिला और ऐतिहासिक दृष्टि से पुष्ट करने वाले पर्याप्त साधन मिले तथा पाटण में एवं अन्यत्र प्राचीन ग्रथभण्डार देखने-भालने की की सतत सुगमता मिल गई। कांतिविजयजी के विद्वान् और शोधप्रिय शिष्य मुनि चतुरविजयजी के वे प्रीतिभाजन थे और चतुरविजयजी के शिष्य तथा आगे चलकर 'आगम-प्रभाकर' के रूप में विख्यात होनेवाले मुनिश्री पुण्य-विजयजी के वे परम सुहृद बने। यह सौहार्द दोनों पक्षों में आजीवन था और विशुद्ध ज्ञानभक्ति ही इसके पीछे का प्रेरक बल था। गुजरात विद्यापीठ के पुरातत्व मन्दिर के आचार्यपद पर नियुक्त होने के पश्चात् सन् १९२१ में प्रका-शित 'प्राचीनजैन लेख संग्रह', भाग दो का समर्पण जिनविजयजी ने प्रवर्तक श्री कांतिविजयजी को जिन भावपूर्ण शब्दों में किया है उसमें प्रवर्तकजी महाराज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के प्रति उनका कृतज्ञ-भाव झलकता है। प्रवर्तकजी के साथ उनका प्रथम मिलन सं० १९६८ (ई. स. १९१२) में सूरत में हुआ और उस वर्ष का चातुर्मास भी उनके साथ सूरत में हुआ। सं० १९६९ का चातुर्मास डभोई में और १९७० का चातुर्मास पाटण में हुआ। स्थानकवासी और श्वेताम्बर साधुचर्या में उन्होंने अनेक स्थानों में पादविहार किया था और कई संघयात्राओं में जुड़े थे तथा इस प्रकार पैदल प्रवास द्वारा इतिहास और संस्कृति का उनका अध्ययन चालू था। स० १९७० के चातुर्मास के पश्चात् पाटण के एक धनिक सेठ ने केसरियाजी (मेवाड़) की यात्रा का संघ निकाला था, उसमें भी वे जुड़े।

केसरियाजी की संघयात्रा से पुनः गुजरात आकर जिनविजयजी ने सं० १९७१ का चातुर्मास महेसाणा में किया। वहां से पालणपुर गये और सं० १९७२ का चातुर्मास पाटण में किया तथा वहां के विख्यात प्राचीन हस्त-लिखित ग्रंथभण्डारों का निरीक्षण-कार्य प्रारम्भ किया। बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव की आज्ञा से पाटण के भण्डारों का निरीक्षण कर गायकवाड्ज ओरियण्टल सिरीज का आरम्भ करनेवाले श्री चिमनलाल दलाल (सी. डी. दलाल) अपने पूर्ववर्ती विद्वानों बूलर, पीटर्सन, मणिलाल नभूभाई आदि के समान उन भण्डारों का ब्यौरेवार निरीक्षण कर सके, यह प्रवर्तक श्री कांतिविजयजी और उनके शिष्यमण्डल के पूर्ण सहयोग का ही परिणाम था। श्री दलाल के साथ जिनविजयजी का पाटण में परिचय हुआ, जो आगे चलकर बड़ौदा में प्रगाढ़ हुआ और नानाविध शोधकार्यों में परिणत हुआ।

इससे पहले ही प्रवर्तकजी ने मुनिजी के अध्ययन के लिये उत्तम व्यवस्था कर दी थी; यद्यपि मुनिजी का स्वशिक्षण भी उतना ही तेजस्वी था। प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी मुनिजी के एक अध्यापक थे, जो बाद में आजीवन गहरे मित्र बन गये थे और विद्या तथा जीवन के अनेक कार्यों में वे एक-दूसरे के आधारभूत बन गये थे। उन दोनों ने साथ ही निवास किया और उनका गृह-संचालन तथा सेवाशुश्रूषा सद्गत मोतीबहन ने की, यह भी सौहार्द का एक परम सात्त्विक इतिहास है। पण्डितजी को उस समय मासिक पचास रुपयों का वेतन मिलता, पर उसमें से मात्र बारह रुपये रखकर बाकी रकम वे योग्य विद्यार्थियों में वितरित कर देते। पण्डितजी के पास मेहसाणा और पाटण में 'प्रमेयरत्नकोश', 'तिलकमंजरी', 'काव्यानुशासन', आदि ग्रंथ मुनिजी सीखते थे। दूसरे पण्डितों के पास भी वे कई ग्रंथ पढ़े थे। पर मेधा और जिज्ञासा अति तीव्र होने से पण्डितजी के लिखने के अनुसार, "पढ़ने का आरम्भ और अन्त लगभग साथ ही होता।"

वैयाकरण शाकटायन विषयक प्रथम लेख मुनिजी ने पाटण के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवास-काल में तैयार किया था, जो हिन्दी को सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक और हिन्दी के विख्यात साहित्यकार पं० महावीर-प्रसाद द्विवेदी के पत्र मुनिजी ने 'मेरे दिवंगत मित्रों के कुछ पत्र' नामक पुस्तक में प्रकाशित किये। पाटण के भण्डार से प्राप्त हुई एक प्राचीन गुजराती कृति 'नेमिनाथ राजीमती बारामासा' विषयक लेख उनने 'जैन श्वेताम्बर कोन्फ्रेंस हेराल्ड' में प्रकाशित करवाया।

जैन साधुचर्या में रात को दीपक की रोशनी में नहीं पढ़ा जाता, पर मुनिजी के लिखने-पढ़ने की इच्छा अत्यन्त तीव्र और समय का सदुपयोग नहीं कर सकने का दुःख —इसलिये पं० सुखलालजी से बैटरी लेकर उसके प्रकाश में एकांत में वे लिखने-पढ़ने लगे। पण्डितजी लिखते हैं कि 'तिलकमंजरी' के कर्ता धनपाल-विषयक लेख मुनिजी ने उस बैटरी के प्रकाश से पाटण में लिखा।

बड़ौदा-निवास और शोधकार्य :

महेसाणा और पाटण के बाद का सं० १९७३ का चौमासा मुनिजी ने बड़ौदा में किया तब भी पं० सुखलालजी उनके साथ थे। घडियाली पोल में जानी शेरी (गली) में श्री आत्मानन्द जैन उपाश्रय में प्रवर्तक श्री कांतिविजयजी की निश्रा (आश्रय) में मुनिमण्डल का निवास था और जिस स्थान पर मुनिजी की बैठक रहती वह स्थान सद्गत आगम-प्रभाकर पुण्यविजयजी महाराज ने मुझे बताया था। बड़ौदा की सुप्रसिद्ध सेन्ट्रल लाइब्रेरी उपाश्रय के अत्यन्त समीप थी। उसके संस्कृत विभाग के लाइब्रेरियन चिमनलाल दलाल से प्रगाढ़ परिचय यहीं मुनिजी को हुआ और उनके साथ विद्याविषयक विविध आदान-प्रदान हुआ। (इस संस्कृत विभाग के मुद्रित और हस्तलिखित ग्रंथों को अलग करके थोड़े वर्षों पश्चात्, सन् १९२७ में गायकवाड़ सरकार ने ओरियेन्टल इन्स्टिट्यूट–प्राच्य विद्यामन्दिर – नामक शोध सस्था की अलग रूप से स्थापना की, जो सन् १९४९ में बड़ौदा राज्य के विलीनीकरण के समय और महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी के बनने पर युनिवर्सिटी के साथ जुड़ गई। उस संस्था के नियामक रूप में और गायकवाड़ ओरियेन्टल सीरीज के मुख्य सम्पादक के रूप में सत्तर वर्ष की आयु तक काम करने का अवसर इस लेखक को मिला था।) दलाल के निवेदन पर सोमप्रभाचार्यकृत प्राकृत महाग्रंथ 'कुमारपाल प्रतिबोध' का सम्पादन मुनिजी ने 'गायकवाड़ ओरियेन्टल सीरीज' के लिये किया उस ग्रंथ के अपभ्रंश अंशों का अध्ययन करके जर्मन विद्वान् डॉ. आल्सडोर्फ़ ने अपनी डॉक्टरेट के लिये शोध-प्रबन्ध तैयार किया है। इसी सीरीज के लिये प्रवर्तकश्री महाराज के शिष्य मुनिश्री चतुरविजयजी ने राजा कुमारपाल द्वारा जैन धर्म स्वीकार करने के उल्लेख वाले संस्कृत नाटक 'मोहराजपराजय' का सम्पादन किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनिजी के बड़ौदा निवास के सम्बन्ध में पण्डितजी लिखते हैं— "सेन्ट्रल लाइब्रेरी की पुस्तकों और जैन भण्डार के ग्रंथों का उपाश्रय में उनके मास ढेर लगा रहता, और यदि कोई स्वयं जाकर नहीं बुलाता तो वे मकान में हैं अथवा नहीं, इसकी खबर मात्र लेखन की आवाज से लगती।" अंग्रेजी भाषा का परिचय भी मुनिजी ने बड़ौदा के निवास-काल में प्राप्त कर लिया था।

बड़ौदा में मुनिजी ने प्रवर्तकश्री कांतिविजयजी इतिहासमाला का आरम्भ किया और उसके लिए 'विज्ञप्तित्रिवेणी', कृपारसकोश', 'शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध', 'प्राचीन जैन लेखसंग्रह', भाग १-२, 'जैन ऐतिहासिक गुर्जरकाव्य संचय', 'द्रौपदीस्वयंवर' नाटक आदि ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्व के ग्रन्थों का सम्पादन किया।

'विज्ञप्तित्रिवेणी' अलंकारप्रधान संस्कृत गद्य-पद्य में लिखित ऐतिहासिक पत्र है और जैन विज्ञप्तिपत्रों में उसका विशिष्ट स्थान है। यह पत्र सं० १४८४ में लिखा गया और सिंघ में मलिकवाहण नामक स्थान से जयसागर उपाध्याय ने खरतरगच्छ के आचार्य जिनभद्रसूरि को, जो उस समय पाटण में थे, भेजा गया था। 'कृपारसकोश' हीरविजयसूरि के विद्वान् शिष्य शांतिचन्द्र उपाध्यायरचित अकबर बादशाह का प्रशस्तिकाव्य है। विवेकधीरगणिरचित 'शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध', अपने नाम के अनुसार ही, एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति है। 'प्राचीन जैन लेखसंग्रह', भाग १ में कलिंगचक्रवर्ती महाराजा खारवेल का विख्यात प्राकृत लेख है; उसके पाठ के सम्बन्ध में मुनिजी ने पुराविद् श्री काशीप्रसाद जायसवाल के साथ उल्लेखनीय पत्र व्यवहार किया था (इसके लिये देखें 'मेरे दिवंगत मित्रों के कुछ पत्र', मुनिजी द्वारा संकलित)। 'प्राचीन जैन लेखसंग्रह' भाग २ में गुजरात और राजस्थान के ५५७ जैन शिलालेख हैं। 'जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्यसंचय' का विषय स्वयं स्पष्ट है। इतिहास तथा जूनी गुजराती भाषासाहित्य-दोनों के लिये यह संचय महत्त्वपूर्ण है। 'द्रौपदी-स्वयंवर नाटक गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह के प्रज्ञाचक्षु राजकवि श्रीपाल के पौत्र विजयपाल की कृति है। यह नाटक अपने रचनाकाल में ही पाटण में भीमदेव द्वितीय की आज्ञा से त्रिपुरुषप्रासाद में वसन्तोत्सव के अवसर पर खेला गया था। ये सारे सम्पादन विस्तृत और अध्ययनपूर्ण प्रस्तावनाओं तथा महत्त्वपूर्ण टिप्पणियों से अलंकृत हैं; ये सारे भावनगर की श्री जैन आत्मानन्द सभा की ओर से प्रकाशित हैं। तरुण वय में व्युत्पन्न संशोधक के रूप में सिद्धिप्राप्त मुनिजी की अन्वेषक प्रतिभा का पर्याप्त परिचय इन सम्पादनों से मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु मुनिजी की तीव्र जिज्ञासा को जैन साधुजीवन के रूढ़िबन्धन अनेक बार खटकते थे। पण्डितजी को वे अनेक बार लिखते—"आप भाग्यशाली हैं, आपके पास रेलवे की उपलब्धि है, चाहे जहाँ जा सकते हैं और चाहे जिस प्रकार से अध्ययन कर सकते हैं।"

पूना–निवास और भांडारकर इंस्टीट्यूट की स्थापना में योगदान :

बड़ौदा से पादविहार करके, भरूच और सूरत होते हुये मुनिजी बम्बई पहुँचे और सं० १९७४ का चातुर्मास बम्बई में किया। पण्डितजी लिखते हैं: "बम्बई में समशील विविध विद्वानों के परिचय और वहाँ के उन्मुक्त वातावरण ने उनकी अध्ययनवृत्ति को नाना रूपों में प्रेरित किया। वह उनका महापरिवर्तन का काल था। मैं बालकेश्वर में उनसे एक बार मिला तब देखा कि सतत पठन और चिंतन में मग्न रहते हुये भी वे गहरे असन्तोष में डूबे हुये थे। थाड़े महीनों पश्चात् उनका मन पूना के विद्यामय वातावरण से आकर्षित हुआ। वे पूज्य वृद्ध साधुओं का साथ छोड़कर दुःखी मन लिये अकेले निकल पड़े और पैदल चलकर पूना पहुँचे। वहाँ भण्डार और विद्वानों के इष्टतभ परिचय से उनका मन खूब रम गया। स्थान की प्राकृतिक रमणीयता, सादा जीवन और विद्यार्थियों तथा विद्वानों की बहुलता ने उन्हें पूना के स्थायी निवास के लिये ललचाया। भारत जैन विद्यालय (छात्रावास) की प्रवर्तमान संस्था को उन्होंने स्थायी रूप देने का प्रयत्न किया।" (यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि महावीर जैन विद्यालय, बम्बई को, पूना में शाखा खोलने के लिये भारत जैन विद्यालय का भवन सन् १९४९ में भेंट किया गया जिसमें मुख्य रूप से मुनिजी की प्रेरणा कारणभूत थी।) दूसरी ओर डेक्कन कॉलेज का (बाद में भांडारकर इन्स्टिट्यूट को सौंपा गया) बम्बई सरकार का हस्तलिखित पुस्तकसंग्रह उन्होंने बड़ी गहराई से देखा और 'उसमें उनकी शोधक बुद्धि को भारी सामग्री प्राप्त हुई।' पूना के राष्ट्रीय वातावरण में और देशव्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन में उनका मानस नवीन वैचारिक परिवर्तनों का अनुभव करने लगा।

सं० १९७४ में बम्बई के चातुर्मास के दौरान पूना के भांडारकर रिसर्च इंस्टिट्यूट का एक प्रतिनिधि-मण्डल बंम्बई आया था; उसने भी मुनिजी के समक्ष उनके पूना आगमन का प्रस्ताव रखा था। उस संस्था के लिये मुनिजी ने जैन संघ से पच्चीस हजार रुपयों की व्यवस्था करवाई थी; उनका भारत जैन विद्यालय भी उस संस्था के समीप ही था। भांडारकर इंस्टिट्यूट की स्थापना और व्यवस्था में मुनिजी की देन इतनी मूल्यवान् थी कि उस संस्था ने उन्हें अपना 'मानद सदस्य' पद समर्पित किया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीस से भी अधिक वर्षों तक भांडारकर इंस्टिट्यूट के मन्त्री पद को सम्भालने वाले डॉ० आर० एन० दांडेकर ने, इस संस्था की मुनिजी द्वारा की गई मूल्यवान् सेवा के सम्बन्ध में दिनांक २६ जुलाई, १९७६ को मुझे अंग्रेजी पत्र में जो लिखा है उसी का अनुवाद यहाँ दे रहा हूँ—

भांडारकर ओरियेन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट को उसके कार्य-काल के प्रारम्भिक वर्षों में मुनि जिनविजयजी ने जो स्मरणीय सेवायें प्रस्तुत कीं उनका स्मरण यह संस्था पूज्यतापूर्ण उपकारभाव के साथ करती है। दि० ६ जुलाई १९१७ ई० के दिन संस्था का उद्घाटन हुआ तब उसकी आर्थिक स्थिति किसी प्रकार सन्तोषजनक नहीं थी। संस्था के कार्यकर्त्ता दान के लिये सम्भावित स्थान ढूँढ़ चुके थे। आर्थिक सहयोग के इस प्रयत्न में वे बम्बई के कितने ही व्यापारियों से, विशेषत: जैन समाज के अगुओं से मिले। उनके साथ हुई मन्त्रणाओं का विवरण यहाँ देना आवश्यक नहीं। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि मुनि जिनविजयजी की शुभ कार्य में पहल करने की प्रवृत्ति, कार्यशक्ति और सतत प्रयत्नों के परिणामस्वरूप, जैन समाज ने संस्था के प्रथम वार्षिकोत्सव (दिनांक ६ जुलाई, १९१८ ई.) के दिन उन्हें निम्नांकित घोषणा करने का अधिकार दिया था—

"आप जानते ही हैं कि इस संस्था के स्थापन करने का मुख्य उद्देश्य भारतीय साहित्य का संशोधन और प्रकाशन करने का है। भारतीय साहित्य में वैदिक धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म तीनों धर्मों के साहित्य का समावेश होता है। इस संस्था का आदर्श जातीय और धार्मिक भेदभाव की दृष्टि से वियुक्त होकर कार्य करने का है। अत: इसके सम्मान्य संचालक महाशयों ने कुछ समय पहले जैन समाज के कतिपय गृहस्थों के साथ इस संस्था के बारे में कुछ ज्ञातव्य बातें कही थीं और जैन समाज को भी इस इंस्टिट्यूट में कुछ सहाय और सहानुभूति दिखलाने के लिये निवेदन किया था। मुझे कहने के लिये हर्ष होता है कि जैन समाज इस संस्था में अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता है और मुझे निश्चित सूचना मिली है कि हमारे उत्साही सज्जन इसी इंस्टिट्यूट को सहायतार्थ २५ हजार रुपये का दान करने का संकल्प कर थोड़े ही समय में वह द्रव्य समर्पण करना चाहते हैं। यह बात इस इंस्टिट्यूट के लिये आरम्भ ही में मंगल समान है और इस संस्था की लोकप्रियता, उपयोगिता और भावी महत्ता का इसमें सूचन होता है। अतएवं आशा है कि यह खबर यहाँ पर उपस्थित सब सज्जनों को खुशी दिलाने वाली होगी।

इंस्टिट्यूट के विद्या-विषयक विकास में भी मुनि जिनविजयजी एक विशिष्ट प्रेरणास्थान बने थे। सन् १९१९ में इन्स्टिट्यूट के हस्तलिखित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri.

प्रतियों के विभाग की समिति के एक सदस्य के रूप में उन्हें विशेष तौर पर को-ऑप्ट (सहयोजित) किया गया था और इन्स्टिट्यूट के हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह की बहुसंख्यक जैन हस्तलिखित पुस्तकों की वर्णनात्मक सूची बनाने का काम उनके प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में प्रारम्भ करवाया गया था।

यद्यपि, बाद के वर्षों में, मुनिजी को पूना छोड़ने की आवश्यकता पड़ गई थी, फिर भी वे इन्स्टिट्यूट के सतत सम्पर्क में रहने की चिंता करते थे और उसकी शोध-प्रवृत्ति को वे सक्रिय प्रेरणा देते रहते थे। वे पूना में अनेक बार इन्स्टिट्यूट के अतिथिगृह में ठहरते और तब संस्था के कार्यकर्त्ता उनकी प्रगाढ़ और विवेचनात्मक विद्वत्ता, व्यापक अनुभव तथा विशिष्ट आयोजनशक्ति का लाभ लेने में नहीं चूकते थे।

सन् १९१९ ई में अखिल भारत प्राच्य विद्या परिषद् (ऑल इण्डिया ओरियन्टल कोन्फ्रेन्स) का प्रथम अधिवेशन पूना में डॉ रामकृष्ण गोपाल भांडारकर के सभापतित्व में आयोजित हुआ। भारत में प्राच्यविद्या के अध्ययन-संशोधन के उत्कर्ष हेतु वह पहला ही संस्थागत सम्मेलन था। उसके कार्य में मुनिजी ने अनेक प्रकार से सक्रिय सहयोग दिया और 'हरिभद्राचार्यस्य समयनिर्णयः' नामक संस्कृत निबन्ध परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया। आधुनिक शोध-पद्धति के अनुसार विषय की सप्रमाण मोमांसा प्रौढ संस्कृत गद्य में निरूपण करने का यह निबन्ध एक उत्तम नमूना है। परिषद् (कोन्फ्रेन्स) के अवसर पर वह स्वतन्त्र पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ था; तथा परिषद् के विवरण में भी छपा है। मुनिजी ने उसमें अकाट्य प्रमाणों से हरिभद्रसूरि का काल ई. सन् ७०१ से ७७१ तक का निश्चित किया है। हरिभद्रसूरिकृत प्राकृत 'समराइच्च कहा' के सम्पादक, विख्यात जर्मन विद्वान् डॉ. हर्मन याकोबी ने एतद्विषयक अपना मत बदल कर मुनिजी के इस निबन्ध में व्यक्त अभिप्राय को मुक्तकंठ से स्वीकार किया था। 'समदर्शी आचार्य हरिभद्र' विषय पर पं० सुखलालजी द्वारा बम्बई विश्वविद्यालय में दिये गये व्याख्यानों में से पहले व्याख्यान में इस विषय को फुटकर टिप्पणियाँ हैं। उत्तर अवस्था में भी मुनिजी ने हरिभद्रसूरि के स्मारक के लिये प्रायः अकेले ही भारी पुरुषार्थ किया, यह इस बात का सूचक है कि उस समदर्शी आचार्य का उनके जीवन पर कितना गहरा प्रभाव था।

पूना-निवास के दिनों मुनिजी लोकमान्य तिलक के सम्पर्क में आये; तिलक महाराज शास्त्रीय चर्चाओं के लिये कभी-कभी मुनिजी के पास आया करते थे। पूना विद्वानों का उत्तम केन्द्र था। प्रो० गुणे, प्रो० रानडे, प्रो० वेलवलकर, प्रो० धोंडो केशव कर्वे आदि प्रसिद्ध विद्वानों के साथ वहाँ मुनिजी का निकट का परिचय था। मुनिजी जिन्हें 'मेरे सर्वप्रथम साक्षर मित्र' के रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में अपनी ग्रंथ-प्रस्तावनाओं में परिचित करवाते हैं वे श्री रसिकलाल छो. पारीख पूना के फर्ग्यूसन कॉलेज में पढ़ते थे; वे उस समय मुनिजी और पंडित सुखलालजी के निकट सम्पर्क में आये[1] और भांडारकर इन्स्टिट्यूट की हस्त-लिखित प्रतियों की वर्णनात्मक सूची के काम में उन्होंने मुनिजी के सहायक के रूप में थोड़े महीनों काम किया।

'जैन साहित्य संशोधक'

उस अवधि में मुनिजी ने कई मित्रों के सहयोग से जैन साहित्य संशोधक समिति की स्थापना की और श्री सतीशचन्द्र विद्याभूषण आदि विद्वानों के साथ प्रकाशनों की एक योजना तैयार की। 'हरिभद्राचार्यस्य समयनिर्णयः' नामक निबन्ध की पुस्तिका प्रस्तुत समिति ने प्रकाशित की है। मुनिजी के सम्पादकत्व में 'जैन साहित्य संशोधक' त्रैमासिक का प्रथम अंक सं० १९७७ में प्रकाशित हुआ था। "जैन इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान आदि विषयक हिन्दी, गुजराती और अंग्रेजी सचित्र लेख" प्रकाशित करने की उस त्रैमासिक की योजना थी और वह पाँचेक वर्षों तक चालू रही थी। उसमें मौलिक शोधपरक लेखों के अतिरिक्त जर्मन, अंग्रेजी आदि भाषाओं के मौलिक लेखों के अनुवाद तथा अनेक महत्त्वपूर्ण प्राचीन कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। इस त्रैमासिक की गुणवत्ता के सम्बन्ध में पं० सुखलालजी की टिप्पणी को उद्धृत करना समीचीन होगा। "जैन समाज के किसी भी पंथ में इस कोटि का पत्र अद्यावधि नहीं निकला है। यह पत्र जैन साहित्य-प्रधान होते हुये भी इसकी प्रतिष्ठा जैनेतर विद्वानों में अधिक है। इसका कारण इसकी तटस्थता और ऐतिहासिक परिपूर्णता है। जैन समाज के लोग इसे जानते हैं। इसकी अपेक्षा जैनेतर विद्वान् इसे अधिक मात्रा में और मार्मिकता से पहचानते हैं।"

प्रस्तुत समिति ने इस त्रैमासिक के अतिरिक्त, 'खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह', 'आचारांग सूत्र', 'कल्प-व्यवहार-निशीथ सूत्राणि', 'जीतकल्प सूत्र', 'विजयदेवमाहात्म्य' आदि मुनिजी-सम्पादित प्राचीन ग्रंथ भी प्रकाशित किये हैं।

---

१. देखें, श्री रसिकभाई द्वारा पं० सुखलालजी और मुनिजी को अर्पित काव्यमय मानांजलि—

विद्यामूर्ति प्रकट सुखमां शांत गम्भीर जोई,
विद्याभेखी जिनपटविटी क्षात्रसत्त्वा द्वितीया।
('स्मृति', छन्द १२)

और देखें, 'गुजरातनी राजधानीओ' नामक व्याख्यानामाला के मुनिजी कृत अर्पण की काव्य-पंक्तियां।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१९२० में मुनिजी इन्फ्लुअेंजा के ज्वर से बहुत बीमार हो गये थे और उनमें शारीरिक-मानसिक अस्वस्थता दिखाई दी। पं. सुखलालजी ने श्री रमणीकलाल मोदी और उनकी पत्नी ताराबहन को मुनिजी की देख-भाल के लिये पूना भेजा। यह मोदी परिवार बाद में, कई वर्षों तक, अहमदाबाद में शांतिनगर सोसायटी में मुनिजी का अंतेवासी था।

गुजरात विद्यापीठ और पुरातत्त्व मन्दिर

उसी वर्ष पूना में सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी के कार्यालय में महात्मा गांधी के साथ मुनिजी की भेंट हुई, विचार-विनिमय हुआ और उनके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हो गया। पं० सुखलालजी लिखते हैं—माता से मिलने के लिये ट्रेन में बैठने का जो कदम नहीं उठा सके वह कदम राष्ट्रीयता की लहरों के वेग में बढ़ा दिया। जैन साधुजीवन के बन्धनों को उखाड़ फेंकने का अपना निश्चय उन्होंने समाचार-पत्रों में प्रकाशित किया, और गुजरात विद्यापीठ की स्थापना के साथ पुरातत्त्व मंदिर की योजना के संबंध में उन्हें अहमदाबाद बुलाया गया तो वे रेलवे से गये और तब से उन्होंने रेलयात्रा प्रारंभ कर दी।'

सन् १९२० के अक्टूबर की ९ तारीख को गांधीजी ने अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की और उसी दिन मुनिजी (उन्हीं के अपने शब्दों में) विद्यापीठ के 'सेवक अथवा सैनिक' रूप से जुड़ गये। राष्ट्रीय पुनरुत्थान के एक भाग के रूप में अपनी प्राचीन संस्कृति के समस्त अंगों के अध्ययन, संशोधन और पुनरावलोकन की आवश्यकता थी। इसके लिये गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर नामक शोध-संस्था की योजना तैयार की गई और उसके आचार्य-पद पर महात्माजी ने मुनिजी की नियुक्ति की। श्री रसिकलाल छोटालाल पारीख पुरातत्त्व मन्दिर के मन्त्री नियुक्त हुये। काकासाहेब कालेलकर, पंडित सुखलालजी, श्री धर्मानन्द कोसंबी, पं० बेचरदास दोशी, श्री रामनारायण विश्वनाथ पाठक, मौलाना सैयद अबुजफर नदवी आदि विशिष्ट विद्वानों और शोधकर्मियों का पुरातत्त्व मन्दिर के काम में पूरा सहयोग था। श्री रसिकभाई के सम्पादकत्व में 'पुरातत्त्व' नामक शोधपरक त्रैमासिक प्रारम्भ हुआ (इसमें मुनिजी के अनेक लेख छपे हैं), जो इस प्रकार की गुजराती पत्रिकाओं में अद्यावधि लगभग अद्वितीय है। पं० सुखलालजी लिखते हैं—'पुरातत्त्व मन्दिर का महत्त्वपूर्ण पुस्तकसंग्रह मुख्यतः उनकी (मुनिजी की) पसन्दगी का परिणाम है।'

पुरातत्त्व मन्दिर का संचालन और उसमें अध्यापन-कार्य करने के अतिरिक्त मुनिजी ने मोग्गलान थेरकृत पालि शब्दकोष 'अभिधानप्प दीपिका',

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'प्राकृत कथासंग्रह', 'पालि पाठावली', 'प्राचीन गुजराती गद्यसन्दर्भ' आदि शोधपरक अथच छात्रोपयोगी ग्रंथों का सम्पादन किया। पुरातत्व मन्दिर ग्रन्थावली में उनके विद्वान् सहकर्मियों के भी अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुये हैं, पर उसके विस्तृत वर्णन पर यहाँ विचार नहीं करना है। गुजरात विद्यापीठ के उपक्रम में गठित 'आर्य-विद्या व्याख्यानमाला' में उन्होंने 'पुरातत्व संशोधनो पूर्व इतिहास' नामक व्याख्यान स० १९७७ की श्रावणी पूर्णिमा के दिन दिया था। भारत में आधुनिक परम्परा की पुरातत्त्व खोज कैसे प्रारम्भ हुई, इसका सरस और ज्ञातव्य इतिहास उन्होंने उसमें दिया है। उसमें मुनिजी की परिपक्व इतिहास-दृष्टि और प्रौढ गद्यशैली अभिव्यक्त होती है।

सन् १९२१ में कांग्रेस का अधिवेशन नागपुर में आयोजित हुआ तब मुनिजी भी महात्माजी के साथ वहाँ गये थे और उन दिनों नागपुर में आयोजित जैन पोलिटिकल कॉन्फ्रेंस की उन्होंने अध्यक्षता की। पूनानिवासी जैनों ने समेतशिखर तीर्थ की यात्रा के लिये स्पेशल ट्रेन का प्रबन्ध किया था। उसमें मुनिजी गये और बिहार के प्राचीन जैन तीर्थों के दर्शन किये। उस अवसर पर वे कलकत्ता गये। कलकत्ता जैन संघ ने मानपत्र द्वारा उनका सम्मान किया। उसके पश्चात् थोड़े समय में दक्षिण के नेपानी शहर में श्वेताम्बर जैनों के सम्मेलन का अध्यक्षपद मुनिजी ने सम्भाला। पूना में १९२२-२३ के अरसे में उन्होंने जैन शिक्षण संघ नामक संस्था की स्थापना की और पूना से प्रकाशित 'जैन जागृति' नामक हिन्दी-गुजराती पत्र का सम्पादन भी थोड़े समय तक किया।

माता का स्मरण और रूपाहेली की भेंट :

इस नये जीवनमार्ग का अनुसरण करने के थोड़े समय पश्चात्, मुनिजी लिखते हैं कि 'मुझे अपनी विस्मृत माता के दर्शन की तीव्र इच्छा हुई। ... एक दिन प्राचीन गुजराती भाषा में रचित एक जैन रास का मैं अध्ययन कर रहा था। उसमें किसी माता के पुत्रवियोग के विलाप का वर्णन था। मेरे हृदय में तीव्र वेदना उठ खड़ी हुई। पुस्तक को एक ओर रखकर मैं भी रुदन की अनुभूति में लीन हो गया। .... इस अनुभूति के दूसरे दिन, सं० १९७८ को माघ शुक्ला नवमी, सोमवार के दिन किसी को सूचना दिये बिना ही अहमदाबाद से दोपहर के बाद अजमेर जानेवाली गाड़ी में विस्मृतप्राय: जन्मभूमि और जननी के दर्शन की अभिलाषा से रवाना हुआ, और दूसरे दिन प्रात: अजमेर पहुँचकर दोपहर एक बजे चित्तौड़-खंडवा लाइन में रूपाहेली स्टेशन उतरा।... गुजरात विद्यापीठ की राष्ट्रीय सेवा स्वीकार करने के लिए मैंने जैन साधु के साम्प्रदायिक वेश को त्याग दिया था और मैं भगवे रंग का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खादी का चोगा और खादी की धोती पहनता था। सिर खुला रहता था। प्रसंगवश चोगे पर खादी की सफेद चादर ओढ़ लेता था। प्रवास में हाथ में लाठी रखता था उस वेश में मैं रूपाहेली जा रहा था। सामान के नाम टाट का बना एक थैला था जिसमें बिछौना, कम्बल, लोटा तथा प्याला था।'

'जिनविजय जीवनकथा' और 'मेरी जीवन प्रपंच कथा' इन दो आत्मकथनात्मक कृतियों में मुनिजी ने अपनी २१ वर्ष की आयु तक का ही वृत्तांत दिया है, किन्तु रूपाहेली की मुलाकात का भावनात्मक महत्त्व होने के कारण उसका समावेश उन्होंने प्रसंगवशात् अपने पूर्वजों के इतिहास की जानकारी के निमित्त बीच में ही ('जिनविजय जीवनकथा, पृ० २४-४७) किया है। उसका अत्यन्त संक्षिप्त सार यहाँ दे रहे हैं।

रूपाहेली स्टेशन पर उतर कर मुनिजी उस वैष्णव-मन्दिर पहुँचे जहाँ उन्होंने सर्वप्रथम अक्षरबोध प्राप्त किया था। देशव्यापी सत्याग्रह के वे दिन थे और एक छोटे-से देशी राज्य में कोई अनजान मुसाफिर आया होने से उसके लिए दरबार से बुलावा आया। किन्तु रूपाहेली के ठाकुर साहब चतुरसिंहजी साहित्यप्रेमी और संस्कारी सज्जन थे। बीस-इक्कीस वर्ष के लंबे समय के बाद मुनिजी का अपने वतन में आगमन हुआ जानकर उन्होंने प्रणाम-पूर्वक उनका सत्कार किया। विख्यात इतिहासकार पं० गौरीशंकर ओझा के माध्यम से वे मुनिजी की साहित्य-सेवा और ग्रन्थों से सुपरिचित थे। मुनिजी के आगमन से उन्होंने कृतार्थता का अनुभव किया। माता विद्यमान् हो तो उससे मिलने के लिये और पूर्वजों के जीवनवृत्त की जानकारी प्राप्त करने के लिये अपने वतन में आने की बात मुनिजी ने कही—"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा- इस संस्कृत की (गीता की) उक्ति के अनुसार मेरे माता-पिता आदि की स्मृति की चेतना मेरे मन में पुनः जागृत हुई है और आज इस चेतना के वशीभूत हुआ मैं यहाँ आया हूँ।"

नानाविध वार्तालाप में रात पूरी बीत चुकी थी, अतः ठाकुरसाहब ने कहा—"आप आराम कीजिये, कल हम विशेष बातें करेंगे।"

दूसरे दिन मुनिजी के पिता, पितामह और पूर्वजों के सम्बन्ध में जो कुछ स्वयं जानते थे वे बातें चतुरसिंहजी ने बताईं और मुनिजी ने उन्हें नोट कर लीं। अजीताजी नामक वृद्ध सज्जन मुनिजी की माता राजकुमारीजी के परिजन के रूप में आगे रहता था, उसे चतुरसिंहजी ने बुलाया। उससे जानकारी मिली कि राजकुमारीजी ने अपने पुत्र को बहुत ढुंढ़वाया। परन्तु जब उन्हें पता चला कि 'पुत्र रणमल्ल तो किसी साधु-जमात के साथ चला गया है' तब वे बहुत दिनों तक रोती रहीं; फिर उदास हो गईं, दिन में एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बार ही भोजन करतीं, बहुत कम बोलतीं और भगवान के नाम की माला फेरतीं। वे समीप के गाँव में एक सम्बन्धी के यहाँ चली गईं। उसके बाद उनका कोई समाचार नहीं मिला था। ठाकुर साहब ने अजीताजी को ऊँट की सवारी करके उस गाँव जाने का आदेश दिया और मुनिजी ने उसे खर्च के लिये दस रुपये दिये। मानसिक परिताप के कारण मुनिजी उस रात सो नहीं पाये। उनका अंतःकरण कहने लग गया कि माता अब जीवित नहीं बची होगी।

दोपहर के दो बजे अजीताजी वापिस आये। उसके चेहरे से मुनिजी ने समझ लिया कि यह कोई अच्छा समाचार नहीं लाया है। उसने कहा—'महाराज! लगभग दो वर्ष पूर्व, सं० १९७६ (सन् १९२० ई०) की वैशाख वदी सप्तमी के दिन मासाहेब ने देवलोक प्राप्त किया है।' मुनिजी पर वज्रपात हो गया, किन्तु अब इन लोगों के सामने मानसिक परिताप व्यक्त करना उचित नहीं और दैवेच्छा बलीयसी होती है, यह मानकर उन्होंने मन को शांत करने का प्रयत्न किया।

उसी दिन दोपहर चार बजे मुनिजी जैन उपाश्रय गये जहाँ यतिश्री देवीहंसजी रहते थे। वह उपाश्रय रूपाहेली के ओसवाल वणिकों के अधिकार में था और देवीहंसजी के स्वर्गवास के पश्चात् प्रायः वहाँ कोई यति नहीं रहने आया था। मुनिजी ने उपाश्रय में देवीहंसजी का वह तख्त देखा जिससे उतरते हुये उनकी हड्डी टूट गई थी। मुनिजी लिखते हैं—"उस तख्त पर मस्तक रखकर, जीवन-पथ पर चलने के लिये प्रेरित करने वाले उस स्वर्गवासी उपकारी गुरु को मैंने श्रद्धांजलि समर्पित की।' दूसरे दिन गाँव के बालकों को एकत्र करके मुनिजी ने मिठाई बाँटी। ठाकुर चतुरसिंहजी के सामने उन्होंने अपनी मनोभावना व्यक्त की कि "अहमदाबाद जाकर आपके साथ पत्राचार करूंगा। 'आप जमीन का टुकड़ा दें तो अपनी माता के नाम से शिशुशाला बनवाना चाहता हूँ।"

शिशुशाला—बालमन्दिर बनवाने का जो अस्पष्ट संकल्प सन् १९२१ में संयोगवशात् साकार नहीं हो सका था वह १९६६ में मूर्तिमंत हुआ। तीस हजार रुपयों से भी अधिक रकम का एक छोटा-सा सुन्दर भवन मुनिजी ने रूपाहेली में बनवाया जिसमें राजकुमारी शिशुशाला चल रही है और गाँव के सभी वर्गों के शिशु उसमें प्रसन्नतापूर्वक शिक्षण प्राप्त करते हैं।

दूसरे दिन दोपहर के पश्चात् ट्रेन में मुनिजी रूपाहेली से अहमदाबाद के लिये चल दिये। ठाकुर साहब ने दरबारी गाड़ी में उन्हें स्टेशन पहुँचाया। पर मुनिजी अपनी बाल्यावस्था की स्मृतियों में खोये हुये थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"गाड़ी चली और मैंने रूपाहेली की ओर नजर डाली तो मेरी आंखों के समक्ष माता की करुणा और वात्सल्य से पूरित वह मुखाकृति कौंधने लगी जिस मुखाकृति को इक्कीस वर्ष पहले उसकी गोद से विदा लेते समय अन्तिम बार देखा था।.... दूसरे दिन अपने स्थान गुजरात पुरातत्व मन्दिर पहुँचा। उस दिन माघ शुक्ला चतुर्दशी थी। वह मेरी जन्मतिथि थी। उस दिन मैंने जीवन के पैंतीसवें वर्ष में प्रवेश किया था।"

जर्मनी की विद्यायात्रा :

अब तक मुनिजी का समय अहमदाबाद और पूना इन दो स्थानों में व्यतीत हुआ था, जो कार्य की स्थिरता की दृष्टि से अनुकूल नहीं था। सन् १९२४ में उन्होंने अहमदाबाद को अपना मुख्य प्रवृत्ति-केन्द्र बनाया और 'जैन साहित्य संशोधक' त्रैमासिक की प्रकाशन-व्यवस्था भी अहमदाबाद में की। गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर का कार्य उनके दक्ष आचार्यपद के अधीन विकसित होता गया। सन् १९२५ में भारतीय विद्या के विख्यात जर्मन विद्वान् डॉ० शुब्रिंग भारत आये तब गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर देखने गये। वहाँ सिद्धसेन दिवाकरकृत न्यायग्रंथ 'सन्मतितर्क' तथा उस पर अभयदेवसूरि की विराट टीका 'वादमहार्णव' का सम्पादन पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजी कर रहे थे। उनकी कार्य-पद्धति देखकर प्रो० शुब्रिंग ने अपने कतिपय शिष्यों को इस प्रकार की शिक्षा के लिये अहमदाबाद भेजने की इच्छा व्यक्त की थी। अहमदाबाद में मुनिजी द्वारा अध्यक्ष पद से दिये गये व्याख्यान का उल्लेख शुब्रिंग ने अपनी डायरी में किया है।[1] अहमदाबाद में वे मुनिजी के अतिथि के रूप में रहे थे और तब उन्होंने मुनिजी को जर्मनी की यात्रा करने का निमन्त्रण दिया था।

---

१. शुब्रिंग की अप्रकाशित जर्मन डायरी से एतद्विषयक टिप्पणी का अंग्रेजी अनुवाद देखें—

(Visit and lecture in Ahmedabad) "......Jinavijaya was in the chair. I knew him already as the soul of a very well-equipped Institute in which he leads his scholarly life. He, too. like Mody before him, after a long time visited Hamburg. Jinavijaya, a Rajput by birth (which explains his tall stature) has been told by Gandhi in person to pay attention not only to the spiritual life, but also to practical ends."

प्रो० शुब्रिंग की पुत्री मिस साना शुब्रिंग के पास की डायरी का प्रस्तुत जर्मन अवतरण तथा उसका अंग्रेजी भाषांतर भेजने के लिये युवा जर्मन रिसर्च-स्कॉलर डॉ० डब्ल्यू० एच० बोली (Dr. W. H. Bollee) का मैं आभारी हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन् १९२८ में महात्माजी की अनुमति लेकर तथा गुजरात विद्यापीठ से दो वर्ष की छुट्टी लेकर मुनिजी जर्मनी जा पहुँचे। महात्माजी ने भी अपने यूरोपीय मित्रों को उनके परिचायक पत्र लिख दिये थे। जर्मनी देखने में मुनिजी का मुख्य उद्देश्य भारतीय विद्या सम्बन्धी वहाँ चल रहे कार्यों को देखने का, तद्विषयक विद्वानों से भेंट करने का और संस्थाओं का अवलोकन करना था। १९२८ के मई माह में मुनिजी बम्बई से स्टीमर में बैठे। पेरिस होकर उन्होंने पहला मुकाम लन्दन में किया; वहाँ चार माह ठहरे और ब्रिटिश म्यूजियम और अन्य संस्थाएँ देखीं। लन्दन से चलकर बेल्जियम में ब्रुसेल्स, अन्टवर्प आदि स्थानों पर होते हुये वे जर्मनी में हेम्बुर्ग पहुँचे, जहां के विश्वविद्यालय में शुब्रिंग प्रोफेसर थे। भारतीय विद्या के ख्यातनाम विद्वान् और जैन विद्या के अग्रगामी शोध-विद्वान् डॉ० हर्मन याकोबी उस समय बहुत वृद्ध थे, पर मुनिजी से मिलने के लिये बोन से अपने पुत्र के घर हेम्बुर्ग आये थे और मुनिजी के साथ चर्चाओं में उन्होंने कई दिन बिताये थे। जैन धर्म के सम्बन्ध में जर्मन भाषा में प्रामाणिक ग्रन्थ (जिसका गुजराती भाषांतर 'जैन धर्म' नाम से श्री नरसिंहभाई ईश्वरभाई पटेल ने किया है) लिखने वाले प्रो० हेल्मुट ग्लासनाप से भी मुनिजी मिले। शुब्रिंग के साथ हेम्बुर्ग में उन्होंने कुछ लेखन-वाचन का काम किया। लन्दन और जर्मनी में उनके द्वारा प्राप्त अनुभवों से सम्बन्धित पत्र भी मोहनलाल दलीचन्द देसाई के सम्पादकत्व में 'जैन युग' में छपे हैं जो रसप्रद सामग्री से पूरित हैं। दि. ७-११-१९२८ के एक पत्र में मुनिजी लिखते हैं—"उन्होंने (शुब्रिंग ने) इस समय अपने विद्यार्थियों को सिखाने के लिये मेरे द्वारा सम्पादित 'कुमारपाल प्रतिबोध' पुस्तक रखी है। उनके द्वारा क्लास के समय मुझे उपस्थित रहने का विशेष आमन्त्रण दिये जाने के कारण मैं जाता हूँ और अनेक बार तो मैं ही उसका वाचन करता हूं, तथा कुछ अंग्रेजी, कुछ जर्मन और कुछ संस्कृत, चाहे जिस भाषा द्वारा समझा देता।" ('जैन युग', पु० ४ पृ० ९८) विद्वानों और विद्यार्थियों को शुब्रिंग चाय-पानी के लिये आमन्त्रित करते और उस समय भी अनेक प्रकार का विचार-विमर्श मुनिजी के साथ होता।

एक बार शुब्रिंग ने मुनिजी से उनके पूर्वजों और पूर्वजीवन के विषय में पूछा तथा हो सके तो संक्षेप में, सरल पद्यात्मक संस्कृत में प्रशस्ति रूप में उसे लिपिबद्ध करने की प्रार्थना की। उसी रात मुनिजी ने अपने कमरे में बैठकर ११ अनुष्टुप् श्लोक रचे, जिनमें अपनी जन्मभूमि, वंश, माता-पिता और आद्यगुरु देवीहंसजी के सम्बन्ध में वस्तुस्थिति प्रस्तुत की। दूसरे दिन मुनिजी ने वे श्लोक शुब्रिंग को बताये; शुब्रिंग ने उन पर मुनिजी के हस्ताक्षर करवाये और कांच में मढ़ा कर अपने दीवानखाने में रखे। कई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्षों बाद मुनिजी ने सिंघी जैन ग्रन्थमाला का प्रकाशन प्रारम्भ किया; उसके प्रत्येक ग्रन्थ के प्रारम्भ में एक प्रशस्ति दी गई है। उसके प्रारम्भ में वे ११ श्लोक हैं। वे श्लोक इस प्रकार हैं—

स्वस्ति श्रीमेदपाटाख्यो देशो भारतविश्रुतः ।
रूपाहेलीति सन्नाम्ना ग्रामस्तत्र सुविश्रुतः ॥ १

सदाचारविचाराभ्यां प्राचीननृपतेः समः ।
श्रीमच्चतुरसिंहोऽत्र राठोडान्वयभूमिपः ॥ २

तत्र श्रीवृद्धिसिंहोऽभूत् राजपुत्रः प्रसिद्धिमान् ।
क्षात्रधर्मधनो यश्च परमारकुलाग्रणी ॥ ३

मुंज-भोजमुखा भूपा जाता यस्मिन् महाकुले ।
किं वर्ण्यते कुलीनत्वं तत्कुलजातजन्मनः ॥ ४

पत्नी राजकुमारीति तस्याभूत् गुणसंहिता ।
चातुर्य--रूप--लावण्य--सुवाक्--सौजन्यभूषिता ॥ ५

क्षत्रियाणीं प्रभापूर्णां शौर्योद्दीप्तमुखाकृतिम् ।
यां दृष्ट्वै जनो मेने राजन्यकुलजा ह्यसौ ॥ ६

पुत्रः किशनसिंहाख्यो जातस्तयोरतिप्रियः ।
रणमल्ल इति चान्यद् यन्नाम जननीकृतम् ॥ ७

श्रीदेवीहंस नामात्र राजपूज्यो यतीश्वरः ।
ज्योतिर्भैषज्यविद्यायां पारगामी जनप्रियः ॥ ८

अष्टोत्तरशताब्दानां आयुर्यस्य महामतेः ।
स चासीद् वृद्धिसिंहस्य प्रीतिश्रद्धास्पदं परम् ॥ ९

तेनाथाप्रतिमप्रेम्णा स तत्सूनुः स्वसन्निधौ ।
रक्षितः शिक्षितः सम्यक् कृतो जैनमतानुगः ॥ १०

दौर्भाग्यात् तच्छिशोर्बाल्ये गुरु-तातौ दिवंगतौ ।
विमूढेन ततस्तेन त्यक्तं सर्वं गृहादिकम् ॥ ११

सिंघी ग्रंथमाला की सम्पादकीय प्रशस्ति का यह मूल भाग है, मुद्रित प्रशस्ति में उसके बाद की घटनाओं का समावेश हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हेम्बुग से मुनिजी बर्लिन गये; उस समय संयुक्त जर्मनी को राजधानी का नगर बर्लिन था। प्रो० ल्यूडर्स के साथ वहाँ घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ। बर्लिन में मुनिजी लगभग एक वर्ष रहे। वहाँ के निवासी भारतीय लोग विविध राजनैतिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में मुनिजी से मिलते थे। वहाँ मुनिजी ने 'हिन्दुस्तान हाउस' की स्थापना की और उसके माध्यम से भारत सम्बन्धी सांस्कृतिक और राजनैतिक प्रवृत्तियों को संगठित करने का प्रयास किया। उसके बाद 'इण्डो-जर्मन सेंटर' नामक सांस्कृतिक संस्था की भी उन्होंने स्थापना की।

सत्याग्रह तथा जेलयात्रा :

भारत में उस समय देश की स्वतन्त्रता-विषयक राजकीय प्रवृत्तियाँ जोर पकड़ रही थीं। 'हिन्दुस्तान हाउस' की विशिष्ट योजना लेकर सन् १९२९ के दिसम्बर में महात्मा गांधीजी से मिलने के लिये मुनिजी बर्लिन से अहमदाबाद आये। उसके पश्चात् तुरन्त महादेवभाई देसाई की प्रेरणा से उन्होंने लाहोर के कांग्रेस-अधिवेशन में भाग लिया।

सन् १९३० के मार्च में महात्माजी ने अहमदाबाद से अपनी दांडी-यात्रा आरम्भ की। गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी द्वारा आयोजित नमक सत्याग्रह के लिये सन्नद्ध स्वयसेवकों की एक टुकड़ी के नायक के रूप में, उस वर्ष के मई माह में अहमदाबाद से धारासणा जाने के लिये मुनिजी निकले, परन्तु अहमदाबाद स्टेशन पर ही अंग्रेज सरकार ने उन्हें गिरफ्तार किया और उन्हें छह महीने की कठोर जेल की सजा दी गई। उन्हें पहले वरली (बम्बई) और बाद में नासिक जेल में रखा गया। देश के सुप्रसिद्ध सेवकों से मिलने का अवसर उन्हें जेल में मिला। श्री कन्हैयालाल मुन्शी, श्री जमनालाल बजाज और श्री खुरशेद एफ० नरिमान से निकट का परिचय जेल में हुआ। लिखने-पढ़ने के लिये वांछित समय भी जेलनिवास के समय मिला। श्री मुन्शी के साथ की चर्चाओं में बम्बई की विद्यासंस्था 'भारतीय विद्याभवन' का मानसिक बीजारोपण हुआ।

शांतिनिकेतन और सिंघी जैन ग्रंथमाला :

इससे पहले फरवरी-मार्च महीने में कलकत्ता के विद्याप्रेमी रईस श्री बहादुरसिंहजी सिंघी का निमन्त्रण मुनिजी को मिला था। शांतिनिकेतन के विश्वभारती केन्द्र में जैन शिक्षापीठ (चेयर) स्थापित करने की गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर की इच्छा थी; उस सम्बन्ध में वह निमन्त्रण था। तदनुसार शिक्षापीठ की योजना तैयार हुई थी और उसका संचालन-कार्य मुनिजी ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वीकार किया था। मुनिजी के जेल से छूटने के बाद सिंघीजी ने गुरुदेव की इच्छा को दुहराया और सन् १९३२ के आरम्भ में श्रीमती मोतीबहन और आठ-दस विद्यार्थियों के साथ मुनिजी शांतिनिकेतन पहुँचे। पं० सुखलालजी लिखते हैं कि 'टैगोर जैसी विभूति के सान्निध्य में रहने का अवसर मिल जाये और श्री विधुशेखर शास्त्रीजी तथा श्री क्षितिमोहन सेन जैसे समर्थ विद्वानों का साहचर्य प्राप्त हो—यह उनके लिये प्रमुख आकर्षण था।" विख्यात सिंघी जैन ग्रंथमाला का आरम्भ शांतिनिकेतन से हुआ और उसका प्रथम ग्रंथ, गुजरात के इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण 'प्रबन्ध चिंतामणि' १९३३ में प्रकाशित हुआ। उसका समर्पण—

आदावुन्मीलितं येन ज्ञानचक्षुर्मदोयकम्।
देवीहंसगुरोस्तस्य स्मृतये इदमर्प्यते॥

इस रूप में यतिवर देवीहंसजी को किया गया है। जैन विद्यार्थियों के लिये निःशुल्क छात्रावास विषयक योजना भी उपर्युक्त शिक्षापीठ के साथ संलग्न थी तथा जैन तत्त्वज्ञान और साहित्य के यथासम्भव अध्ययन-अध्यापन सम्बन्धी विचारणा भी थी।

सिंघी ग्रंथमाला की छपाई का काम संस्कृत-मुद्रण के लिये ख्याति-प्राप्त, बम्बई के निर्णयसागर प्रेस में होता था। ग्रन्थमाला के लिये उत्तम ग्रन्थों के चयन हेतु पाटण के हस्तलिखित ग्रन्थभण्डारों का तथा पूना के भांडारकर इन्स्टिट्यूट में विद्यमान सरकारी हस्तलिखित-ग्रन्थसंग्रह का बार-बार अवलोकन करना पड़ता था। चारेक वर्ष मुनिजी शांतिनिकेतन रहे। उस अवधि में इतना भ्रमण करना पड़ा कि उनके स्वास्थ्य में दुर्बलता आ गई। शांतिनिकेतन की आबोहवा में उन्हें बार-बार मलेरिया हुआ। इससे सिंघीजी के साथ परामर्श करके वे अहमदाबाद आ गये और सिंघी ग्रन्थमाला का काम अहमदाबाद से चालू रखा।

गुजरात की विद्या-संस्थाओं में व्याख्यान :

इससे पूर्व, अहमदाबाद की गुजरात साहित्य सभा ने मुनिजी को अपना मानद सदस्य नियुक्त किया था। मानद सदस्यों के निमित्त व्याख्यान-माला का पहला व्याख्यान मुनिजी ने दि० १७ जुलाई, १९३३ को दिया था। उस व्याख्यान का शीर्षक है "प्राचीन गुजरातना सांस्कृतिक इतिहासनी साधनसामग्री"। ८८ पृष्ठों की वह जानकारीपूर्ण पुस्तिका है; प्राचीन गुजरात की ऐतिहासिक सामग्री का उसमें पहली बार विस्तृत और विवेचनात्मक परिचय दिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन् १९३६ में अहमदाबाद में महात्मा गाँधीजी के सभापतित्व में गुजराती साहित्य सम्मेलन का बारहवाँ अधिवेशन हुआ था; उसके इतिहास-पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष के रूप में मुनिजी को मनोनीत किया गया था। उस अवसर पर 'गुजरातनो इतिहास-संशोधन प्रवृत्तिनुं सिंहावलोकन' शीर्षक व्याख्यान मुनिजी ने दिया था जो उनकी ओजस्वी गद्यशैली का एक उत्तम नमूना है। उसमें इतिहास और पुरातत्त्व का महत्त्व समझाकर, गुजरात के इतिहास में शोध के महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर ध्यान देते हुये, व्यापारप्रधान गुजरात की इस विषय में उदासीनता का कारण सहित निर्देश करके, उस उदासीनता को दूर करने के उपाय बताते हुये गुजरात में इतिहास के अध्ययन-शोध के लिये एक प्रतिष्ठित संस्था की आवश्यकता पर उन्होंने जोर दिया था। इतने वर्षों के बाद भी मुनिजी का वह भाषण पढ़ने और मनन करने योग्य है। उस अधिवेशन में मुनिजी के सभापतित्व में 'मध्यकालीन गुजरातनां तोल, माप अने नाणां' शीर्षक निबन्ध के वाचन का लाभ इस लेखक को मिला था।

बडोदरा राज्य के उपक्रम (प्रारम्भ) में १९३८ में बडोदरा के सम्बन्ध में मुनिजी द्वारा दिया गया 'गुजरातनो जैन धर्म' विषयक व्याख्यान ऐसा ही भरपूर जानकारी और सुन्दर शैली-गुण से मंडित है।

भारतीय विद्याभवन :

अहमदाबाद में रहते हुये विद्यासेवा करने का मुनिजी का क्रम १९३८ तक चला। किन्तु तत्पश्चात् एक नया प्रसंग आ बना। श्री कन्हैयालाल मुन्शी बम्बई राज्य के गृहमन्त्री थे। भारतीय विद्याभवन की योजना पर उन्होंने पहले मुनिजी के साथ विचार किया था। एक विशेष दान मिलने पर वह योजना क्रियान्वित हो गई; उसके लिये मुनिजी को मुन्शोजी ने आमन्त्रित किया और अपना अभीष्ट काम करने की पूरी छूट दे दी। सन् १९३९ में भारतीय विद्याभवन की स्थापना हुई और सिंघी ग्रन्थमाला तथा भारतीय विद्याभवन दोनों का कार्य वहाँ वेगपूर्वक और कुशलता से मुनिजी ने चलाया। 'भारतीय विद्या' नामक हिन्दी-गुजराती शोधपत्रिका का सम्पादन भी कई वर्षों तक उन्होंने किया। 'जैन साहित्य संशोधक' की भाँति उसमें भी अनेक महत्वपूर्ण शोधनिबन्ध और संस्कृत - प्राकृत - जूनी गुजराती की मूल कृतियाँ प्रकट हुई हैं। सिंघी ग्रन्थमाला का प्रकाशन मुनिजी के जीवन के अन्तिम समय तक भवन द्वारा होता रहा। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और अंग्रेजी के बहुसंख्यक ग्रन्थ, भारतीय प्राचीन साहित्य के कतिपय विरल रत्न उस ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुये हैं और अभी कई ग्रन्थ मुद्रित होते हुये भी प्रस्तावना आदि के अभाव में अप्रकाशित पड़े हैं। उन ग्रन्थों के प्रकाशन हेतु भवन की ओर से समुचित व्यवस्था होगी, ऐसी आशा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय विद्याभवन के सारे कार्यों में मुनिजी समरस बन गये थे और भवन के ऑनरेरी डाइरेक्टर पद को भी उन्होंने स्वीकार किया था। पं० सुखलालजी लिखते हैं कि "मुन्शीजी जैसे भार्गववंशी और परशुरामभक्त तथा मुनिजी जैसे क्षत्रिय-वृत्ति वाले परमार—इन दोनों का जोड़ा विस्मयकारी तो था ही, पर चला ठीक।" आबू गुजरात में रहे अथवा राजस्थान में, इस विषय में मुन्शीजी और मुनिजी में मतभेद रहा था, पर मुनिजी का मत इतिहास और भाषा के प्रमाणों पर आधारित था।

भारतीय विद्याभवन की स्थापना होने के पश्चात् तुरन्त १९३९ में उदयपुर में राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सर्वप्रथम अधिवेशन हुआ, जिसके अध्यक्ष मुनिजी थे। १९४४-४५ में उदयपुर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आयोजन हुआ; उसके स्वागताध्यक्ष मुनिजी और अध्यक्ष मुन्शीजी थे।

इस कालानुक्रमिक वृत्तांत में एक-दो साल पीछे चलते हैं।

जैसलमेर के ग्रंथभंडारों का निरीक्षण :

सिंघी ग्रंथमाला के प्रकाशनकार्य के लिये सामग्री एकत्रित करने के लिये पाटण के अतिरिक्त राजस्थान में जैसलमेर के ग्रन्थभण्डार देखना भी आवश्यक था। वे भण्डार शताधिक वर्षों से विद्वानों और शोधार्थियों को आकर्षित कर रहे थे। गत शताब्दी के प्रारम्भ में 'एनाल्स ऑफ राजस्थान' (राजस्थान का इतिहास) के सुप्रसिद्ध लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने अपने इतिहास लेखन-कार्य के लिए कतिपय ग्रन्थ, बड़ी कठिनाई से, अपनी राजकीय पहुँच का उपयोग करके जैसलमेर से प्राप्त किये थे। इस सिलसिले में महान् जर्मन संस्कृतज्ञ और पुराविद् डॉ० जॉर्ज ब्यूलर को जैसलमेर की यात्रा भी स्मरणीय रही। डॉ० हर्मन याकोबी, जो उस समय तरुणावस्था में थे, भी ब्यूलर के साथ थे। सन् १९०४-५ में जैन श्वेताम्बर कोन्फ्रेंस की ओर से पं० हीरालाल हंसराज ने जैसलमेर के भण्डारों की एक सूची तैयार की थी तथा उसी अवधि में प्रो० श्रीधर रामकृष्ण भांडारकर को बम्बई सरकार ने संस्कृत पुस्तकों की खोज के सम्बन्ध में जैसलमेर भेजा था। परन्तु जेसलमेर के ग्रथों के मुख्यांश का पहली बार ब्यौरेवार निरीक्षण और उस सम्बन्ध में टिप्पणियाँ लिखने का श्रेय एक गुजराती विद्वान् श्री चिमनलाल डाह्याभाई दलाल को प्राप्त होता है। वे वडोदरा राज्य की ओर से सन् १९१६ में जैसलमेर इस काम के लिये गये थे। उसके पश्चात् वडोदरा के प्राच्य विद्यामन्दिर के जैन पण्डित श्री लालचन्द गांधी ने कतिपय ग्रन्थों के फोटो खिचवाने के लिये जैसलमेर की यात्रा की थी और दलाल की अकाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृत्यु के कारण अधूरी रही, जैसलमेर की विशिष्ट हस्तलिखित प्रतियों की वर्णनात्मक सूची का काम उन्होंने पूरा किया था। उसके बाद जैसलमेर के भण्डारों की और अधिक विस्तृत खोज मुनिजी के हाथों हुई। इसके लिये मुनिजी वर्षों से उत्सुक थे पर अनुकूल संयोगों के अभाव में निरीक्षण नहीं हो सका था। सन् १६४२ में खरतरगच्छ के आचार्य श्री जिनहरिसागरसूरि का चातुर्मास जैसलमेर में हुआ और उन्होंने जैसलमेर आने के लिये मुनिजी को निमन्त्रण भेजा। दिसंबर १६४२ से अप्रैल १६४३ के पाँच महीनों तक प० केशवराम शास्त्री, पं० अमृतलाल भोजक, पं० लक्ष्मणभाई, श्री शांतिलाल वनमाली शेठ, श्री मूलचन्दजी जोशी, पं. चिमनलाल भोजक आदि सहकर्मियों के साथ मुनिजी जैसलमेर रहे तथा अनेक ग्रन्थों की नकलें कीं-करवाईं और मिलान कर लिया। जिन कठिन संयोगों में उन्होंने यह कार्य किया—करवाया उसका विवरण एक अलग लेख में ही आ सकता है। यह एक महान् विद्यात्मक पुरुषार्थ था। इस दिशा में अंतिम किन्तु अशेष (सम्पूर्ण) कहा जाने योग्य काम मुनिश्री पुण्यविजयजी का था जो यहां ध्यान देने योग्य है। सन् १६५०-५१ में डेढ़ वर्ष जैसलमेर रुककर उन्होंने और सहायकों ने भण्डारों का निरीक्षण किया था और तब सैंकड़ो हस्तलिखित प्रतियों को माइक्रोफिल्म भी तैयार कर ली गई थी तथा जैसलमेर भण्डार की हस्तलिखित प्रतियों की सूची भी पुण्यविजयजी ने तैयार की थी।

इतिहास सम्मेलन :

सन् १६४५ में गुजरात साहित्य सभा ने अहमदाबाद में इतिहास सम्मेलन की बैठक बुलायी थी ; उसके अध्यक्षपद हेतु मुनिजी चयनित हुये थे। गुजरात में इतिहास-विषयक सम्भवतः यह पहला सम्मेलन था (गुजरात इतिहास परिषद् की स्थापना तो कई बरसों बाद हुई) और कई उत्तम निबन्ध उसमें प्रस्तुत किये गये थे। सम्मेलन का निबन्धसंग्रह साहित्य-सभा की ओर से प्रकाशित हुआ है, पर उसमें मुनिजी का अध्यक्षीय व्याख्यान अथवा नदवी साहब का स्वागताध्यक्ष के रूप में दिया गया व्याख्यान नहीं है। ये व्याख्यान आज भी प्रकाशन-योग्य हैं। यहाँ एक प्रासंगिक घटना के उल्लेख करने का मन हो रहा है। इतिहास सम्मेलन में 'वस्तुपालनु विद्यामण्डल' नामक निबन्ध मैंने प्रस्तुत किया था, जो Literary Circle of Mahamatya Vastupala and Its Contribution to Sanskrit Literature नामक मेरे पी एच. डी. के शोध प्रबंध की रूपरेखा जैसा था। वह शोध-प्रबंध मुनिजी ने सिंघी ग्रंथमाला के ३३ वें पुष्प के रूप में सन् १६५३ में प्रकाशित किया, यह एक सुखद संयोग था। उस ग्रंथ का उनके द्वारा लिखा गया अंग्रेजी आमुख मैं उनके द्वारा प्रदत्त बहुमूल्य प्रमाण-पत्र समझता हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैन साहित्य संशोधक स्टडीज :

'जैन-साहित्य संशोधक' त्रैमासिक कई वरसों से बन्द था, किन्तु उसकी आनुषंगिक प्रकाशन-प्रवृत्ति चालू थी। 'जैन साहित्य संशोधक स्टडीज' के दो अंग्रेजी ग्रन्थ १९४६ में और एक ग्रन्थ १९४८ में जैन साहित्य संशोधक कार्यालय, अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है। इन तीनों ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय यहाँ उपयोगी होगा– (1) Studies in Jainism, Part I. इसमें डॉ हर्मन याकोबी के तीन निबन्ध प्रकाशित हुए हैं – Jainism, The Metaphysics and Ethics of Jainism और The Place of Jainism in Development of Indian Thought। पहले दो निबन्ध पुनर्मुद्रण हैं; जबकि तीसरा निबन्ध इसमें पहली बार प्रकाशित हुआ है। याकोबी के अपने हस्ताक्षरों में लिखा गया मूल लेख श्री केशवलाल प्रेमचन्द मोदी द्वारा मुनिजी को प्राप्त हुआ था। (2) चेकोस्लोवाकिया के प्राग क्षेत्र की जर्मन युनिवर्सिटी के विख्यात प्रो० डॉ० मोरिस विन्टरनित्स का निबन्ध The Jainism in the History of Indian Literature. विन्टरनित्स ने अपने महाग्रन्थ History of Indian Literature के दूसरे खण्ड में जैन साहित्य का कुछ विस्तृत परिचय दिया है, उसकी रूपरेखा-सदृश यह निबन्ध है और सन् १९२० से पहले कभी उसे लिखा गया था। लेखक ने स्वयं उसकी नकल मुनिजी को दी थी। वह निबन्ध इसमें प्रथम बार प्रकाशित हुआ है। (3) Jinist Studies : Some Cultural Remarks from Jaina works। इस निबन्ध के लेखक थे विन्टरनित्स के एक विद्यार्थी जर्मन विद्वान् डॉ.ओटो स्टाइन। यह निबन्ध सन् १९२३ से पहले कभी लिखा गया था (क्योंकि इसकी प्रस्तावना की तारीख २० फरवरी १९२३ है) और इसकी नकल भी केशवलाल प्रेमचन्द मोदी द्वारा मुनिजी को प्राप्त हुई थी। जैन आगमों में सांस्कृतिक महत्त्व की जो सामग्री मिलती है उसका थोड़ा-सा किन्तु सुव्यवस्थित परिचय इस निबन्ध में दिया गया है और वह भी यहाँ प्रथम बार प्रकाशित हुआ है। ओटो स्टाइन एक यहूदी विद्वान् थे और चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण के समय हिटलर के नाजियों ने उनकी और उनकी पत्नी की हत्या कर दी थी।

प्राच्य-विद्या परिषद् के प्राकृत और जैनधर्म विभाग का अध्यक्ष-पद :

सन् १९४४ में बम्बई में ऑल इण्डिया ओरियेन्टल कोन्फरेन्स (अखिल भारत प्राच्य विद्या परिषद्) का पन्द्रहवाँ अधिवेशन हुआ तब उसके प्राकृत और जैन धर्म विभाग का अध्यक्ष-पद मुनिजी ने स्वीकार किया था। वस्तुत: यह पद स्वीकार करने के लिये पहले भी परिषद के कार्यकर्त्ताओं की ओर से मुनिजी को प्रार्थना की जा चुकी थी, पर अनेक कामों के उत्तरदायित्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के कारण मुनिजी उसे स्वीकार नहीं कर सके थे। परन्तु इस दृष्टि से बम्बई उनके लिये अनुकूल स्थल था, क्योंकि उनका स्थायी निवास उस समय भारतीय विद्याभवन में था। विभाग के अध्यक्ष के रूप में व्याख्यान, मुनिजी ने तत्काल मौखिक दिया था और प्रस्तुत विषय में हुये कार्यों की समीक्षा करते हुये करणीय कामों की रूपरेखा बना दी थी। शिष्यों के सम्मुख उत्कृष्ट ज्ञानगोष्ठी जैसा वह व्याख्यान था। उसे सुनकर परिषद् के मन्त्री डॉ० दांडेकर ने भर्तृहरि के शब्दों में उद्गार निकाला था—

यास्तेषां स्वैरकथास्ता एवं भवन्ति शास्त्राणि।

सर्वोदय साधना आश्रम :

तत्पश्चात् थोड़े समय में, सन् १९५० में चित्तौड़ के पास चन्देरिया में मुनिजी ने 'सर्वोदय साधना आश्रम' की स्थापना की। मुनिजी मात्र पुस्तकप्रिय विद्वान् अथवा संशोधक नहीं थे, किन्तु देशोद्धार के लिये हो रहे विश्वसनीय कामों में उन्हें सक्रिय रस था। आश्रम के काम में वे एक अनुभवी किसान की तरह जुट गये थे। ग्रामीण बालकों के शिक्षण के लिये एक प्राथमिक पाठशाला की स्थापना भी उन्होंने वहाँ की थी। मैं और मेरी पत्नी १९६६ में अपने राजस्थान-प्रवास के समय उस आश्रम को देखने गये और मुनि जी जैसे आरूढ ज्ञानतपस्वी का सर्वोदय कार्यकर्त्ता के रूप में दर्शन किया था। आश्रम के विषय में मुनिजी लिखते हैं—"राष्ट्रीय महातीर्थ चित्तौड़गढ़ के समीप चन्देरिया गाँव के निकट जो सर्वोदय आश्रम मैंने स्थापित किया वह मेरी श्रमविषयक अभिरुचि का प्रतीक है। मेरे जीवन-निर्माण में जिस प्रकार ज्ञान-विषयक अभिरुचि सतत प्रवहमान रही है उसी प्रकार श्रम-विषयक अभिरुचि भी सतत चालू रही है। कई बार तो ज्ञानाभिरुचि की अपेक्षा श्रमाभिरुचि का प्राबल्य अधिक रहा है। अतिप्रिय अध्ययन, शोध और लेखनकार्य करते समय मुझे विरति हो जाती है, परन्तु श्रम अर्थात् शारीरिक श्रम करते समय मुझे कभी विरति नहीं हुई। शारीरिक परिश्रम के आकर्षण से महत्त्वपूर्ण ज्ञानात्मक कार्यों की मैंने अनेक बार उपेक्षा की है तथा अनेक आर्थिक और सामाजिक लाभों से मुझे वंचित रहना पड़ा है, परन्तु मेरा मन सदैव श्रमप्रिय रहा है। इसी कारण जितना आनन्द चदेरिया के ग्रामीण आश्रम में रहते हुये मुझे प्राप्त हुआ है उतना आनन्द पूना, बम्बई, अहमदाबाद, शांतिनिकेतन तथा जयपुर-जोधपुर के ज्ञानात्मक केन्द्रों में नहीं मिला ... यद्यपि मुझे जो कुछ प्रसिद्धि अथवा कार्यसिद्धि प्राप्त हुई है वह मेरी ज्ञानाभिरुचि का ही फल है। श्रमाभिरुचि से मुझे मात्र आंतरिक सन्तोष मिलता रहा है।' (जिनविजय जीवनकथा', किंचित् प्राक्कथन, पृ० १२–१३)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन् १९५९ में सन्त विनोबा भावे भूदान आंदोलन के सिलसिले में मुनिजी की प्रार्थना से चन्देरिया आये थे तब आश्रम का कुछ भाग मुनिजी ने उन्हें अर्पण किया था। भूदान कार्यकर्त्ता उसकी पूरी सार-सम्भाल नहीं कर सके, अतः स्वयं मुनिजी को पीछे से उसे सम्भालना पड़ा था।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान :

राजस्थान का ऐतिहासिक प्रदेश जैसे भारतीय इतिहास की कीर्तिगाथा का उत्तराधिकारी है वैसे ही इतिहास और पुरातत्त्व की सामग्री से भरपूर है। मुनिजी के मार्गदर्शन में राजस्थान सरकार ने सन् १९५० में जयपुर में राजस्थान ओरियेन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट (राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान) की स्थापना की और राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री हीरालाल शास्त्री की प्रार्थना से मुनिजी ने उस संस्थान का मानद निदेशक पद स्वीकार किया। उस शोध संस्थान का भव्य भवन बाद में जोधपुर में निर्मित हुआ और उसका शिलान्यास भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद के करकमलों से हुआ था। उस संस्था का समृद्ध पुस्तकालय बना है। मात्र राजस्थान से ही नहीं, भारत के विविध प्रदेशों से हजारों हस्तलिखित प्रतियाँ वहाँ व्यवस्थित ढंग से संगृहीत हुई हैं, इतना ही नहीं, राजस्थान के विभिन्न राज्यों के हस्तलिखित पुस्तकालय भी मुनिजी के मार्गदर्शन में व्यवस्थित हुये और सब की प्रबन्ध-व्यवस्था एक-स्थानीय हो गई। इस प्रकार जयपुर, उदयपुर, बीकानेर, अलवर, कोटा, टोंक आदि भूतपूर्व राज्यों के समृद्ध पोथीखाने व्यवस्थित हुये और जोधपुर की संस्था के कार्यकर्त्ताओं द्वारा उनका संरक्षण होने लगा। जोधपुर की मुख्य संस्था की शाखाएँ भी वहां स्थापित हुईं। टोंक नवाबी राज्य था और वहां फारसी-अरबी हस्तलिखित ग्रंथों का अच्छा संग्रह था; वह भी इसी प्रकार व्यवस्थित हुआ। मुनिजी के सामान्य सम्पादकत्व में राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला का आरम्भ हुआ और भारतीय साहित्य की विविध शाखाओं के लगभग ८० प्राचीन ग्रथ उत्तम रूप से ग्रंथमाला में प्रकाशित हुये हैं। राजस्थान की इस संस्था का निदेशक पद मुनिजी ने सत्तर वर्ष की आयु तक सम्भाला और सन् १९६७ में वे वहाँ से निवृत्त हो गये। उस संस्था की सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में इस लेखक को, श्री रसिकभाई परीख को और डॉ० भायाणी को वहाँ के कार्यकलाप बार-बार देखने का लाभ मिला था। सिंघी जैन ग्रंथमाला, राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, जैन साहित्य संशोधक ग्रन्थमाला आदि के माध्यम से मुनिजी ने हमारे राष्ट्र की जो विद्यासेवा की है वह चिरंजीव रहेगी। इतनी संस्थाओं और प्रकाशन-प्रवृत्ति का आयोजन और सफल संचालन मुनिजी की उत्साहपूर्ण और दक्ष कार्यशक्ति का परिणाम है। मुनिजी के तत्त्वावधान में लगभग दो सौ ग्रन्थों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रकाशन हुआ है, जिनमें से अच्छी-भली सख्या उनके अपने सम्पादनों अथवा कृतियों की है।

राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू प्रतिष्ठान के भवन का शिलान्यास करने के लिये जोधपुर आये तब हमारे राष्ट्र के संविधान के संस्कृत अनुवाद की आवश्यकता के सम्बन्ध में मुनिजी ने उन्हें प्रेरित किया था और तदनुसार उससे सम्बन्धित एक समिति गठित हुई थी। संविधान के विविध भाषाओं में अनुवाद हेतु बनी परिभाषासमिति में भी मुनिजी की नियुक्ति हुई थी। संविधान के गुजराती अनुवाद के लिये निर्मित समिति में भी मुनिजी नियुक्त हुये थे। उस समिति में उनके साथ श्री रामनारायण वि० पाठक, श्री रसिकलाल छो० परीख, श्री मन्जुलाल सेवकलाल दवे, श्री चन्द्रशंकर शुक्ल आदि विद्वान् थे। उस समिति की बैठकें अधिकांशतः अहमदाबाद में गुजरात विद्यासभा के कार्यालय में होती थीं और यह लेखक उस समय विद्यासभा के सेवकों में होने से समिति की कार्यपद्धति का प्रत्यक्ष दर्शन कर सका था।

जर्मन ओरियेन्टल सोसायटी का मानद सदस्य-पद :

सन् १९५२ में जर्मन ओरियेन्टल सोसायटी ने मुनिजी को अपना ऑनरेरी मेम्बर बनाकर उनके जीवन-कार्य का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान किया था। बॉन में जुलाई १९५२ में जर्मन प्राच्यविदों का परिषद् के समय सोसायटी की बैठक हुई तब यह निर्णय प्रसारित किया गया था। सोसायटी के संविधान के अनुसार, कार्यवाहक समिति निर्णय प्रसारित करतो है और सामान्य बैठक में उसे स्वीकृति दी जाती है। कार्यवाहक समिति के समक्ष एतद्विषयक प्रार्थना-पत्र प्रो० शुब्रिंग ने प्रस्तुत किया था। इससे सम्बन्धित जर्मन प्रशस्तिलेख (Citation) का अंग्रेजी भाषांतर इस प्रकार है[1] —

The German Oriental Society has, on July 30th 1952, elected Muni Jinvijayaji Acharya as its Honorary Member.

The Society honours him as a scholar of unselfish activity who has brought to light forgotten, partly deeply hidden treasures of Indian literature and published them with sound scholarly method, being a model for those fellow scholars he was able to engage in the edition of a great and versatile series of volumes. It thanks him for the enrichment which has accrued to Indology through his indefatigable labour espe-

---

१. निर्णय और उसका विवरण प्रेषित करने के लिये हेम्बुर्ग युनिवर्सिटी के संस्कृत के प्रोफेसर डॉ० ल्युडविग आल्सडोर्फ का मैं आभारी हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

cially in the field of history and early modern Indian languages. A national-minded personality, he was first called to be an academic teacher by Gandhi and Tagore, and as such he combines indigenous learning with farsightedness beyond the borders of India. A bridgebuilder between East and West, he seeked and found contact with German Indology and has publicly testified to this. By thus honouring him, the Society wishes to confirm anew the ties binding together Indian and German research, ties that have been dear to it for generations. For him, whose sincere humanity is proclaimed by his spiritual titles, the society wishes many more years of fruitful work and personal health.

मुनिजी की उच्च कोटि की शोध-सेवा को उचित शब्दों में प्रस्तुत प्रशस्ति-लेख में अंकित किया गया है। इससे पूर्व होशियारपुर (पंजाब) की विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इंस्टिट्यूट का मानद सदस्य पद मुनिजी को प्रदान किया गया था। १९६३ में उन्हें भारतीय विद्याभवन ने मानद सदस्य बनाया था। उसी वर्ष भारत के राष्ट्रपति ने उन्हें 'पद्मश्री' की पदवी अर्पण कर उनकी वाङ्मय-सेवा का राष्ट्रीय सम्मान किया था। सन् १९६३ में मुनिजी के ७५ वर्ष पूरे होने पर उनके सम्मान के लिये एक समिति राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया के सभापतित्व में निर्मित हुई थी, और 'भारतीय पुरातत्त्व' नामक अभिनंदन ग्रन्थ जयपुर में एक समारोह में मुनिजी को अर्पण किया गया था।

श्री विजयधर्मसूरि जैन साहित्य स्वर्णपदक मुनिजी को अर्पण करने का निर्णय इस विषय की समिति ने सन् १९४९ में किया था किंतु एतद्विषयक समारोह मुनिजी की नानाविध प्रवृत्तियों के कारण उनकी अनुपस्थिति में १९७२ में भावनगर में आयोजित किया जा सका था।

१९६७ में राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के मानद निदेशक पद से निवृत्त होने के बाद, शोध और प्रकाशन की प्रवृत्तियों का सातत्य रहने पर भी मुनिजी का ध्यान, चन्देरिया आश्रम और चित्तौड़ के किले के समीप स्वयं द्वारा निर्धारित स्मृतिमन्दिरों के कार्य में विशेष रूप से लगे रहने से (इस विषय में आगे हम विवरणों पर विचार करेंगे) सिंघी जैन ग्रन्थमाला और राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के उनके सम्पादन कार्यों की संक्षेप में यहाँ समीक्षा करेंगे।

कतिपय विशिष्ट प्रकाशन :

सिंघी ग्रन्थमाला का एक उद्देश्य गुजरात के इतिहास की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक साधन-सामग्री को प्रकाशित करना भी था। मेरुतुंगाचार्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृत 'प्रबन्धचिंतामणि', राजशेखरसूरि कृत 'प्रबन्धकोष' और 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' ये तीन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रबंध ग्रन्थ हैं। (इनमें प्रयुक्त लोकभाषामय संस्कृत का अध्ययन Lexicographical Studies in 'Jain Sanskrit' नामक पुस्तक में मैंने और श्री जयंतभाई ठाकुर ने किया है और उस पुस्तक का समर्पण 'Doyen of Prakrit and Jaina Studies in India आचार्य जिनविजयजी मुनि' को किया गया है।) 'प्रबन्ध-चिंतामणि' का समर्पण मुनिजी ने गुरु देवीहंसजी को किया है, यह हम देख चुके हैं। सिंघी ग्रन्थमाला का यह प्रथम पुष्प है। दूसरे पुष्प 'पुरातन प्रबन्धसंग्रह' का समर्पण उन्होंने प्रवर्तक श्री कांतिविजयजी को परम भक्तिभाव से किया है—

उदारात्मा क्षमामूर्तिः साधुश्रेष्ठो गुणिप्रियः ।
यो मम परमपूज्यो गुरुवत्, शिष्यवत्सलः ।।

यस्य शिक्षाप्रसादेन प्राप्ता मया विशिष्टदृक् ।
यया दृष्टो ग्रन्थराशिरीदृक् पौरातनो महान् ।।

सुगृहीतनाम्नस्तस्य प्रवर्तकशिरोमणेः ।
कान्तिविजयपादस्य पावने करपंकजे ।।

अनन्यभक्तिभावेन विनम्रशिरसा मया ।
पुरातनप्रबंधानां संग्रहोऽयं समर्प्यते ।।

प्रभावशाली जैन आचार्यों के चरित्र-परिचायक, प्रभाचन्द्रसूरिकृत 'प्रभावकचरित' के सम्पादन का समर्पण मुनिजी ने अपने निकट के सहकर्मी और मित्र मुनिश्री पुण्यविजयजी को किया है—

प्रभाचंद्रमुनीन्द्रवद् यः सत्साहित्यनिर्मितौ ।
मनोवाक्काययोगेन सततं सुप्रयत्नवान् ।।

प्रद्युम्नसूरिवच्चापि बहूनां विदुषामसौ ।
शास्त्राणां शोधनं कुर्वन् परमादरतां गतः ।।

आविद्याध्ययनाद् यावद् ग्रंथसंशोधनादिषु ।
पुस्तकादिप्रदानेन यो ममापि सहायकृत् ।।

तस्मै पुण्यप्रतिष्ठाय ज्ञानदानपरात्मने ।
श्रीपुण्यविजयाख्याय मुनये सौम्यमूर्तये ।।

तत्सौहार्दगुणाकृष्टो हृष्टो हार्दिकभावतः ।
करोम्यहं कृतेरस्याः समर्पणं स्वतर्पणम् ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिनप्रभसूरिकृत 'विविध तीर्थंकल्प' में भारत के विविध प्रदेशों के जैन तीर्थों के सम्बन्ध में परम्परागत वृत्तांत और ऐतिहासिक अनुश्रुतियाँ हैं। उस ग्रन्थ के सम्पादन का समर्पण मुनिजी ने अपने जन्मभूमि मेवाड़ को सादे किन्तु कवित्वमय श्लोकों में किया है—

यस्याः क्षेत्रं वनं वापी कूपस्सरित्सरोवरम् ।
ग्राम-नगर-गिर्यादि-सर्वं तीर्थमयं स्थितम् ।।

मेवाडाख्या प्रसिद्धा या स्वर्गादपि गरीयसी ।
जन्मभूमिर्मदीया या मातृतुल्या प्रियंकरा ।।

तस्याः पुण्यपवित्रायाः सत्कीर्तिमूर्तिमन्दिरे ।
करोम्यहं कृतेरस्याः सद्भक्त्या वै समर्पणम् ।।

'जैन पुस्तकप्रशस्ति संग्रह', 'विविध गच्छीय पट्टावली-संग्रह', 'खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावलि', कुमारपाल चरित संग्रह' आदि गुजरात के इतिहासोपयोगी प्रबन्धात्मक साहित्य के प्रकाशन हैं। महामात्य वस्तुपाल सम्बन्धी ऐतिहासिक साहित्य 'कीर्तिकौमुदी', 'सुकृतसंकीर्तन' आदि के प्रकाशन भी इसी श्रेणी में आते हैं। मुनि गुणपालकृत 'जम्बूचरित' प्राकृत में रचित जम्बूस्वामी का प्राचीनतम उपलब्ध चरित है। जिनेश्वरसूरिकृत 'कथाकोश प्रकरण' गुजरात में चैत्यवासी यतियों और सुविहित जैन साधुओं के बीच हुई स्पर्धा और संघर्ष के काल में लिखी गई कृति है।

परन्तु सिंघी जैन ग्रन्थमाला में मात्र जैन ग्रन्थकारों की रचनाएँ ही प्रकाशित नहीं हुई हैं। जैन भण्डारों से प्राप्त हुई, विरल जैनेतर रचनाएँ भी उसके द्वारा प्रकाश में आयी हैं। उदाहरण के रूप में मुस्लिम कवि अब्दुल रहमान कृत अपभ्रंश विरहकाव्य 'संदेशरासक' (इसके सहसंपादक डॉ० हरि. वल्लभ भायाणी हैं), प्राचीन कोसली भाषा के व्याकरणवाला औक्तिक 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' (इसका भाषाशास्त्रीय विश्लेषण डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने किया है) और कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' की उत्तर भारतीय परम्परा के कतिपय अंशों का वाहक एकमात्र प्रकाशन 'राजसिद्धान्त' इस विधान के उदाहरण हैं।

मुनिजी के स्वभाव में, मुनिश्री पुण्यविजयजी की भाँति, ऐसी उदारता थी कि चाहे जितनी मूल्यवान् साहित्यसामग्री भी वे सुयोग्य विद्वान् को दे देते थे। आठवीं शती की प्राकृत महाकथा, उद्योतनसूरिकृत 'कुवलयमाला' के विषय में ठेठ सन् १९२७ में 'वसन्त रजत महोत्सव स्मारक ग्रन्थ' में विस्तृत लेख मुनिजी ने लिखा था और उससे पूर्व भी हरिभद्रसूरि के काल-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्णय-विषयक निबन्ध में उसका उपयोग किया था; उसका सम्पादन उन्होंने सिंघी ग्रंथमाला के लिये डॉ० ए. एन्. उपाध्ये द्वारा करवाया था। इसी प्रकार हरिभद्रसूरिकृत 'धूर्ताख्यान' और कोऊहलकृत 'लीलावती' ये दो प्राकृत कथानक भी उन्होंने डॉ० उपाध्ये को सौंपे थे। हेमचन्द्रकृत 'छन्दोनुशासन' और छंदःशास्त्र से मिलते दूसरे कई ग्रन्थ इस विषय के अभ्यासी प्रो० एच० डी० वेलणकर को सौंपे थे। सोमेश्वरकृत 'काव्यप्रकाश संकेत' और सिद्धिचन्द्रकृत 'काव्यप्रकाश खण्डन' का सम्पादन उन्होंने प्रो० रसिकलाल छो० परीख से कराया और सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता' की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियों की सामग्री डॉ. जयदेव शुक्ल को सौंपी थी। जैसलमेर के भण्डार से प्राप्त हुई भोजकृत 'शृंगारमंजरी कथा' उन्होंने डॉ० कल्पलता मुन्शी को सौंपी थी। भर्तृहरि के शतकों की जैन भंडारों से प्राप्त हुई प्राचीन प्रतियाँ उन्होंने डॉ० डी० डो० कोसंबी को सौंपी थी, जिसके परिणामस्वरूप संस्कृत साहित्य की उस विख्यात रचना का स्मरणीय समीक्षित सम्पादन सिंघी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुआ था।

इनके अतिरिक्त भी मुनिजी ने सुयोग्य विद्वानों से करवाये अनेक सम्पादन प्रकाशित किये हैं। यह उनकी दक्ष आयोजनशक्ति का परिणाम है। सिंघी ग्रन्थमाला कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थमाला नहीं, किंतु जर्मन ओरियेन्टल सोसायटी के निश्चय से स्पष्ट होता है कि भारतीय विद्या के क्षेत्र में उसका अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व है।

सिंघी ग्रन्थमाला में प्रकाशित ग्रंथों की मुनिजी की अपनी प्रस्तावनाएँ अथवा मुख्य सम्पादक के रूप में दूसरों के सम्पादनों के उनके द्वारा लिखे गये आमुख हिन्दी, गुजराती अथवा कहीं-कहीं अंग्रेजी में हैं। (यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि मुनिजी सुन्दर अंग्रेजी बोल और लिख सकते थे।) उनका किंचित् उत्तम लेखन व्याख्यानों के रूप में तथा प्रस्तावनाओं के रूप में भी है। उनके लेखसंग्रह 'जैन इतिहासनी झलक' के अवलोकन में भी उनकी शैली के विषय में श्री जयन्त ठाकुर ने जो लिखा है वह सर्वथा वास्तविक है– "मुनिश्री की विलक्षण भाषाशैली से इतिहास-संशोधन में रुचि लेनेवाला कौन अपरिचित होगा? उनकी संस्कृतप्रचुर होते हुये भी अक्लिष्ट भाषा, गाम्भीर्य और परिपक्वता के कारण तथा विचारों की विदग्धता और व्यक्तीकरण की विशदता के प्रताप से सर्वत्र भव्यता धारण करती है, और विषय तथा विचार के अनुसार कहीं द्रुतविलंबित बनती, कहीं भुजंगप्रयात के दर्शन कराती, कहीं मंदाक्रान्ता का आभास प्रस्तुत करती, और बीच-बीच में बार-बार शार्दूलविक्रीडित जैसी छलांगें मारती उनकी शैली ऐसे गम्भीर चिंतन की सरस पोषक बनकर सुदीर्घ लेखन के वाचन में भी नीरसता को अवसर नहीं देती।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitlzagtion by eGangotri

('स्वाध्याय', पु० ५, पृ०२३५)। उक्त लेखसंग्रह के सम्पादक श्री रतिलाल देसाई की धारणा यथार्थ है कि मुनिजी 'इतिहास का आलेखन मात्र शुष्क तथ्य प्रस्तुत करके ही नहीं, अपितु उसमें कवि की संवेदनशील का माधुर्य उंडेल कर करते हैं, यह उनकी हृदयस्पर्शी विशेषता है।"

राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला के प्रधान सम्पादक होने के साथ-साथ मुनिजी ने स्वयं उसमें भारी संख्या में महत्त्वपूर्ण सम्पादन किये हैं। राजस्थान शोधप्रतिष्ठान के संग्रह के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची के कतिपय ग्रन्थों के अतिरिक्त सोमतिलकसूरिकृत वृत्ति और अज्ञात-लिखित दो टीकाओं सहित 'त्रिपुराभारतीलघुस्तव', रघुनाथकृत 'प्राकृतानन्द', मरु-गुर्जर भाषा का प्राचीनतम औक्तिक संग्रामसिंह कृत 'बालशिक्षा' और इसी प्रकार की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति साधुसुन्दरगणिकृत 'उक्तिरत्नाकर', महामात्य वस्तुपाल के मित्र और गुजरात के राजपुरोहित सोमेश्वरकृत, सुभाषितसंग्रह, 'कर्णामृतप्रपा', मेवाड़ की एक वीरगाथा के वर्णनवाला हेमरत्नकृत 'गोरा-बादिल चरित्र', रणथम्भोर के हम्मीर का चरित्रगर्भित नयचन्द्रसूरिकृत ऐतिहासिक 'हम्मीर महाकाव्य', ठक्कर फेरुकृत 'रत्नपरीक्षा' (इसके सहसम्पादक श्री भंवरलाल नाहटा हैं) आदि ग्रंथ मुनिजी के सम्पादन हैं। विशेषतः राजस्थान और गुजरात की तथा सामान्यतः भारतीय साहित्य की अन्य विद्वानों द्वारा संपादित जो मूल्यवान कृतियाँ इस ग्रंथमाला में प्रकाशित हुई हैं उनका संक्षिप्त परिचय देने के लिये भी एक स्वतन्त्र निबन्ध की आवश्यकता है। आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र के कतिपय नाटकों, जिनका मात्र उल्लेख ही रामचन्द्रकृत 'नाट्यदर्पण' में मिलता था, का मुनि श्रीपुण्यविजयजी द्वारा सम्पादित संग्रह इस ग्रंथमाला में छपा है, किंतु इन पंक्तियों के लिखे जाने तक वह अप्रकाशित है। उसका प्रकाशन संस्कृत नाटक साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण योगदान माना जायगा।

हरिभद्रसूरि-स्मृतिमन्दिर :

स्थापत्य-कला में भी मुनिजी को रुचि थी। 'अनेकांत विहार' अहमदाबाद में उनका चौथा मकान था। पुराना मकान बेचते और साहित्य-साधना के अनुरूप एकांत स्थान पर नया मकान बनवा लेते थे। मकान के नक्शे तथा उसके सादे किंतु अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप फर्नीचर की रचना और खाके पर स्वयं ही विचार करते थे। इस विषय की उन में रुचि और सूझ दोनों ही थे। उत्तरावस्था में उन्होंने सार्वजनिक मकानों और राष्ट्रीय स्थापत्यों का आयोजन किया। इसके लिये अपना प्रचुर धन उपयोग में लिया, योग्य व्यक्तियों से धन एकत्र करने का प्रयत्न किया और जिस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगन से जीवन के दूसरे सारे काम किये थे उसी लगन से इन स्मारकों का काम भी किया। अपनी माता के स्मारक-रूप में जन्मभूमि रूपाहेली में बनवाये 'राजकुमारी बालमन्दिर' की बात पहले आ चुकी है।

मीरां की भक्ति, क्षत्रिय योद्धाओं का शौर्य और हरिभद्रसूरि आदि महान् आचार्यों की विद्या का त्रिवेणीसंगम जहाँ निर्मित हुआ था उस चित्तौड़ की भूमि मुनिजी ने इन स्मारकों के लिये पसन्द की थी। चन्देरिया का आश्रम चित्तौड़ के समीप ही है। पं० सुखलालजी इस विषय में लिखते हैं—"मुनिजी चित्तौड़ को वीरत्व के साथ-साथ विद्या का भी तीर्थ मानते हैं। उनके मन में यह संस्कार दृढ है कि राणा प्रताप और उनके पूर्वजों तथा वंशजों ने जो क्षात्र तेज मेवाड़ में प्रकट किया और चित्तोड़ में जो विशेष रूप से उद्दीप्त हुआ वह क्षात्र-तेज मात्र मेवाड़ की सम्पत्ति नहीं, वह तो एक भारतीय सम्पत्ति है। दूसरे, उनके मन में यह भी है कि शस्त्र सम्भालने वाला और प्राणों की बलि चढ़ानेवाला वर्ग हो तब भी किसी ऐसे कुवेर की आवश्यकता रहती ही है जो कि वीरत्व को पोषक सारी व्यवस्था करें। मुनिजी ने ऐसे कुवेर का प्रतीक भामाशाह में देखा था।" मेवाड़ की रक्षा के लिये राणा प्रताप को अपना सर्वस्व समर्पण करने वाले भामाशाह के स्मारक के रूप में उन्होंने भामाशाह भारती मन्दिर बनवाया। दूसरे, इससे भी अधिक महत्त्व का स्मारक है हरिभद्रसूरि-स्मृतिमन्दिर। इस विषय में मुनिजी स्वयं लिखते हैं—"यह मन्दिर एक महान् जैनाचार्य के स्मारक के रूप में मैंने बनवाया है, जिनके ज्ञान और जीवनकार्य के प्रति मेरी अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति है। मैं उन्हें एक महान् शास्त्रकार, धर्मोपदेशक, योगविद् और परमकोटि का आध्यात्मिक तत्त्वद्रष्टा मानता हूं। मेरे.... जीवनमार्ग में मैंने उन्हें दीपस्तम्भ के समान माना है। चित्तौड़ दुर्ग श्रीहरिभद्रसूरि का कार्यक्षेत्र था।" इसलिए मुनिजी ने यह स्मृतिमन्दिर चित्तौड़ के दुर्ग के सामने बनवाया है, ताकि वहां प्रविष्ट होते प्रत्येक प्रवासी की दृष्टि में वह अवश्य आये। उस स्मृतिमन्दिर और उससे सम्बन्धित विषयों के बारे में मुनिजी का मनोराज्य श्री रसिकलाल छो० परीख को लिखे एक विस्तृत पत्र में चित्रित हुआ है। (देखें परिशिष्ट १) दि० ८ फरवरी, १९५९ ई. को सन्त विनोबाजी सर्वोदय आश्रम में चन्देरिया आये तब मुनिजी ने उनके समक्ष इस स्मारक के विषय में अपना मनोरथ व्यक्त किया था और उसके प्रतीक रूप में हरिभद्रसूरिकृत एक ग्रन्थ की आश्रम के कक्ष में विनोबाजी के हाथों स्थापना करवाई थी। पीछे निर्मित भव्य स्मृतिमन्दिर में जयपुर के कारीगरों द्वारा बनाई गई हरिभद्रसूरि की सुन्दर प्रतिमा स्थापित हुई है। उसके परिकर के सबसे ऊपरी भाग में हरिभद्रसूरि को धर्ममाता साध्वी याकिनी महत्तरा की प्रतिमा रखी गई है। ऊपर के भाग में एक ओर उनके दीक्षागुरु जिनदत्तसूरि की और दूसरी ओर उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्यागुरु जिनभटसूरि की तथा नीचे उनके प्रिय शिष्य जिनभद्र और वीरभद्र की मूर्तियाँ कोरी गई हैं। इस स्मृतिमन्दिर के आसपास ज्ञान और संस्कार की अनेक प्रवृत्तियाँ विस्तारने को मुनिजी की योजना थी।

सर्वोदय आश्रम के अपने आवास में मुनिजी ने 'सर्वदेवायतन' बनवाया था। उसमें शिवपार्वती, विष्णुलक्ष्मी, रामसीता, कृष्णरुक्मिणी, महावीर, बुद्ध, गणेश, हनुमान आदि की प्रतिमाओं की स्थापना उन्होंने की थी। भारतीय संस्कृति और धर्म के तीन प्रवाहों—हिन्दू, जैन और बौद्ध की एकता उन्होंने यहाँ साकार की थी। श्री यशवंत शुक्ल लिखते हैं—"उन्होंने साधुवेश त्यागा और साधुजीवन स्वीकार किया था।" पं० सुखलालजी ने ठीक ही कहा है—"वे तो ब्रह्मक्षात्र-तेज की जीवन्त मूर्ति थे, यह उनके विविध काम और स्मारक कह रहे हैं।" ('बुद्धिप्रकाश', जून १९७६, पृ० १७०)

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के उत्तरदायित्व से मुक्त होने के पश्चात् मुनिजी का समय अधिकांशतः चन्देरिया आश्रम में व्यतीत होता था और बीच-बीच में वे अहमदाबाद आ जाते। उनकी मुख्य अभिलाषा हरिभद्र-सूरि के स्मारक को पूर्ण करने की थी, पर अहमदाबाद आने पर विविध ज्ञानगोष्ठियों के साथ-साथ अधूरे रहे शोध और प्रकाशन के कामों को पूरा करने की मन्त्रणाएं भी चलतीं। यों ही उनकी आंखें कमज़ोर थीं और दोनों आंखें मोतिया का ओपरेशन कराने के बाद और भी कमजोर हो गई थीं।

निर्वाण :

अन्तिम बीमारी असाध्य थी यह वे स्वयं जानते थे। तबियत अत्यन्त नाजुक होने पर भी मन की स्थिति नितांत निर्मल और व्यथारहित थी। बातचीत में कहीं भी असंगति अथवा तथ्यात्मक दोष नहीं आ रहा था, यह बात उनकी जीवन-साधना की सूचक थी। मन अत्यन्त स्वस्थ था। थोड़ा भी सामर्थ्य-जैसा लगता तो अहमदाबाद से चन्देरिया जाने की इच्छा थी। सम्भवतः ऐसा न हो सके और अहमदाबाद में देहांत हो जाय तो चन्देरिया में वहाँ के स्थानीय भाई को निर्दिष्ट स्थल पर अग्निसंस्कार करने की सूचना मुनिजी ने दे दी थी।

अहमदाबाद म्युनिसिपल कोर्पोरेशन की गाड़ी में मुनिजी के शव को लेकर निकट के सम्बन्धी और मुनिजी की परिचर्या करने वाले मित्र अहमदाबाद से चन्देरिया जाने लगे। शामळाजी से आगे रतनपुर के चेक पोस्ट पर जो अधिकारी थे वे भीलवाड़ा के थे और मुनिजी को पहचानते थे। उन्होंने भक्तिभाव से दर्शन किये। चित्तौड़ के मार्ग में बानेड़ गाँव आता है; वहाँ मुनिजी के गुरुदेव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यति श्री देवीहंसजी का स्वर्गवास होने से वहां उनकी छत्री है। वहाँ एक यतिश्री लाभचन्दजी रहते हैं। बानेड़ में गाड़ी खड़ी करवाकर, छत्री के समीप जाकर, पुष्पधूप के वासक्षेप से सभी ने पूजा की। गांव के बहुत लोग एकत्र हुये। सबको दर्शन कराकर, यतिश्री लाभचन्दजी को साथ लेकर, गुरुवार दिनांक ३ जून, १९७६ को रात के आठ बजे गाड़ी चन्देरिया पहुँची। इससे पूर्व टेलीफोन द्वारा चन्देरिया समाचार पहुँच गये थे, और आश्रम के संचालक श्री केसरपुरीजी, मुनिजी के निजी परिचारक मांगीलाल और बम्बई से प्लेन में उदयपुर उतर कर, चन्देरिया आये श्री कांतिलाल हरगोविन्ददास शाह प्रतीक्षा कर रहे थे। राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री हरिदेव जोशी का सन्देश आया था कि वे श्मशानयात्रा मे भाग लेने के लिये चन्देरिया आयेंगे।

मुनिजी की देह को उनके बैठनेवाले कक्ष में रखा गया, केसरपुरीजी ने गीता का पाठ चालू रखा और बाहर से भी अनेक लोग दर्शनार्थ आये। दिनांक ४ जून को प्रातः मृतदेह को स्नान करा कर, वे सदा पहनते थे वैसे वस्त्र पहनाकर, पालकी में रखा, ट्रक में पाट लगा कर उस पर पालकी रखकर, चित्तौड़ लाये। हरिभद्रसूरि स्मृतिमन्दिर के विश्रामभवन में पालकी रखी गई। नगरवासियों का बड़ा समूह दर्शनों के लिये आया। सात बजे मुख्यमन्त्री श्री जोशी के साथ विधानसभा के स्थानीय सदस्य, कमिश्नर, कलेक्टर इत्यादि अधिकारी आये; उन सब ने देह को पुष्पहार चढ़ाये। दो बैलों की गाड़ी के पीछे, चार टायरों वाली सुसज्जित गाड़ी में, सिरहाने का भाग ऊंचा रहे उस ढंग से देह को रखकर, पुलिस बैंड के साथ श्मशानयात्रा प्रारम्भ हुई। सबसे आगे घोड़ागाड़ी में; माइक पर श्री केसरपुरीजी जनता को सूचना दे रहे थे। उनके पीछे बैण्ड, तत्पश्चात् पुरुषवर्ग, बाद में गाड़ी और उसके पीछे स्त्रीसमुदाय—ऐसा क्रम था। लोग गुलाल उछाल रहे थे। उस दिन चित्तौड़ में मुनिजी के सम्मान में हड़ताल थी। जब श्मशानयात्रा बाजार के मध्य चौक में आई तब घरों की खिड़कियों, झरोखों, छतों और चबूतरों पर खड़े और गुलाल उड़ाते लोगों का ठठ्ठ जम रहा था। कोई 'जय जय नंदा, जय जय भद्दा' बोल रहे थे और कोई 'रघुपति राघव राजाराम' की धुन लगा रहे थे। चित्तौड़ से देह को पुनः चन्देरिया लाया गया।

श्री लाभचन्दजी यति और मोहनलालजी यति ने वहाँ यति की अन्तिम विधि सम्पन्न करवायी और देह को चिता पर रखा गया; मुनिजी के भतीजे गुलाबभाई ने तथा भतीजी भगवतीबहन के पुत्र मैत्रेय ने अग्निसंस्कार किया। सैकड़ों लोग चित्तौड़ से चन्देरिया आये थे और साथ में चन्दनकाष्ठ के टुकड़े लाये थे। उस चन्दनकाष्ठ को चिता में डालकर मुनिजी की जय बोली गई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपसंहार :

हमारे मूर्धन्य सर्जक साहित्यकार श्री उमाशंकर जोशी ने एक बार बातों-ही-बातों में कहा था कि गुजरात को दो प्रकांड इतिहास संशोधक मिले—एक गिरनार की गुफा से निकले और दूसरे अरावली की गिरिकंदरा से। ये दो संशोधक थे पं० भगवानलाल इन्द्रजी और मुनि जिनविजयजी। उन दोनों ने प्रचलित रीति से स्कूल अथवा कॉलेज की शिक्षा नहीं पायी थी, किंतु दोनों को मात्र राष्ट्रीय ही नहीं, आंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई थी। दोनों पोथीपण्डित नहीं थे, अपितु व्यवहारदक्ष पुरुष और विशिष्ट मानवतावादी थे। मुनिजी के जीवनवृत्त के साथ ही पण्डित भगवानलाल इन्द्रजी का, श्री दुर्गाशंकर शास्त्री द्वारा लिखित जीवनचरित भी जिज्ञासुओं को पढ़ना चाहिये।

मुनिजी के जीवनकार्य और चरित्र के प्रति देश-विदेश में समर्पित की गई कतिपय विशिष्ट श्रद्धांजलियों के कुछेक अंश यहाँ प्रस्तुत करेंगे। फ्रेंच विदुषी मेडम कोलेट कैया (Colette Caillat) दिनांक १५ अगस्त, १९७९ के पत्र के साथ भेजी स्मरणांजलि में लिखती हैं—

"Like all students of Indology, I had, for many years, known the name of Muni Jinvijayaji, admired his erudition and scientific genius, been aware of the extraordinary energy he had successfully displayed—be it as a Jaina scholar, as Singhi Professor of Jaina Culture at Visvabharati, as editor of many Jaina texts or again, of the famous Singhi Jaina Series started in 1931 at Shantiniketan, later closely associated at Bombay with the Bharatiya Vidya Bhavan.

"Obviously, he was praised not only for his personal achievements. His generosity had no limit: with much pleasure, he constantly encouraged other workers, emphasized their merits, lent them all possible help. The scholar was, in fact, a charming person, as well as a man of character and of outstanding personality ......With melancholy, I remember the quiet house—a tall slender silhouette draped in shawl, a benevolent smile and then, the vividness, the brightness of the scholarly discussions."

अमेरिका की हार्वर्ड युनिवर्सिटी के संस्कृत के प्रोफेसर और विख्यात हार्वर्ड ओरियेन्टल सिरीज के प्रधान सम्पादक प्रो० डेनियल एच० एच० इंगोल्स दिनांक २७ सितम्बर, १९७९ के पत्र में लिखते हैं—

"Muniji's loss will be felt by scholars in many lands. We are all greatful for the monument which he has left us in the form of the Singhi Jaina Series of Sanskrit and Prakrit texts."

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिलाडल्फिया क्षेत्र की पेन्सिल्वेनिया युनिवर्सिटी के भारतीय आर्य भाषाओं के प्रोफेसर और 'जर्नल ऑफ दी अमेरिकन सोसायटी' के मुख्य सम्पादक डॉ. अर्नेस्ट बेण्डर दिनांक २० अगस्त, १९७६ के पत्र में लिखते हैं—

"I am saddened to learn that Muniji is gone. The loss is great to Jainological studies to which he contributed as much by his personal researches and scholarship as well as his help and encouragement of other scholars. Alongwith his, their works will serve as a memorial to him as a human personage and revered scholar."

इसी युनिवर्सिटी के भाषाविज्ञान के प्रोफेसर डॉ. ज्योर्ज कार्डोना, जिन्होंने गुजराती व्याकरण के विषय में भी विशिष्ट शोध की थी और जो वडोदरा प्राच्य विद्यामन्दिर में उच्च अध्ययन हेतु कई महीनों तक रुके थे, दिनांक ३१ अगस्त, १९७६ के पत्र में लिखते हैं—

"It is a serious loss to the world of Indology that Muni Jinavijayaji is no longer with us. He was a distinguished member of a small group of outstanding Jaina scholars in a tradition of which Gujarat can be so proud."

भारतीय विद्याभवन में मुनिजी के निकट के सहकर्मी और 'संदेशरासक' के सह-संपादक, प्रसिद्ध शोध-विद्वान् डॉ. हरिवल्लभ भायाणी मुनिजी के जीवन और कार्य के प्रति अंजलि अर्पित करते हुये लिखते हैं :-

"सद्गत मुनि जिनविजयजी के जीवन का अभिप्राय है ऊर्ध्वगति के लिये संघर्षशील जीवन; सत्य और ज्ञान के प्रति अविरत पुरुषार्थ का, प्रखर साधना का जीवन। उनकी सिद्धियाँ भी अनेक, और सभी यशदायिनी। साथ ही प्रकांड विद्वत्ता और ऊँची प्रतिभा के होते हुये भी प्रकृति सरल, उन्मुक्त, स्नेहार्द्र, उदार और निस्पृही ......मुनिजी की प्रतिभा बहुमुखी, और तदनुसार उसके आविष्कार विविध, तदपि विद्या का क्षेत्र ही उनका प्रधान और चिरस्थायी कार्यक्षेत्र था। उनका अधिकांश जीवन—पचास-साठ वर्ष—ज्ञानोपार्जन और ज्ञानसंवर्धन के प्रति ही समर्पित था। किसी विद्वान् को श्रद्धांजलि देते समय 'वे विद्वान् के रूप में तो महान् थे ही, पर मानव के रूप में भी वे उतने ही महान् थे' इस प्रकार कहने की हमारे यहाँ एक प्रथा अथवा रीति देखी जाती है। परन्तु 'विद्वान्' और 'मानव' के बीच के इस कृत्रिम विरोध के पीछे कोई विचारदोष हो रहा है। चैतन्य अथवा शक्ति, जो विशिष्ट आचार-विचार के रूप में प्रधानतः आविष्कृत होती है, के द्वारा ही हम संबंधित व्यक्ति की मानवता को समझ अथवा पहचान सकते हैं। ज्ञान की खोज ही मुनिजी के जीवन का प्रधान सुर और उनके चैतन्य की अभिव्यक्ति का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वोपरि माध्यम था एवं उनकी चिरस्मरणीय सिद्धियाँ भी विद्याक्षेत्र की ही थीं ('ग्रन्थ', जुलाई १९७६ ई०) ।"

श्री उमाशंकर जोशी मुनिजी को अर्पित भावपूर्ण एवं कवित्वमय स्मरणांजलि के अन्त में लिखते हैं—

"मुनिजी से जब कभी, थोड़े मिनटों के लिये भी, मिलना होता तब उनकी पारदर्शक सहृदयता, विशाल विद्यासंदर्भ, और उनके भीतर जो वीरसदृश (Heroic) निहित था उसके सम्पर्क में आने पर आंतरसमृद्धि का अनुभव होता था। उनकी निष्कपट आत्मीयता में तो उनसे मिलने वाले समस्त अभिलाषी सराबोर हो जाते थे। मुनिजी एक विशिष्ट युग की विशिष्ट देन के समान थे। हमारे बीच ऐसी विभूति का अस्तित्व एक प्रेरणास्रोत के समान था। उनके कार्य को सावधानीपूर्वक सम्भालने वाले अनेक नव-विद्वान् आगे आयें, यही उनके प्रति यत्किंचित् उचित श्रद्धांजलि होगी ('संस्कृति', जुलाई १९७६ ई०)।"

यतिश्री देवीहंसजी के सत्संग से मुनिजी के चित्त में बाल्यावस्था में ही वैराग्यवृति और अदम्य जिज्ञासा का बीजारोपण हो गया था, जिसका जीवनभर विकास होता रहा। इसके साथ ही उनमें जन्मजात सात्त्विक क्षात्रतेज और वीरवृत्ति भी थी जिनके दर्शन उनके परिचय में आने वाले सब लोगों को हुये थे। 'महाभारत' और सिखधर्म के गहन अभ्यासी, मेरे छोटे भाई श्री उपेंद्रभाई सांडेसरा के साथ, 'महाभारत' में जिसका उल्लेख आता है उस लकड़ी की मुँहपत्ती 'बोटा' है अथवा 'वीटा'—इस विषय में मुनिजी ने रसप्रद पत्रव्यवहार किया था (इन पत्रों के सम्बन्ध में देखें—गुजरात युनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित 'वेदव्यास अने महाभारत' नामक पुस्तिका का परिशिष्ट)। मुनिजी के साथ की अन्तिम भेंट के विषय में श्री उपेन्द्रभाई लिखते हैं—

"......सिख धर्म के श्रेष्ठ शहीदों गुरु तेगबहादुर, भाई दयाल, दीवान मतिदास, भाई मणिसिंह आदि के जीवन-प्रसंग मुनिजी को मैंने सुनाये थे। वे बातें सुनकर मुनिजी का राजपूत जीव खिल उठा था। उन्होंने पंडित-मृत्यु-शय्या पर समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त करना—और वीरमृत्यु—रणक्षेत्र में बहादुरी से वीरगति प्राप्त करना—का वर्णन किया। मेवाड़ के दो कुलों, चूण्डा के वंशज चूण्डावत और शक्ता के वंशज शक्तावत, इन दोनों सगे भाइयों, के शौर्य की प्रतिद्वन्द्विता का ऐतिहासिक उदाहरण दिया। मुगलों से चित्तौड़गढ़ वापिस लेने के लिये हुये युद्ध में, किले में उन भाइयों में से कौन पहले प्रविष्ट हो—इस स्पर्धा की रसप्रद, शौर्यप्रेरक कथा कही, और ऐसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हालत में भी उनके मुख पर शौर्य और प्रसन्नता की आभा चमकने लगी थी। अन्त में, मुलाकात समाप्त होने से पूर्व, विद्यार्जन का लक्ष्य आत्मोपलब्धि अथवा ब्रह्मप्राप्ति हो तभी विद्या की सार्थकता है, जीवन खाली-खाली नहीं लगता, और इस संसार से विदा लेते समय हृदय संतोष से भरा रहता है– यह उन्होंने भली प्रकार से व्यक्त किया; मेरी विद्यासाधना इस मार्ग पर चले– ऐसा भावपूर्ण आशीर्वाद दिया (अप्रकाशित संस्मरण-लेख से)।"

मुनिजी के जीवनकार्य का अवलोकन कर, उसका समीचीन और समन्वित मूल्यांकन करती, गुजरात के सुप्रसिद्ध विवेचक और चिंतक प्रो. विष्णुप्रसाद त्रिवेदी की टिप्पणी के उद्धरण के साथ इस चरितलेख की समाप्ति कर रहा हूँ (प्रस्तुत टिप्पणी, मेरी प्रार्थना पर, श्री विष्णुभाई ने दिनाँक ७ जुलाई, १९७६ को भेजी थीं)। मानव-विद्याओं की हमारी सम्पूर्ण शोधप्रवृत्ति को लक्ष्य में रखते हुये भी इसके विचार मननीय हैं—

मुनि जिनविजयजी के अवसान से भारत को एक महापण्डित और आचार्य की कमी अनेक बरसों तक सालती रहेगी। विद्वान् और पण्डित की महत्ता समझने के लिये भी समाज में विद्या की उच्चतम कक्षा का थोड़ा-बहुत किंतु व्यापक ज्ञान होना चाहिये। ऐसे विषयों में हमारे निर्णय अनेक बार गतानुगतिक होते हैं और विदेशी पण्डित अथवा देश की दूर की संस्थायें पण्डितों को प्रतिष्ठित करती हैं तब हम जगते हैं। फलतः हमारे पण्डितों, विद्वानों और सूक्ष्मदर्शियों का लाभ समाज को थोड़ा तथा विलम्ब से मिलता है और उनकी प्रभावशक्ति का वर्धन भी अवरुद्ध हो जाता है। मुनि जिन-विजयजी, पण्डित सुखलालजी जैसे पण्डितों को गांधीजी जैसों ने ठीक समय पर पहचान लिया और उन्हें संस्थायें सौंप कर उनके द्वारा उच्च विद्या और उच्च शोध का लाभ देश को प्रदान कराया। उन्हें प्रेरणा मिली, वृत्तिशक्ति को अनुकूल उद्यम में स्थान मिला तो उनकी पांडित्यदीप्ति भी बढ़ी।

संशोधनयोग और इतिहासयोग का काम हमारे देश में कितना विकट है यह इसके पण्डित लोग भली प्रकार जानते हैं। अनेकानेक पुरानी वस्तुओं, वस्तुओं के अंशों, आधी-अधूरी विगतों– इन सब का समाहार करना, उनमें से महत्त्वपूर्ण को छाँटना, हेतुपूर्वक उनका विश्लेषण कर व्यवस्थित करना, और विवरण के साथ सम्पादन करना—यह एक यातना है और किसी प्रकार की भक्ति और लगन के बिना यह हो ही नहीं सकता, यह इतना अट-पटा और विकट काम है। मुनि जिनविजयजी ने ऐसा काम किया और अनेक विद्वानों द्वारा विद्यासेवा के रूप में करवाया।

संशोधक और संपादक के अतिरिक्त मुनि जिनविजयजी का काम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतिहासदर्शक का भी है। हमारे देश में यह काम तो और भी अधिक विकट है। हमारे जनसमाज की मनोभावना, विशेषतः धर्म के विषय में, अत्यन्त कोमल है, जिसे छेड़ने से उसे भारी आघात पहुँचता है और किसी भी इतिहासकार का काम बिगड़ जाता है। मुनि जिनविजयजी ने सत्यनिष्ठा और हेतु को समान मात्रा में सहेजते हुये मध्यकालीन गुजरात के इतिहास की रेखायें और अवस्थायें दर्शायी हैं। ऐसे इतिहास-कार्य में भी मुनिश्री ने स्थिर-बुद्धि की निष्ठा जितनी ही हृदय की गहरी सुजनता भी दिखायी है। इस प्रकार उनके कार्य से पश्चिम भारत के इतिहास के अनेक पृष्ठ और विद्या की अनेक छोटी-बड़ी सिद्धियाँ प्रकाश में आयी हैं।

तीसरे, एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय का भी निर्देश करना उचित प्रतीत होता है। मुनि जिनविजयजी ने देश के उस भावनामय और बौद्धिक वातावरण में काम किया। उसका लाभ तत्काल मिला ही; साथ ही, उसका आध्यात्मिक मूल्य चिरस्थायी है। जिनविजयजी विद्या के तपस्वी आचार्य थे। साधुपुरुष के तप का और आत्मसिद्धि का उन्होंने नया आदर्श प्रस्तुत किया और वह कुल मिलाकर लोकसम्मत हुआ है। जिसका प्रयोजन नहीं रहा, जो मात्र आचार-सीमित है वह भी संसार जैसा प्रपंच है और उसका त्याग करने में साधुता अथवा आत्मसिद्धि को बाधा नहीं पहुँचती —इस आध्यात्मिक तत्त्व को जिनविजयजी जैसे महापण्डितों ने जीवन में चरितार्थ कर दिखलाया। उनके और उन जैसे भारतीय पण्डितों के कार्य से विद्या के बन्द कक्ष खुले हैं। यह 'ब्राह्मण' की विद्या और यह 'जैन' की विद्या—यह नहीं रहा। सरस्वती की प्रतिष्ठा, उपाश्रय, आश्रम और देवालय के स्थान पर जनसमुदाय की प्रसन्नता के लिये प्रकाश और हवा की बहुलता वाले मैदान में हुई। एक प्रकार से यह बात भारतीय संस्कृति के लिये नयी नहीं, किन्तु विद्या का यह राजमार्ग भुलाया जा चुका था और उसका फिर से पता लगा है। हमारे पण्डितों और साक्षरों ने यह जो पुण्यकार्य किया है—हमारी मानसिक और आध्यात्मिक ग्रंथियों के भेदन का—उसमें मुनि जिनविजयजी के प्रत्यक्ष जीवन और कार्य का समर्पण अत्यन्त मूल्यवान है। विद्यासिद्धि का यह राजपथ हमें भूलना नहीं है।

—❀—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

परिशिष्ट

हरिभद्रसूरि स्मारक के विषय में मुनिजी

सर्वोदय आश्रम
पो० चंदेरिया
(जिला - चित्तौड़गढ़)

दिनांक १६–३–६९

परम सुहृद् प्रिय श्री रसिकभाई योग्य,

सबहुमान स्नेहपूर्वक कुशलाभिवादन।

बहुत समय के पश्चात् पत्र लिख रहा हूँ। इन दिनों आपके कोई समाचार नहीं मिले। स्वास्थ्य ठीक होगा। यदा-कदा मोतीबहन से आपके विषय में पूछ लेता हूँ। कभी-कभी वे कुशल-मंगल की बात लिख देती हैं। इस बार उधर आया तब अधिक मिलना नहीं हो सका। श्री श्वोब[1] अंतिम दिन मिलने आये थे। मैं उसके दूसरे ही दिन इधर आ गया। श्री श्वोब वहीं हैं अथवा चले गये? आपका स्वास्थ्य उस समय जरा नरम था। मैं भी आपसे मिलने नहीं आ सका।

आज इस पत्र के लिखने की उत्कंठा इसलिये हुई कि आपने श्री हरिभद्रसूरि के तत्त्वचिंतन के विषय में जो गम्भीर लेख महावीर विद्यालय के स्मारक-ग्रंथ के लिये लिखा था उसका रिप्रिंट आपने मुझे दिया था। मेरी आँखें अब निस्तेज हो गई हैं, इससे मैं अब स्वयं पढ़-लिख सकने में असमर्थ हो गया हूँ। लाचारी से, थोड़ा-बहुत कभी पढ़ लेने की अनिवार्य इच्छा होने पर ही ऐसा करता हूँ।

अभी विशेष कारणवश आपका वह लेख बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ गया हूँ। लेख अत्यन्त ही प्रौढ़ विचारों से पूर्ण और नयी ही विचारशृङ्खला दिखाने वाला प्रतीत होता है। इसके लिये मेरा हार्दिक अभिनन्दन! आपका जो

---

१ एक फ्रेंच सज्जन, चिंतक और विद्वान्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशाल तत्त्वज्ञानविषयक चिंतन, मनन और निदिध्यासन है उसी के परिपाक रूप में ऐसा लेख लिखना संभव है। साथ ही, आध्यात्मिक जीवन के विषय में आपकी अपनी जो मार्मिक जिज्ञासा और श्रद्धा है उसका भी इसमें आंतरदर्शन होता है।

आपका यह उत्तम लेख पढ़ जाने का विशेष कारण अभी क्यों बना उसके विषय में थोड़ा वृत्तांत लिख रहा हूँ। आपको सूचना है कि मैं यहाँ चित्तौड़ में कई वर्षों से श्रीहरिभद्रसूरि स्मृति मन्दिर का निर्माण कार्य कर-करा रहा हूँ। अब इस मन्दिर का रचनाकार्य लगभग पूरा हो गया है। थोड़ा-सा फिनिशिंग का काम अभी बाकी है। इस मन्दिर में विराजमान करने के लिये आचार्य महाराज की एक सुन्दर मूर्ति मैंने जयपुर के कारीगरों से बनवायी है; वह मूर्ति भी यहाँ आ गई है। मैंने आपको उस मूर्ति के फोटो बताये अथवा नहीं, इसको मुझे याद नहीं रहा। अहमदाबाद आया था तब वे मेरे साथ थे। प्रमुख लोगों को बताया भी था।

यहाँ जो स्मृति मन्दिर मैंने बनवाया है उसकी रचना और शैली आदि कुल मिलाकर सुन्दर और आकर्षक है। इसके भी फोटो आदि लिये जाने हैं। यह मन्दिर चित्तौडदुर्ग के मुख्य प्रवेशद्वार के सामने ही स्थित है, इससे यह दुर्ग देखने आने वाले प्रत्येक प्रवासी की प्रथम दृष्टि इस मन्दिर की ओर आकर्षित होती है। अनेक प्रवासी इसके फोटो भी खींचते हैं। सेठ श्री कस्तूरभाई गत वर्ष चित्तौड़ आये थे तब उन्होंने इस मन्दिर का काम देखकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की थी और श्री पुण्यविजयजी महाराज से भी इस सम्बन्ध में बात की थी। अभिप्राय यह कि हरिभद्रसूरि स्मृति मन्दिर एक नमूनेदार स्मारक-स्थान बना है। अब मुख्य काम है इस मन्दिर में समुचित रूप से सूरिमहाराजजी की मूर्ति को प्रतिष्ठित करने का।

मैंने जब प्रारम्भ में इस स्मारक का निर्माण कार्य आरम्भ किया था उस समय मेरी जो कल्पना थी उसमें थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन होता गया। पैसों के जुगाड़ की दृष्टि से योजना को कुछ संक्षिप्त करना पड़ा। परन्तु पीछे से दूसरी कल्पनाएँ आने से उस रूप में उसका स्वरूप बनता गया। पहले ऐसी कल्पना हुई कि हरिभद्रसूरि के साथ चित्तौड़ में जो विशिष्ट विभूतियाँ हुईं उन सबका इस स्मारक में किसी-न-किसी रूप में समावेश किया जाय। परन्तु उस कल्पना को मूर्त रूप देने में जितने धन की आवश्यकता प्रतीत हुई उसकी प्राप्ति की असमर्थता दिखने पर वह कल्पना तो निरस्त करनी पड़ी। मूल कल्पना थी कि श्री हरिभद्रसूरि की मुख्य मूर्ति, मुख्य स्थान पर स्थापित हो और उसके आसपास चित्तौड़ के ऐतिहासिक दुर्ग के साथ जिन कतिपय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसिद्ध जैन आचार्यों और जैन विद्वानों का सम्बन्ध रहा हो उनकी भी स्मृति की दृष्टि से उस मन्दिर में मूर्ति अथवा चरणपादुका आदि के प्रतीक स्थापित किये जायें। इससे चित्तौड़ के कुछेक जैन ऐतिहासिक प्रसंगों की लोगों को जानकारी मिले, इस दृष्टि से दो-चार आचार्यों की छोटी-बड़ी प्रतिकृतियां आदि की स्थापना का विचार चल रहा है।

परन्तु अब विशेष रूप से हरिभद्रसूरि की दृष्टि से इस मन्दिर में, उन महान् शास्त्रकार के साथ, उनके साहित्य के अनन्य उपासकों—व्याख्याकारों, आचार्यों और विद्वानों के प्रतीक भी स्थापित करने का संकल्प हुआ है। श्री हरिभद्रसूरि के गहन ग्रंथों का विशिष्ट स्पष्टीकरण करने के लिये टीका, टिप्पणी, व्याख्या, विवरण आदि के रूप में जिन-जिन आचार्यों ने साहित्यिक प्रयत्न किया है उनका भी यथोचित निर्देश इस मन्दिर में करना चाहता हूँ, जिससे हरिभद्रसूरि के साहित्यिक परिवार का भी सत्कार हो सके और इस प्रकार दूसरे अनेक महान् शास्त्रवेत्ताओ के जोवन का और उनकी साहित्यसेवा का परिचय कराया जा सके। हरिभद्रसूरि के जीवन और साहित्य के साथ सम्बन्ध रखनेवाले जैन शास्त्रकारों का मैं विचार करता हूँ तब मेरे सामने कितने ही आचार्यों को स्मृति खड़ो हो जाती है। यहाँ केवल थोड़े-से नाम उल्लिखित कर रहा हूँ—

सर्वप्रथम हरिभद्रसूरि—(१) उनकी धर्ममाता याकिनी महत्तरा महासती, (२) उनके दीक्षागुरु जिनभद्रसूरि, (३) विद्यागुरु जिनदत्तसूरि, (४-५) उनके दो प्रिय शिष्य जिनभद्र और वीरभद्र (६) उनके शास्त्रों का प्रसार करने वाले—ग्रंथ लिखवाने वाले लल्लिग धनिक।

इस प्रकार इन छह व्यक्तियों की प्रतिकृतियाँ तो हरिभद्रसूरि की मूर्ति के साथ हो परिकर रूप में तैयार कराई गई हैं।

1. हरिभद्रसूरि के समीप न्यायशास्त्रों का अभ्यास करनेवाले दाक्षिण्य-चिह्न अर्थात् उद्योतनसूरि, जिन्होंने कुवलयमाला कथा की विशिष्ट रचना की।

2. महाकवि सिद्धर्षि—उपमितिभवप्रपंच कथा जैसी अद्भुत आध्यात्मिक कथा की रचना करनेवाले। ये अपनी रचना में आचार्य हरिभद्र का अपने धर्मबोध करने वाले गुरु के रूप में उल्लेख करते हैं। अर्थात् हरिभद्र की ललितविस्तरा नामक शास्त्रीय रचना के वाचन और मनन से उन्हें सम्यक् धर्म पर अपूर्व श्रद्धा उत्पन्न हुई थी।

जैन साहित्यभण्डार में तीन महान् कथारत्न हैं—(१) हरिभद्रसूरि की समराइच्च कहा-प्राकृत, (२) उद्योतनसूरि की कुवलयमाला कहा-प्राकृत, (३) सिद्धर्षि महाकवि की उपमिति-भवप्रपंच कथा। इसलिये इन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन महाकथाकारों की मूर्तियाँ मैं इस स्मारक मन्दिर में स्थापित करना चाहता हूँ। ये तीनों मूर्तियाँ तैयार होकर आ भी गई हैं।

इनके अतिरिक्त हारिभद्रीय वाङ्मय के उपासकों में प्रमुख शास्त्रकार इस प्रकार हैं—

(१) वर्धमानसूरि (जिनेश्वरसूरि के गुरु), उपदेशपद के प्रथम टीकाकार, (२) जिनेश्वरसूरि—अष्टक नामक हारिभद्रीय कृति के विशिष्ट व्याख्याकार[1], (३) अभयदेवसूरि—नवांगी वृत्तिकार, हारिभद्रीय पंचाशक ग्रंथ की टीका करने वाले, (४) मुनिचन्द्रसूरि— वादी देवसूरि के गुरु, धर्मबिंदु तथा हरिभद्रसूरिकृत ललितविस्तरा नामक चैत्यवंदनवृत्ति पर विशद व्याख्या लिखने वाले, (५) मलयगिरिसूरि— हारिभद्रीय धर्मसंग्रह, शास्त्रवार्तासमुच्चय आदि के टीकाकार, (६) प्रभाचन्द्रसूरि— हारिभद्रीय षोडशक प्रकरण नामक ग्रंथ की टीका करने वाले, (७) गुणरत्नसूरि— हारिभद्रीय षट्दर्शनसमुच्चय नामक ग्रन्थ पर विस्तृत टीका लिखने वाले, (८) यशोविजय महोपाध्याय— शास्त्रवार्तासमुच्चय पर बृहद् टीका लिखने वाले, (९) प्रद्युम्नसूरि— 'समराइच्च कहा' का संस्कृत में सुन्दर रूपांतर करने वाले।

उपर्युल्लिखित समस्त ग्रंथकार जैन साहित्य के विशिष्ट शास्त्रकार तथा महान् प्रभावक आचार्य थे। उनकी ज्ञानभक्ति द्वारा ही हमें हरिभद्रसूरि के गहन शास्त्रों का किंचित् ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिला है। अतः इन सभी आचार्यों के पुण्य स्मारक-स्वरूप, हरिभद्रसूरि के स्मृतिमन्दिर में कुछ-न-कुछ प्रतीक की स्थापना करने का मेरा संकल्प है। इसके लिये मैं यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूं। इसमें कितनी सफलता मिलेगी यह तो हरिभद्रसूरि की योगी-गम्य ज्ञानमय आत्मा ही शायद जान सके।

इस स्मारक मन्दिर की प्रतिष्ठा का समारोह करने के लिये यहाँ स्थानीय भाइयों की एक समिति बनायी गई है। इस समिति द्वारा हरिभद्रसूरि विषयक कतिपय विशिष्ट जानकारी लोगों को देने की दृष्टि से छोटी-बड़ी पुस्तिकाएँ और पत्रिकायें तैयार करने की योजना है। उसमें आपका उक्त निबन्ध भी एक स्वतन्त्र पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया जाय तो अधिक लोगों में उसका प्रसार हो सकता है। मेरा विचार तो इस निबन्ध को सुन्दर हिन्दी में अनूदित कराने का भी हो रहा है। परंतु आपका यह निबंध अत्यंत ही प्रौढ़ विचारों से परिपूरित एवं गम्भीर भाषा में लिखा हुआ है। अतः उसका अविकल सुन्दर भाषांतर कर सके ऐसे व्यक्ति की खोज में हूँ।

---

१. यहाँ तक का पत्र मुनिजी के अपने हस्ताक्षरों में गुजराती लिपि में है। इसके बाद का पत्रांश किसी राजस्थानी भाई से लिखवाया हुआ, देवनागरी लिपि में होने से उसकी कुछेक भाषा-सम्बन्धी अशुद्धियाँ सुधार ली गई हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आप पण्डितजी साहब से भी बात कीजिये कि क्या इसका भाषांतर कर सकने वाला कोई व्यक्ति उनकी जानकारी में है ? मैं स्वयं यह काम करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी वाचन-शक्ति अब पर्याप्त नहीं है; अत: मेरे लिये यह असंभव-सा है।

आज आपका निबन्ध पढ़ते समय मुझे यह पत्र लिखने की इच्छा हुई; अत: लिखने बैठ गया। परन्तु आधा लिख चुकने के बाद आगे कलम नहीं चली, अत: दूसरे भाई से जैसे-तैसे लिखवा कर यह पत्र पूरा कर रहा हूँ।

मैं वहाँ आया तब पण्डितजी साहब आदि के कहने से जिस एक आँख के मोतिया का ऑपरेशन कराना रह गया था उसे तुरन्त ही इन दिनों करा लेने का विचार था। परन्तु यहाँ आने के बाद उक्त हरिभद्रसूरि स्मारक मन्दिर का अवशिष्ट कार्य हो सके उतना जल्दी सम्पन्न करा लेने की आवश्यकता प्रतीत होने से अभी उधर आ सकना संभव नहीं। संभवत: आया तो अगले महीने पाँच-सात दिन के लिये अवश्य आने का विचार है।

अ० सौ० माणेकबहन मजे में होंगी। मेरी ओर से सुखप्रश्न पूछियेगा। पिछली बार मैं उनसे मिल नहीं सका। पत्र की पहुँच लिखियेगा।

भवदीय

मुनि जिनविजय

[प्रिय श्री रसिकभाई,

आज के पत्र में सूचित किये अनुसार, वह पुराना पत्र जो लगभग दो वर्ष पहले[1] लिखा था, भेज रहा हूँ।

यह पत्र आपको उस समय क्यों नहीं भेज सका, इसकी कोई स्मृति नहीं रही। यह पुराना होते हुये भी आज भी उतना ही नया है, यह पढ़ने से आप समझ सकेंगे। श्री पुण्यविजयजी महाराज की बड़ी इच्छा थी कि मैं इस सम्बन्ध में एक बार बम्बई में उनसे मिलूँ तो वे इस स्मारक के लिये यथोचित करने को उत्सुक हैं। परन्तु मेरा दुर्भाग्य है कि मुझमें अब बम्बई जाने की शक्ति नहीं रही है। वे भी इन दिनों अस्वस्थ हो गये हैं, ऐसे समाचार हैं।

जिनविजय]

---

१. ऊपर के विस्तृत पत्र के अनुलेख रूप में मुनिजी द्वारा लिखित इस दूसरे पत्र में तारीख नहीं है, किन्तु चन्देरिया से रजिस्टर्ड पोस्ट से दिनांक ३-६-७१ के दिन दोनों पत्र रवाना होने की छाप है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ. गोपीनाथ शर्मा से एक भेंट

वार्ताकार : डॉ० डी० बी० क्षीरसागर

प्रश्न— प्रारम्भ में आपका मुनिजी से किस प्रकार सम्पर्क हुआ ?

उत्तर मुनिजी जब बम्बई में थे और वहाँ रहते हुए उन्होंने कई जैन ग्रन्थों की गवेषणा और सम्पादन किया और मुझे भी उन्हें पढ़ने का अवसर मिला था। मैं उनसे पहले से ही प्रभावित था क्योंकि ये ग्रंथमालाएँ अपने आप में बड़ी महत्त्वपूर्ण थीं। भाग्यवश वे बम्बई से राजस्थान में आ गये और स्वर्गीय सुखाड़िया जी ने उन्हें पुरातत्त्व मन्दिर का डाइरेक्टर नियुक्त किया। मैं सन् 1952 या 1953 के लगभग जब जयपुर गया तो मुझे उनसे मिलने की उत्कण्ठा हुई। उनका कार्यालय उन दिनों गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज की पुरानी बिल्डिंग के पास हवामहल के सामने था। मैं उन्हें जब पहली बार मिला तो उन्होंने इस नवीन संस्था की गतिविधि से मुझे परिचित कराया। यह हमारी पहली मुलाकात थी।

प्रश्न— क्या मुनिजी महाराज आपको पहले से ही जानते थे ?

उत्तर मैं यह तो नहीं कह सकता, किन्तु वे मुझे अपने नाम से पहचान गये और मेरी पुस्तक "मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स" पर बातचीत हुई। उन्होंने बड़ा सन्तोष व्यक्त किया कि राजस्थान का शोधकार्य इसी दिशा में अन्य राज्यों में भी होना आवश्यक है। इसके बाद मैं जब-जब भी जयपुर जाता उनसे मुलाकात होती रहती और मैं उनके चिंतन और विचारों से लाभान्वित होता रहता। उनकी मुलाकात के बाद मेरी जैन ग्रंथों के अध्ययन में रुचि बढ़ गई। कुछ समय बाद यह संस्था जोधपुर स्थानान्तरित हुई और नये भवन के उद्घाटन के समय भी मुझे बुलाया। उस समय मैंने भी अपने विचार दो शब्दों में प्रकट किये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रशन— चूँकि डॉ. साहब ! आप उनके निकट सम्पर्क में रहे हैं, और प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान से भी आपका सतत सम्पर्क रहा इसलिए इस विभाग के द्वारा मुनिजी के नेतृत्व में जो कार्य किया उस बारे में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर— जोधपुर पहुँचने पर मुनिजी अपने कार्य में अधिक व्यस्त रहे और काम द्रुतगति से चला । इस विभाग में मुनिजी के साथ श्री गोपाल नारायण बहुरा का होना बड़ा महत्त्वपूर्ण था । मुनिजी के निर्देशन में हजारों की संख्या में हस्तलिखित ग्रंथ इकट्ठे किये गये और अनेक उपयोगी ग्रंथों का सम्पादन भी हुआ । किन्तु इस समय तक उनकी दृष्टि में कुछ निर्बलता आ जाने से उनके पिछले दिनों में कार्य जिस गति से होना था, नहीं हो पाया । वे अधिक समय तक कार्यालय में भी नहीं रह पाते । वैसे अपने सहयोगियों से काम लेने में वे बड़े सख्त थे और काम की ढिलाई होने पर उन्हें कई बार मैंने बिगड़ते भी देखा है ।

प्रश्न— मुनिजी के नेतृत्व में विभाग ने प्रारम्भ में अनेक ग्रंथों का सम्पादन किया, और वे ग्रन्थ भी आपने देखे हैं । क्या इन पर आपने कभी मुनिजी से चर्चा की है ?

उत्तर उनके सम्पादन-कार्य में और खासतौर से ऐतिहासिक ग्रन्थों के सम्पादन में मुझे जो कमी महसूस हुई, वह यह थी कि ग्रन्थ की भूमिका प्रायः बड़ी सूक्ष्म हुआ करती थी और ग्रन्थ के विश्लेषण का केन्द्र मात्र पाण्डुलिपियों के मिलान और भाषा सम्बंधी जानकारी ही उपलब्ध कराने तक सीमित रहा करती थी । उदाहरणार्थ-कान्हड़दे प्रबन्ध व सूरज-प्रकाश, बिन्हैरासो आदि रचनाऐं इस प्रकार के अभाव के उदाहरण हैं । यह बात मैंने मुनिजी से निवेदन भी की और उन्होंने इसे स्वीकार भी किया । उन्होंने यही तर्क दिया कि हमें ऐसे विद्वान् नहीं मिल रहे हैं जो इस कमी को पूरा कर सकते या हमारी गति के साथ शीघ्र सामग्री उपलब्ध करा सकते । मैं मौन रहा । उनके प्रति मुझे श्रद्धा थी, वे बड़े विद्वान् थे, उन्हें अधिक कहना मैंने अपनी अनधिकार चेष्टा ही माना ।

एक और निवेदन मैंने उनसे किया, वह यह था कि यदि मुनिजी अपने निर्देशन में एक अच्छा शोधार्थी, दल तैयार कर दे तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्भवत: इस संस्था की गतिविधि और अधिक सन्तोषजनक हो सके। फिर भी यह मानना होगा कि मुनिजी ने जिस कार्य को आरंभ किया उससे उनके सहयोगियों तथा आगे आने वाली नयी पीढ़ी को एक स्तुत्य प्रेरणा मिली। यही कारण है कि आज भी यह संस्था कई अच्छे विद्वानों द्वारा संचालित है और आशा है कि मुनिजी का कार्य आगे बढ़ता रहेगा।

प्रश्न — स्व० मुनिजी की अध्यक्षता में चित्तौड़ में कुम्भा पञ्चशती समारोह मनाया गया था और आप भी उसमें आमन्त्रित थे। उसके कुछ संस्मरण आप सुनायेंगे ?

उत्तर यह गोष्ठी चित्तौड़ में हुई। मुनिजी उसके अध्यक्ष थे। इसका आयोजन उदयपुर के श्री चन्द्रगन्धर्व जी ने किया था। इस समारोह में राजस्थान के प्रमुख विद्वान् जैसे डॉ. मथुरालालजी शर्मा, डॉ. दशरथ शर्मा, अगरचन्द नाहटा आदि उपस्थित थे। मैंने भी "महाराणा कुम्भा के व्यक्तित्व और कृतित्व" विषय पर एक लेख पढ़ा। और भी विद्वानों के भाषण और पत्रवाचन हुए। साहित्य और इतिहास पर चर्चा को सम्मिलित करने वाली यह गोष्ठी हर दृष्टि से सफल रही।

प्रश्न — आपने ऐतिहासिक ग्रंथों के सम्पादन में कुछ असन्तोष सा प्रकट किया है, फिर गोरा-बादल पर आपकी क्या राय है ?

उत्तर — वैसे इसकी भूमिका अच्छी रही, किंतु इसमें कुछ बातों पर प्रभाव नहीं पड़ पाया। उदाहरण के लिए गोरा बादल का अलाउद्दीन के कैम्प में जाना, पद्मिनी के डोले का नेतृत्व करना और रतनसिंह को छुड़ा कर लाना, इन घटनाओं पर विद्वानों में जो मतभेद है उसका समाधान समुचित रूप से नहीं हो पाया। बल्कि डॉ. कानूनगो या डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के विचारों का इसमें कोई सामंजस्य स्थापित नहीं किया गया है। अगर इन पहलुओं पर कुछ फारसी तवारीखों का यथोचित विश्लेषण होता तो संभवत: इन घटनाओं की प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता पर और अच्छा प्रकाश पड़ता।

प्रश्न राजस्थान हिस्टोरिकल रिसर्च सोसाइटी के सिलसिले में आपका क्या दृष्टिकोण रहा ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तर— वह कभी मूर्त्तरूप में सामने नहीं आ पाई। उन्होंने केवल अपना संग्रह हरिभद्र में दे दिया।

प्रश्न— उनके व्यक्तित्व या उनके स्वभाव के वैशिष्ट्य पर क्या आप कुछ कहना चाहेंगे?

उत्तर— निन्दा स्तुति तो क्या करें? वे बड़े उद्भट विद्वान् थे। कार्य और समय के वे बहुत पाबन्द थे। कई महापुरुषों की एक विशेषता उनमें भी थी – शीघ्रकोपी थे। परन्तु थे सरल-हृदय और सच्चे सारस्वत।

❁❁❁❁

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसिद्ध इतिहासविद् श्री पृथ्वीसिंह मेहता से एक अन्तरंग वार्तालाप

भेंट : श्री ओम्प्रकाश शर्मा

प्रश्न — मेहता साहब ! मुनिजी से आपका परिचय कब हुआ ?

मुनिजी से मेरा साक्षात् परिचय सन् 1945 में हिंदी साहित्य सम्मेलन में हुआ। उस वक्त के. एम. मुन्शी अध्यक्ष के रूप में व मुनिजी उनके साथ आये थे। वैसे मैं उन्हें पहले से ही जानता था। ओझाजी के यहाँ प्रायः उनकी चर्चा होती थी।

प्रश्न — भारतीय पुरातत्त्व के किस क्षेत्र में मुनिजी का योगदान अधिक मानना चाहिये ?

मुनिजी की सिंघी जैन ग्रन्थमाला के माध्यम से मध्यकालीन इतिहास के जैनस्रोतों की काफी जानकारी मिली। वैसे प्राकृत का अध्ययन भारतीय पुरातत्त्वविदों में बहुत कम होता रहा है। मुनिजी के समय तक पाली भाषा के बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन हो चुका था। जैन प्राकृत ग्रन्थों पर उस समय कार्य करने की काफी आवश्यकता थी। वास्तव में उस समय गांधीजी के गुजरात विद्यापीठ (1918-19) में चार आदमी आये थे। धर्मानन्दजी कौशाम्बिक पाली के बड़े विद्वान्, पण्डित सुखलालजी सिंघवी प्रज्ञाचक्षु दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड मर्मज्ञ, स्वामी शिवरामजी अय्यर जो बाद में स्वामी अविनाशानन्द के नाम से प्रख्यात हुये तथा जिन्होंने Cultural Heritage of India को चार भागों में सम्पादित किया तथा मुनि जिनविजयजी प्राकृत के पहले-पहले विद्वान् थे। मुनिजी इतिहास एवं पुरातत्त्व के बड़े ज्ञाता थे।

प्रश्न — आपकी दृष्टि में राजस्थान में मुनिजी का कार्यक्षेत्र कब से मानना ठीक रहेगा ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजस्थान में मुनिजी का सीधा प्रभाव उदयपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बाद माना जा सकता है। उससे पहले मुनिजी का प्रभाव गुजरात में था। स्वतन्त्रता के बाद मुनिजी ने राजस्थान को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया।

प्रश्न— मुनिजी ने हस्तलिखित ग्रन्थों का भारी मात्रा में सम्पादन किया था। आप उनका मूल्यांकन किस दृष्टि से करते हैं?

वास्तव में मुनिजी प्राकृत के उच्चकोटि के विद्वान् थे। इसी प्रसंग में वे जर्मनी भी गये। जर्मनी में उन्होंने सम्पादन की नयी पद्धतियों का काफी अध्ययन किया था। उन्होंने जैन स्रोतों को सम्पादित करने में हमेशा भारतीय दृष्टि का अवलम्बन किया। उनका सम्पादन सर्वदा उच्चकोटि का रहा है।

प्रश्न— उस जमाने में अंग्रेजों का भारत में अधिकार था, जाहिर है कि शिक्षा-पद्धति भी लगभग उन्होंने अपनी इच्छा से निर्धारित की। ऐसी दशा में स्वदेशी दृष्टि के आलम्बन के लिये क्या-क्या प्रयास किये गये? मुनिजी का इस दृष्टि से क्या योगदान रहा?

उत्तर— मुन्शीजी ने जब भारतीय विद्याभवन चालू किया उससे पहले 1920 ई. में गांधीजी ने गुजरात विद्यापीठ आरम्भ कर दिया था। विद्यापीठ की स्थापना से ही मुनिजी इस संस्था से जुड़ गए थे। उस समय इतिहास के प्रोफेसर जयचन्द विद्यालंकार ने गांधीजी को कहा "हमें अपनी राष्ट्रीय दृष्टि में पाठ्य-पुस्तकें लिखवानी चाहिये।" प्रत्युत्तर में गांधीजी ने स्वराज्य के पश्चात् कहकर विषय को समाप्त कर दिया। वैसे इससे पूव से भी अंग्रेजी शिक्षा का विरोध बराबर बना हुवा था। सबसे पुराना प्रयास फर्ग्युसन कॉलेज कहा जा सकता है। ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से हो 1885 ई. में लाहौर में डी. ए. वी. कॉलेज की स्थापना की गयी। गुरुदत्त एवं महात्मा मुन्शीराम ने दयानन्दजी के विचारों के अनुकूल गुरुकुल की स्थापना की। इसीसे प्रेरणा लेकर 1905ई. में स्वदेशी आन्दोलन ने जोर पकड़ा। फलस्वरूप ज्वालापुर का बंगाल नेशनल कॉलेज स्थापित हुआ। टॉड के इतिहास की विसंगतियों को दूर करने हेतु श्यामलदासजी को मेवाड़ का इतिहास लिखने के लिये नियुक्त किया गया। स्मिथ की "हिस्ट्री ऑफ इण्डिया"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के विरुद्ध राष्ट्रवादी लोगों ने लिखा। उस दृष्टि से मुनिजी का भी योगदान रहा है। 1939 ई.में मुनिजी ने मुन्शीजी के ग्राग्रह से भारतीय विद्याभवन के ग्रॉनरेरि डाइरेक्टर के पदभार को ग्रहण किया। यहाँ ग्रनेक प्रकार की भारतीय विद्याग्रों की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ चालू की गईं। परिणामस्वरूप ग्रनेक प्रतिभावान् विद्वान् तैयार हुये। ग्राखर में 1950 ई. में प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जयपुर के माध्यम से मुनिजी ने लगभग 17 वर्षों तक राजस्थान की सेवा की ग्रौर भारतीय विद्या के लगभग 80 ग्रन्थ प्रकाशित किये।

प्रश्न— क्या ग्राप भी राजस्थान में कोई शोधसंस्थान बनाना चाहते थे ?

उत्तर— हाँ ! हम लोग ग्रोझाजी के नाम से एक शोधसंस्थान कायम करना चाहते थे। इस संस्थान हेतु ग्रपनी सम्पूर्ण सामग्री देने के लिये ग्रोझाजी तैयार हो गये थे। उन्होंने राजेन्द्र बाबू को इस सम्बन्ध में लिखा भी था। इस निमित्त उन्होंने मुझे ग्रपने पास रखा ताकि भावी संस्थान की रूपरेखा कायम की जा सके। लगभग यह संस्था खोलनी तय हो गई थी किन्तु 1947 ई. में ग्रोझाजी का निधन हो गया। उसके बाद इस कार्य में निरन्तर ग्रवरोध उत्पन्न होते गये ग्रौर ग्रन्त में यह विचार त्यागना पड़ा। वैसे ग्रोझा संस्थान की रूपरेखा के रूप में मैंने 1950 ई० में 'हमारा राजस्थान' नामक पुस्तक लिखी थी।

उन्हीं दिनों राजस्थान सरकार ने प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान की जयपुर में स्थापना की ग्रौर मुनिजी उसके सम्मान्य निदेशक बनाये गये। मुनिजी मुझे भी उस संस्थान में रखना चाहते थे। मैं ग्रपने ग्रन्य कार्यों में व्यस्त रहा था ग्रतः यह सम्भव नहीं हो सका।

प्रश्न— मुनिजी से बाद में ग्राप कब-कब मिले ?

उत्तर— वैसे तो कई बार मिलना हुग्रा। सन् 1972 ई. में दिल्ली में विश्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत सम्मेलन में उनसे बातचीत का मौका मिला। मुनिजी से अन्तिम बार उनके निधन के कुछ समय पूर्व चित्तौड़ के चन्देरिया आश्रम में मिला था। तब उनकी स्मरणशक्ति भी क्षीण हो रही थी। किन्तु अब शेष रही है केवल उनकी स्मृतियाँ– उन क्षणों की– जिन्होंने मुझे समय-समय पर प्रेरित किया।

❀❀❀❀

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वोदयी कार्यकर्त्ता श्री केसर पुरी गोस्वामी के साथ बातचीत के कुछ क्षण

वार्ताकार : डॉ० दामोदर शास्त्री

प्रश्न— आपके और मुनिजी के सम्बन्धों का प्रथम सम्पर्क सूत्र क्या था ?

उत्तर— मैं राजस्थान गांधी स्मारक निधि जो श्री गोकुलभाई भट्ट की अध्यक्षता में चलायी जा रही थी उसका मन्त्री था। इसके साथ ही मैं कस्तूरबा ट्रस्ट का प्रान्तीय प्रतिनिधि भी था। मुनिजी की हार्दिक इच्छा थी गांधी स्मारक निधि से सर्वोदय साधना केन्द्र चन्देरिया को कुछ सहयोग मिले। इन दोनों संस्थाओं में मेरे कार्य व व्यवहार से प्रभावित होकर मुनिश्री मुझे चन्देरिया बुलाना चाहते थे। उन दिनों वे आश्रम के कृषि कार्य को व्यवस्थित व विकसित करना चाहते थे। यह सब 1952-53 ई. की बात है। उन्हीं दिनों कस्तूरबा ट्रस्ट की ओर से एक केन्द्र चन्देरिया में असहाय जनों की सेवार्थ शिक्षा व औषधि सेवा के रूप में स्थापित किया गया था। एतदर्थ एक शिक्षक व परिचारिका की सेवा भी उपलब्ध करायी गयी। इसी क्रम में मैं मुनिजी के निकट सम्पर्क में आया और उनके सान्निध्य में कार्य करने का मुझे अवसर मिला।

प्रश्न— मुनिजी के पत्र व्यवहार से ऐसा लगता है कि वे आप पर बहुत विश्वास करते थे। ऐसा क्यों ?

उत्तर— सम्पर्क में आने के बाद मुनिजी समय-समय विशेष आग्रह करने लगते कि आश्रम की सम्भाल व देखभाल मैं ही करूँ। यह जिम्मेदारी मुझे सौंपने में सर्वदा आतुर रहते थे। परन्तु मेरा स्वास्थ्य ठीक न होने से इस गुरुतर भार को वहन करने में मैं अपने आप को असमर्थ ही पाता रहा। इसी बीच 1967 ई. में अत्यधिक बीमार हो गया। लगभग 8 दिन पूर्व ही मेरा पुत्र मुझे छोड़कर अमेरिका चला गया। इससे मैं अपने आप निराश्रित-सा हो गया। मेरी देखभाल व सम्भाल करने वाला कोई नहीं था। मुझे कैंसर की बीमारी थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका ऑपरेशन भी कराया गया। उस समय मैं आर्थिक संकट में भी फंसा हुआ था। तब मुनिजी ने मुझे पाँच सौ रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की और उपचार की ओर विशेष ध्यान दिया। उपचार से स्वस्थ होकर मैं प्रतिफल के रूप में मुनिजी से अत्यधिक प्रभावित हुआ और उनकी सेवा में लग गया।

विनोबाजी की पदयात्रा के कार्यक्रम में उनका सहयोगी रहा। उनके द्वारा निर्दिष्ट सामाजिक कार्यों को भी लगन व निष्ठा के साथ करने लगा। इसी से उनका व मेरा कौटुम्बिक व आत्मीय स्नेह बन गया। मेरे पर उनका विश्वास पूर्ण रूप से जम गया और मुझे आश्रम के कार्यों का उत्तरदायित्व सौंपने लगे। परन्तु मैं इस भार हेतु तैयार नहीं हुआ।

प्रश्न— फिर आपने किन परिस्थितियों में यह दायित्व सम्भाल लिया ?

उत्तर— धीरे-धीरे मेरा स्वास्थ्य भी कमजोर होने लगा मुनिजी महाराज का स्वास्थ्य भी काफी कमजोर हो गया। उपचार के लिये अहमदाबाद जाने लगे तब विशेष आग्रह के साथ आश्रम का पूर्णरूपेण उत्तर-दायित्व सौंपना चाहते थे और कहा कि आश्रम की देखभाल जैसे अभी कर रहे हो वैसे ही आगे भी करते रहना किन्तु मैंने अपने गिरते हुये स्वास्थ्य की ओर उनका ध्यान आकृष्ट कर कहा कि मेरे जैसे रुग्ण व्यक्ति के जीवन का क्या भरोसा है ? इतना दायित्व सम्भालने लायक मैं नहीं हूँ फिर भी वे जाते समय कह रहे थे मैं भी शायद ही लौटूँ, और वे अहमदाबाद चले गये।

उनके निर्वाण के लगभग पाँच दिन पूर्व यहाँ उनका पत्र श्री नवरतनजी पटवारी के पास आया जिसमें आदेशात्मक भाषा का उपयोग किया गया था। उसी समय मैं अहमदाबाद गया।

अहमदाबाद में मुनिजी के परम मित्र पं० सुखलालजी से भेंट हो गई। हाथ मलते हुए उन्होंने कहा कि मुनिजी अब चार-पाँच दिन के ही मेहमान है उन्हें लेंसकेंसर है। आप मिले तो उन्हें इसका जिक्र न करें।

मैं मुनिजी के पास पहुँच कर उनके चरण स्पर्श करने लगा। उनसे कुशल क्षेम पूछने पर उन्होंने कहा कि तुमने यहाँ आने की हिम्मत कैसे की ? मैंने कहा कि मैं उदयपुर रुक कर आ रहा हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपके समाचार सुनकर मैं रुक नहीं सका। आपके दर्शन करना चाहता था।

उसी समय मुनिजी ने कहा--मेरे सब काम हो गये किन्तु आश्रम का क्या होगा?

उस समय किसी सहयोगी के परामर्श के अभाव में मैंने सोचा जो होना है वह तो होगा। समय भी नहीं था। अन्तरात्मा से यही निकला कि अब तक जो जिम्मेदारी वहन करने से कतराता रहा था परन्तु अब मैं उत्तरदायित्व वहन करने हेतु अपनी सहमति प्रकट करता हूँ। आपके आशीर्वाद से आपकी सम्पदा को जब तक इस शरीर में प्राण है तब तक बिगड़ने नहीं दूँगा। उसी समय यह सुनकर मुनिश्री उत्साहित होकर बैठ गये और मुक्तकंठ से खूब हँसने लगे। उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाले भी इस दृश्य को देखकर विस्मित हो गये और कहने लगे कि इतने प्रसन्न होकर हँसते हुये तो मुनिजी को हमने कभी नहीं देखा। इस प्रसन्नता में सरस्वती बहिन से बोले—केसरपुरीजी के लिये आमरस बनाओ। इससे उनकी आत्मीयता प्रकट हो रही थी। यही मेरा उनके अन्तिम दर्शन व भेंट का प्रसंग है।

अहमदाबाद से चित्तौड़गढ आने पर श्री मांगीलाल सेवक से मालूम हुआ कि मुनिश्री इस भौतिक जगत् में नहीं रहे हैं। सूचना टेलीफोन से आयी है उनका पार्थिक शरीर सायंकाल ७ बजे चित्तौड़-गढ़ पहुँच रहा है।

उस समय श्री नवरतनजी पटवारी के पास जाकर मुनिजी की इच्छानुसार सारी व्यवस्था सम्पन्न की गई। उनके शव को उनकी इच्छानुसार श्री हरिभद्रसूरि स्मारक में रखा गया। जुलूस के रूप में उनकी अन्त्येष्टि सर्वदेवायतन जो उन्हीं के द्वारा बनवाया गया था, वहाँ की गयी।

प्रश्न — सर्वदेवायतन की पृष्ठ-भूमि क्या रही है?

उत्तर — सर्वदेवायतन मन्दिर के पीछे सर्वधर्म-समभाव की भावना रही है। सभी मानव एक ही स्थान पर आकर उपासना कर सकें इसी भाव से हनुमान्, गणेश, भैरव, देवियाँ-सीता, दुर्गा, बुद्ध, महावीर आदि सभी मूर्तियाँ उन्हीं के द्वारा स्थापित की गई हैं। सम्राट् अशोक कालीन भारतीय समभावना से उन्हें प्रेरणा मिली होगी। पुणें में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गांधीजी और के. एम. मुन्शी के साथ मुनिजी रहे थे, तभी से उनकी उदार वृत्ति रही है। सर्वधर्म-समभाव को भावना उनमें कूट-कूट कर भरी थी। वे संकीर्ण धार्मिक भावना से ऊपर उठे हुये थे।

मूर्तियों की विधिवत् प्रतिष्ठा उनके जीवनकाल में नहीं हो पायी थी यह कार्य बाद में मैंने सम्पन्न कराया है। हवन आदि के साथ यह कार्य किया गया।

प्रश्न— मुनिजी से आपका कोई वैचारिक मतभेद रहा है ?

उत्तर— मैं लगभग पच्चीस वर्ष तक उनके निकट सम्पर्क में रहा हूँ। मतभेद तब होता जब दृष्टिकोण में भिन्नता होती। मेरे ध्यान में ऐसा अवसर ही नहीं आया जिसमें उनसे कोई विरोध प्रकट करना पड़ा हो। साधारणतः मैं हर बात को आदेश मानता था। कभी कुछ कहना होता तो निवेदन ही करता था।

प्रश्न— उनके स्वभाव के बारे में आपका क्या मन्तव्य है ?

उत्तर— वे बहुत कोमल स्वभाव के थे। बहुत विवेकवान् महापुरुष थे। उन्हें छोटे-छोटे बच्चे बड़े प्रिय लगते थे। वे किसी का दुःख नहीं देख सकते थे। कई लोगों की कई प्रकार से सहायता भी करते रहते थे। बच्चों के लिये छोटे-छोटे विद्यालय खोलना उन्हें अच्छा लगता था। इसलिये भामाशाह भारती भवन में तथा चन्देरिया में बाल विद्यालय की स्थापना भी उन्होंने की। असहाय को सहायता करने में उन्हें अत्यधिक आनन्द होता था। मानवता की सेवा ही उनका परम लक्ष्य था। मानवता की सच्ची मूर्ति वे स्वयं थे।

इस प्रकार वे गांधीजी की भावना व विनोबाजी की प्रेरणा से अपना जीवन चलाना चाहते थे और जीवन पर्यन्त अपने लक्ष्य पर चलते रहे।

—❀—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री लाभचन्द यति के साथ कुछ क्षण

भेंट : रतनलाल कामड़

प्रश्न – मुनिजी से सर्वप्रथम आपका सम्पर्क किस प्रकार हुआ ?

उत्तर – (स्वर्गीय) मुनिजिनविजय जो से मेरा सर्वप्रथम सम्पर्क बानसेन के प्राचीन यतिजी के कारण हुआ। मुनिजी भी बाल्यकाल से यतिजी का शिष्यत्त्व ग्रहण कर चुके थे और आदरणीय श्री यतिजी महाराज इसी स्थान (बानसेन) पर विराजते थे। बानसेन का यतिजी का स्थान आज से लगभग 300 वर्ष पुराना है। इसकी प्राचीनता के कारण संयोगवश मैं भी यहाँ आ गया। इस प्रकार सर्वप्रथम 1922 ई. में मैं उनके सम्पर्क में आया।

प्रश्न – फिर यह सम्पर्क घनिष्ठता में कैसे बदल गया ?

उत्तर – बानसेन को शिष्य परम्परा में मेरे आ जाने से मुनि जिनविजयजी से सम्पर्कसूत्रता मे प्रगाढ़ता बनी। हालांकि मुनिजी एक राष्ट्रीय सन्त, विचारक, विद्यानुरागी महात्मा थे, साथ ही पूर्व संस्कारों के कारण मैं, उन्हें अपने दादागुरु के पावन स्थान पर मानता था तथा वे भी मुझ पर ऐसी ही उत्तम भावना रखते थे। यह उनकी अनूठी उदारता का प्रतीक था। मुनिजो ने सर्वप्रथम चित्तौड़ प्रवास की इच्छा के साथ ही मुझे उन व्यवस्थाओं की जिम्मेदारी सौंपी थी जिसके तहत 1948 ई० से 50 ई० के बाद के 4-5 वर्षों में चन्देरिया में उनके आश्रम को स्थापना हुई। इसी काल में मुनिजी का मुझ पर अटूट विश्वास बना और मेरी उनके प्रति आस्था और दृढ़ होती चली गयी।

प्रश्न— स्व. मुनिजी के व्यक्तित्व और स्वभाव के बारे में कुछ कहना चाहेंगे ?

उत्तर— आदरणोय मुनिजी महाराज का स्वभाव, व्यक्तित्व व कृतित्व विविध गुणों से अलंकृत व गौरव से मण्डित था।

मुनिजी का सम्पूर्ण जोवन 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पावन सावजनिक भावना से सम्बन्धित था। जो भी उनके सम्पर्क में आता, उन पर पूर्ण विश्वास करके उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वांङ्गीण विकास की इच्छा रखते थे, यही नहीं उसके विकास के लिए तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग भी करते थे। मुनिजी के दयालु व परोपकारी स्वभाव के कारण बहुत से व्यक्ति उनके सम्पर्क में आये और आज भी उनके लोकरञ्जनकारी गुणी-स्वभाव का मुक्त-कण्ठ से बखान करते नहीं अघाते हैं। मैं भी उनके प्रशंसकों में से एक हूँ। उनके स्वभाव में सहज प्रेमानुभूति की प्रधानता अधिक थी जिसके कारण स्वार्थी व्यक्ति अपने स्वार्थ की पूर्ति करके उन्हीं के विरोधी हो जाते थे। उनके जीवन में ऐसे कई उदाहरण प्रमाण के तौर पर उद्धृत किए जा सकते हैं।

मुनिजी का व्यक्तित्व कई दैविक गुणों से सुसम्पन्न, उदारता व परोपकार के मूल्यों से सम्बन्धित था। उनका व्यक्तित्व वस्तुतः एक महान् प्रेरणास्रोत था जिस पर कुछ भी कहना मेरे जैसे व्यक्ति की सामर्थ्य नहीं है।

उनका समस्त कृतित्व विविध गुणों व बहुमुखी प्रतिभा का धनी कहा जा सकता है। उन्होंने अपनी पावन अभिव्यक्ति हेतु दो ही माध्यम बनाये—उन्होंने 'गीतड़ा या भीतड़ा' अर्थात् साहित्य सर्जन या ऐतिहासिक स्मारकों के निर्माण में तन मन-धन से सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया। साथ ही 'प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान', 'भामाशाह भारती भवन', 'सर्वोदय साधना आश्रम' व 'सर्वदेवायतन मन्दिर' जैसी संस्थाओं का गठन व संस्थापना की जो कि उनके जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ कही जा सकती हैं।

प्रश्न— उनके सार्वजनीन हित-साधन के कार्यों में आपने किस प्रकार सहयोग किया ?

उत्तर— मेरे खुद की दृष्टि में मेवाड़ वालों के व्यवहार में सहकारिता की भावना की कमी होने व संकीर्ण विचारधारा के कारण सार्वजनिक कार्यों के पनपने की संभावना कम ही होती थी जबकि मुनिजी के सभी कार्य या यों कहें कि उनका सम्पूर्ण जीवन ही सार्वजनिक हितों से सम्बन्धित था। तत्कालीन वातावरण, परिस्थितियों में मुझे उनके सार्वजनिक कार्यों में सफलता की उम्मीद नहीं थी, किन्तु फिर भी मैं उनके विचारों को पूर्ण सम्मान प्रदानकर तदनुसार आचरण करने लगा। लेकिन अन्ततोगत्वा उन्हीं के जीवन काल में मैं असम्भव ही रहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचारक सम्मेलन

सभापति श्रीमुनि जिनविजयजी

का

भाषण

ता० २५-२-५०

राष्ट्रभाषा के प्रेमी और प्रचारक बन्धुगण,

गुजराती भाषाभाषी इस गुर्जर-सुराष्ट्र के संस्कारोन्मुख एवं अहिंसाप्रिय प्रान्त में राष्ट्रभाषा को प्रिय बनाकर उसके प्रचार में अहर्निश उद्योगी बने रहने वाले बन्धुवर श्री जेठालालजी जोशी का पिछले महीने में मुझे एक सन्देशा मिला कि फरवरी महीने में यहाँ पर एक राष्ट्रभाषा प्रचार विषयक सम्मेलन किया जा रहा है जिसके अध्यक्ष स्थान पर मैं बैठूँ ऐसी कुछ मित्रों की इच्छा है। मैं उसी दिन दिल्ली जा रहा था। मैंने उस समय कुछ विशेष सोच-विचार किये बिना ही श्री जोशीजी के आदेश को मान लिया। मैंने समझा था कि यह कोई स्थानिक सम्मेलन होगा और घण्टे दो घण्टे का काम होगा। परन्तु पीछे से जब इस विषय की कुछ विशेष जानकारी हुई, तो पता लगा कि यह तो एक अखिल भारतीय प्रचारक सम्मेलन है, जिसका प्रथम अधिवेशन गत वर्ष वर्धा में, विगत वर्ष के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान अध्यक्ष और हिन्दी साहित्य जगत् के महारथी एवं हिन्दी की रक्षा सेना के एक अग्रणी सेनापति सेठ श्री गोविन्ददासजी के अधिपतित्व में किया गया था और जिसका ध्येय और कार्य राष्ट्रभाषा के देशव्यापी प्रचार और प्रसार करने का एवं राष्ट्रभाषा की भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याओं का पारिणामिक विचार-विनिमय करने का है। इस सम्मेलन के इतने बड़े ध्येयलक्षी होने को—और इसमें न केवल स्थानिक प्रेमियों ही को निमन्त्रित किया जा रहा है, बल्कि अखिल भारत के कर्मठ राष्ट्रभाषा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रचारकों को निमन्त्रण दिया जा रहा है और उनके स्वागत का प्रबन्ध किया जा रहा है, इस प्रकार के बृहद् आयोजन की --बात सुन कर, मैं जरा संकोच में पड़ गया। इस स्थान के लिये मेरी वैसी कोई योग्यता मैं नहीं अनुभूत करता।

मैंने राष्ट्रभाषा की न कोई गणना योग्य सेवा ही की है, न कोई उसका प्रचार ही करने का कुछ प्रयत्न किया है। १० वर्ष के पहले, राजस्थान की गौरवशालिनी राजधानी उदयपुर में, प्रथम ही प्रथम राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन का एक शानदार अधिवेशन किया गया और उसके अध्यक्ष स्थान पर मेरे मित्रों ने मेरी बिना जानकारी ही में जाकर बैठने को मुझे बाधित किया और तभी मुझे इसकी कल्पना हुई कि हिन्दी भाषा के विशाल क्षेत्र में, मेरा भी कहीं कुछ स्थान है ऐसा मेरे कोई कोई परिचित बन्धुजन मानना-मनवाना चाहते हैं। मैंने अपने साहित्यिक सेवाकार्य की दृष्टि से हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं को समान रूप से अपनाया है क्योंकि मेरी मातृभाषा न हिन्दी है और न गुजराती है, परन्तु वह दोनों की बीच की है।--एक निर्नामक और निराकार स्वरूप है--अर्थात् राजस्थानी है जिसका न कहीं लिखित रूप में व्यवहार है न शिक्षाक्रम में स्थान है। मेरा दावा है कि आधुनिक हिन्दी और आधुनिक गुजराती की सगी माँ नहीं तो धाय माँ तो जरुर वह राजस्थानी ही है। राजस्थानी ही के अचलों का दुग्धपान करके हिन्दी और गुजराती के बाल्यजीव का पोषण और संवर्धन हुआ है। लेकिन मेरी वह मातृभाषा--राजस्थानी आज नाम शेष हो रही है। नूतन भारत के राष्ट्रविधायकों द्वारा वह मृत मान ली गई है और अभिनव संविधान में से उसका नामोच्छेद तक कर दिया गया है। अलबत्ता उसके बोलने वाले प्राणी--जिनकी संख्या ढाई करोड़ से कम नहीं होगी--अभी तक जिन्दा है। ऐसी राजस्थानी मेरी मातृभाषा है। लेकिन क्योंकि साहित्यिक जगत् में उसका कहीं कोई स्थान नहीं है ऐसा सोच समझ कर मैं अपने वतन उत्तर-दक्षिण दोनों और बोलती-चलती जीती-जागती इन हिन्दी गुजराती भाषा देवियों को, अपने अन्तः सम्मुख वाङ्मयोपासक पूजापीठ पर स्थापित कर, इनकी पूजा उपासना करने का कार्य करता रहता हूँ। इनमें से गुजराती को विशेष लक्ष्य कर मैंने उसके प्राचीन साहित्य और इतिहास का कुछ अन्वेषण, संशोधन आदि कार्य किया है, और इसी कारण संविधान सभा के सामान्य अध्यक्ष द्वारा गत वर्ष के अन्तिम महीनों में बुलाई गई भाषा विशेषज्ञों की विशिष्ट परिषद् में (लेंग्वेज एक्सपर्टस् कॉन्फरन्स में) गुजराती भाषा के एक प्रतिनिधि के रूप में मुझे भी आमन्त्रित किया गया था।

लेकिन मेरे साहित्यिक जीवन का सर्वप्रथम प्रारम्भ हिन्दी ही के लेख द्वारा हुआ है। मेरा सर्वप्रथम लेख हिन्दी में लिखा गया और वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयाग की उस समय की सर्वप्रधान हिन्दी मासिक पत्रिका सरस्वती में प्रगट हुआ। मैं उसी दिन से हृदय से हिन्दी का हितैषी बनकर इसकी उन्नति और प्रगति का अभिलाषुक बना हुआ हूँ।

बस यही मेरी हिन्दी के सेवक बनने वालों की नामावलि में अपना भी नाम दर्ज करा देने की योग्यता आप समझें। इतनी-सी क्षुद्र योग्यता के कारण ही मुझे आज यहाँ पर, इस विशिष्ट कार्य सम्पादक 'अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन' के मंचपीठ के अग्र स्थान में आ कर बैठने की जो आज्ञा की गई है मैं उसके लिये आप सब बन्धुओं के प्रति अपना हार्दिक उपकृतभाव प्रगट करता हूँ, और अपना कुछ प्रासंगिक वक्तव्य प्रारम्भ करने की अनुमति लेता हूँ।

पश्चिम भारत के जिस प्रमुख राजनगर में आज हम इस अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन के रूप में एकत्रित हो रहे हैं, वह स्थान हमारी राष्ट्रभारतो के जीवन-विकास के इतिहास में अद्वितीय तीर्थभूत है, यह तो आप सब कोई जानते ही होंगे।

यह वह तीर्थस्थान है, जहाँ पर अपना सर्वप्रथम सर्वोदयकारी पुनीत सत्याग्रह-आश्रम स्थापित कर, हमारे उस दिवंगत महान् राष्ट्रपिता ने, अनेक-भाषा-विभक्त अतएव भिन्न-भाव-परिपुष्ट इस सुविशाल भारत राष्ट्र को ऐक्य की अद्वितीय भावनाग्रन्थि से ग्रथित कर, इसको अभिनव अभ्युदय की ओर अग्रसर होने के लिये एकमात्र उपायभूत, उत्तरीय हिन्द की हिन्दी भाषा को, अखिल भारत की राष्ट्रभाषा के महाराज्ञी पद पर प्रतिष्ठित करने का ईश्वरीय आदेश प्राप्त किया था।

यहीं के इस जगद्विख्यात आश्रम में बैठ कर उस विराट् राष्ट्र-पुरुष ने, हमारी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का संकल्प किया था और उसके लिये उन्होंने अपना अनुपम उपाय-दर्शन और अखण्ड आन्दोलन उपस्थित किया था। हिन्दी की राष्ट्रभाषा के रूप में, जो अभूतपूर्व महती प्रतिष्ठा, आज हमारे इस सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक भारतसंघ रूपी महान् राष्ट्र ने उद्घोषित की है, उसका सर्व श्रेय उसी महामना महामानव के उक्त शुभ संकल्प को है, जो उनको इसी स्थान के उक्त तपोवन में स्फुरित हुआ था, और फिर वह भारत के चतुर्दिक् कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ था।

अतएव हिन्दी के—नूतन भारत की विभूति-वर्धिनी राष्ट्रभारती के—विकास के इतिहास में इस स्थान का निर्देश सदा अद्वितीय तीर्थ के रूप में उल्लिखित होना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारे पुरातन भरतखण्ड की प्राचीन राष्ट्रभारती, देववाणी संस्कृत भाषा की, काश्मीर, काशी, कांची, कान्यकुब्ज, उज्जियिनी, धारा, चित्तौड़, अजमेर, प्रतिष्ठान आदि जिन-जिन विशिष्ट स्थानों में विशिष्ट वाङ्मयोपासकों ने बैठकर, विशेष प्रकार की साधना-उपासना की, वहाँ वहाँ वाङ्माता सरस्वती-भारतीदेवी के विशिष्ट आसनपीठ स्थापित हुये और वे आज तक सारस्वत तीर्थधाम के रूप में पूजित रहे।

इसी तरह इस नूतन भारत की 'अभिनव' राष्ट्रभारती आर्यवाणी हिन्दी के लिये, कलकत्ता, काशी, प्रयाग, आगरा, अजमेर, अहमदाबाद, इन्दौर, नागपुर, वर्धा, मद्रास आदि जिन जिन स्थानों में जो जो विशिष्ट प्रसंग घटित हुये, उनकी स्मृति के सूचक और भावप्रेरक विशिष्ट प्रकार के तीर्थधाम, हमें निर्मित करने चाहिये और उनके माहात्म्य बनाकर उनको पूजनीय-उपासनीय सारस्वत पीठ मानने-मनाने चाहिये।

इस पुनीत विचार से प्रेरित होकर सर्वप्रथम मैं अपनी राष्ट्रभारती हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ तीर्थस्थान साबरमती तीरस्थ सत्याग्रह आश्रम को, आप सब वाङ्मय यात्रियों के स्मृतिपथ में लाना चाहता हूँ।

हमारे लिये यहाँ पर एक ऐसा ही दूसरा भी तीर्थस्थान है जिसका भी नाम-स्मरण मैं आपको कराना चाहूँगा। वह है यहाँ का सर्वादिम राष्ट्रीय शिक्षाधाम 'गुजरात विद्यापीठ'। हमारे उस राष्ट्र-विधाता ने, आज से तीस वर्ष पहले, जब राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के लिये, सर्वप्रथम अँग्रेजी शासन के विरुद्ध असहकारात्मक युद्ध की उद्घोषणा की और तदर्थ प्रचण्ड आन्दोलन प्रारम्भ किया, तब राष्ट्रीय शिक्षा के प्राणवान् प्रसार निमित्त, सबसे पहले उन्होंने, इस राष्ट्रीय विद्यापीठ को प्राण-प्रतिष्ठा की और इसमें हिन्दी भाषा को वह सर्वप्रधान स्थान दिया, जो अंग्रेजों के स्थापित किये हुये अन्यान्य विद्यापीठों में (युनिवर्सिटियों) अंग्रेजी को मिला हुआ था। मैं आज इस तरह आपके इस सम्मेलन के अध्यक्ष स्थान पर बैठने की जो कोई क्षुद्र योग्यता रखने लायक समझा गया हूँ, तो उसका एक कारण यह भी है कि मुझे इस आदिम राष्ट्रीय विद्यापीठ के सर्वाद्य सेवकों में परिगणित होने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय शिक्षा के विकास और विस्तार के लिये हिन्दी भाषा का योग्य अध्ययन प्रत्येक भारतीय को परम आवश्यक है। इसके प्रबोधात्मक और प्रेरणात्मक अनेक शिक्षापाठ, इस गुजरात विद्यापीठ के सर्वोच्च कुलपति के आसन पर बैठकर, उस महान् शिक्षा-गुरु ने स्वयं हम सबको पढ़ाये और समझाये थे। इसलिये मेरी दृष्टि में यहाँ का यह राष्ट्रीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्यापीठ भी हमारे लिये हिन्दी-भारती का एक दूसरा तीर्थधाम है।

ऐसे परम पुनीत एवं तीर्थभूत स्थानों से सुप्रतिष्ठ इस नगर में भारत के विभिन्न भाषा-भाषी विविध प्रदेशों के राष्ट्रभाषा-प्रचारक और राष्ट्रभाषा-प्रेमी हम सब बन्धुजन, जो आज यहाँ पर उपस्थित हो रहे हैं, वह मुझे एक किसी विशिष्ट संकेत का अवबोधक भासित हो रहा है।

गत वर्ष वर्धा में, जो इस सम्मेलन का सर्वप्रथम अधिवेशन हुआ वह स्थानानुरूप ही था। क्योंकि पिछले २० वर्षों से वर्धा ही तो हमारी भावना का और प्रेरणा का प्रमुख केन्द्र-स्थान रहा है। वहीं पर पूज्य बापू के नेतृत्व में, उनकी ही कुटीर में, इस कार्य को प्रारम्भ करने वाली 'समिति' की सर्वप्रथम वैधानिक बैठक हुई और फिर धीरे-धीरे इसका कार्यालय वहाँ पर स्थापित हुआ। आज चौदह वर्षों से यह कार्यालय किस प्रकार अपनी दिन-प्रतिदिन प्रगति करता रहा है इसका परिचय हमें इस कार्यालय द्वारा प्रकाशित विवरण-पत्रिकाओं से हो रहा है। वर्धा के बाद इस सम्मेलन का यह दूसरा अधिवेशन, जो आज गुजरात प्रान्त के इस राजनगर में हो रहा है, उसका कारण भी आनुषंगिक ही है। प्रचार की दृष्टि से वर्धा के बाद गुजरात के केन्द्र को ही द्वितीय स्थान प्राप्त हो रहा है। क्योंकि राष्ट्र-भाषा के परीक्षार्थी छात्रगण की संख्या वर्तमान में सबसे अधिक परिमाण में इसी प्रान्त में उपस्थित हो रही है।

जैसा कि मैंने कहा, जिस राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के तत्वावधान में इस सम्मेलन का आयोजन हो रहा है, उस समिति के जन्मदाता स्वयं हमारे परम पूजनीय दिवंगत राष्ट्रपिता महात्माजी थे। और प्रारम्भ से लेकर अनेक वर्षों तक, इसके अध्यक्ष पद का भार देश के इन्हीं सर्वोदया-भिलाषी और सर्व-जन-प्रिय सर्वश्री डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने वहन किया है, जो आज हमारे सर्वप्रभुत्वसम्पन्न जनतन्त्रात्मक भारत महाराष्ट्र के सर्वसत्ता-समधिष्ठित 'राष्ट्रपति' हैं।

समिति के प्रारम्भ के बारह वर्षीय कार्य विवरण से ज्ञात होता है कि इसके संगठन और विकास में जैसे अनेक अनुकूल प्रसंग घटित हुये वैसे कुछ प्रतिकूल अवसर भी उपस्थित हुये।

देश की साम्प्रदायिक संघर्षमूलक 'राजकीय' परिस्थिति ने, हिन्दू-मुसलमान जाति के परस्पर सत्ता-संविभाजन की दृष्टि से हमारी राष्ट्रभाषा के नाम और स्वरूप के विषय में भी कुछ काल तक एक विषम समस्या उपस्थित कर दी थी। महात्माजी ने अपने देश-नेतृत्व के आरम्भ काल में और फिर पीछे भी अनेक वर्षों तक, जिस देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाषा को राष्ट्रभाषा के पद पर अभिषिक्त करने का, उक्त प्रकार से जो शुभ-संकल्प किया था, उसमें भारत की भौगोलिक अखण्डता और राष्ट्रीय एकता के पवित्रतम दृष्टिकोण को लेकर, इसकी लिपि और शैली के स्वरूप के विषय में देश के समक्ष कुछ नूतन विचार उपस्थित किये। हमारे मुसलमान बिरादरों का एक बहुत बड़ा गिरोह भाषा के सुप्रचलित 'हिन्दी' नाम को पसन्द नहीं करना चाहता था और 'देवनागरी' लिपि को भी प्रेम से पढ़ना नहीं चाहता था। इसलिये राष्ट्रभाषा का नूतन नाम 'हिन्दुस्तानी' रखा जाय और उसकी शैली भी हिन्दू-मुसलमान को समान रूप से आदरणीय और स्वीकरणीय मालूम दे वैसी हिन्दी-उर्दू मिश्रित एक 'नयी बोली' के रूप में प्रचलित की जाय। यह 'नयी बोली' समान रूप से देवनागरी और फारसी दोनों लिपि में लिखी जाय, और प्रत्येक भारतवासी की ये दोनों लिपियाँ अ-विकल्प रूप से पढ़ाई-सिखाई जायँ।

महात्माजी का वह दृष्टिकोण किसी अंश में बहुत उदात्त और आदरणीय था, परन्तु भारत के बहु-जनमत को वह अरुचिकर अतएव अव्यवहरणीय मालूम दिया। महात्माजी के भारत में आगमन के पूर्व ही, हिन्दी को देशव्यापी एक राष्ट्रभाषा बनाने का महद्मनोरथ करने वाले एवं हिन्दी के साहित्य की सर्वांगीण उन्नति और प्रगति के कार्य में सतत प्रवृत्त रहनेवाले, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के नये-पुराने सब सूत्रधार तथा हिन्दी भाषा का और तद्द्वारा अखिल भारत का अभ्युदय चाहनेवाले बंगाली, बिहारी, पंजाबी, राजस्थानी, सिन्धी, गुजराती, महाराष्ट्री, काश्मीरी, कर्णाटकी और मद्रासी आदि अहिन्दी भाषी प्रान्तों के उत्साही हिन्दी उपासक, जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन को अपना मार्गदर्शक ध्रुव लक्ष्य मानकर, उसके ध्येय की ओर गमन करने में उत्सुक बने रहते थे वैसे लेखक एवं शिक्षक-समूह के बहुत बड़े विभाग को महात्माजी का यह महत् दृष्टिकोण सर्वथैव मनःपूत और हृदयंगम न लगा। परन्तु महात्माजी के अद्वितीय व्यक्तित्व और लोकोत्तर कर्तव्यनिष्ठा के प्रभाव में प्रवाहित होकर राष्ट्र के प्रायः प्रमुख-प्रमुख नेताओं ने—फिर चाहे किसी ने कुछ उत्साह और किसी ने कुछ अनुत्साह के साथ भी—उनके विचारों का अनुमोदन और अनुसरण करना स्वीकार किया।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इसके अधिकार नीचे इस राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का संगठन किया गया था और जिस सम्मेलन के आदेशानुसार ही यह समिति अपनी कार्यप्रणाली निश्चित करती रहती थी, उसका तो मुद्रालेख यह था कि 'भारत की राष्ट्रभाषा देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृतनिष्ठ हिन्दी हो' और वही होनी चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्मेलन के सन्निष्ठ सूत्रधार और हिन्दी-हिन्द के परम हितैषी राजर्षि टंडनजी ने महात्माजी के विचार का सविनय और सानुरोध पर बहुत स्पष्ट विरोध किया। परिणाम में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की, जिसकी वैधानिक स्थापना स्वयं महात्माजी ने वर्धा के अपने ही कुटीर में बैठ कर की थी, उसके स्थान पर उन्होंने 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' नामक दूसरी नयी संस्था की स्थापना की। और अन्ततोगत्वा उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन से भी अपना उत्तरदायी-सूचक सम्बन्ध विच्छेद कर ली।

हिन्दी और हिन्दुस्तानी के बीच में इस प्रकार अब पक्ष-विपक्ष रूप भेदभाव की परिस्थिति उत्पन्न हो जाने से भारत की राष्ट्रभाषा कौन और किस स्वरूप की हो, इसके विषय में नेताओं और उपनेताओं के बीच भी अनिच्छनीय बुद्धिभेद उत्पन्न होकर सारा ही प्रश्न एक प्रकार की दुःखद अनवस्थित दशा का भोग हो रहा।

सन् १९४२ से १९४९ तक के ७-७½ साल राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के लिये कुछ-कुछ शनैश्चर की पनोती बैठने जैसे गये। इस समिति को महात्माजी की नूतन एवं प्रिय सन्तान 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' की प्रतिस्पर्धा ने कम-अधिक रूप में मानसिक कष्टकर दशा का अनिष्ट अनुभव कराया। स्वयं अपना कोई अपराध न समझते हुये इसने अपने महान् जनक के आश्रय-रूप वात्सल्य भाव से वंचित रहने का कठोर दण्ड प्राप्त किया। इसके पक्ष में सुखदायक आश्वासन इतना ही रहा कि इसने अपने पूजनीय पिता के प्रति किसी प्रकार का अविनय भाव कभी नहीं प्रकट किया। 'धीरज के फल मीठे होते हैं' इस कहावत को चरितार्थ करने की कामना से, इस समिति के समर्थ संचालक भदन्त आनन्द कौशल्यायन ने अपने परम उपास्य देव भगवान् बुद्ध के आदेश का अनुसरण करते हुये, बहुत कुछ धीरज के साथ अपना ध्येय कार्य चालू रक्खा। यद्यपि यह समिति अपने पूज्य पिता की एक उपक्षणीया संतान सी हो गयी थी, परन्तु भारतीय जनता का बहु-भाग, इसका यथेष्ट पक्षपाती था। हिन्दुस्तानी प्रचार सभा अपने महान् पिता की प्रियंकरा पुत्री होने पर भी, वह उतनी जनप्रिय नहीं बन सकी, जितनी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति बन रही।

इसी बीच में देश के भाग्य ने महान् पलटा खाया। जिनके संतोष के खातिर हिन्दी नाम धारिणी भाषा को अवमान्यता देकर 'हिन्दुस्तानी' को आदरणीया घोषित की गयी, वे मुसलमान बिरादर तो हिन्दुस्तान नाम को भी नापाक पुकार कर, और जिस 'सिन्दुस्तान' संस्कृत शब्द का यह 'हिन्दुस्तान' फारसी रूपान्तर बना और जिसके कारण सारा ही भारत अपना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सनातन नाम खोकर 'हिन्दुस्तान' कहलाने लगा—उसको छिन्न-भिन्न करके, उसके स्थान पर अपना एक स्वतन्त्र एवं पृथक् राष्ट्र बनाकर नूतन 'पाकिस्तान' की भयावह सृष्टि करने को समुत्थित हुये। परिणाम में भारतवर्ष के भूतकाल में कभी नहीं हुये वैसे भयानक हत्याकाण्ड जहाँ-वहाँ होने लगे। सारे ही देश में जगह-जगह भयानक अग्निज्वालायें प्रज्वलित होने लगीं। इस भ्रातृ-कलह-जन्य घोर नृशंसता के कारण, हमारे उस परम-कारुणिक राष्ट्रपिता का वज्रसा हृदय भी हतोत्साह हो गया और भारत की भौगोलिक अखण्डता और राष्ट्रीय एकता का उनका वह स्वर्गीय स्वप्न टूट गया। ऐसी दारुण दशा में अत्यन्त उद्विग्न और दुःखित मन से उन्होंने, देश का विभाजन करके इस महामारी को किसी तरह शान्त करने की अपने अनुगामी बन्धुओं को शोकाकुलित चित्त से सम्मति दी।

हमारे परकीय शासक महाधूर्त अँग्रेज, जो द्वितीय महायुद्ध के कारण, अत्यन्त क्षीणबल होकर, अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये चिरंतन साम्राज्य लोभ का संवरण करके, भारत से सम्मान पूर्वक विदाय हो जाने का और साथ में अपनी कुटिल नीति द्वारा भारत को भी निःसत्त्व और निरंकुश दशा में छोड़ जाने का, निर्णय कर चुके थे, वे प्राकृतिक रूप से एक अखण्ड भूखण्ड समान और सांस्कृतिक दृष्टि से सनातन काल से बने हुये एक एकम रूप इस भारतवर्ष को परस्पर दो भिन्न संस्कृति के अनुयायियों में खण्ड-खण्ड करके बाँट देने को उत्सुक हो उठे। हमारे देश के नेताओं की कुछ शुभनिष्ठा, कुछ भलमनसाई, कुछ अधीरता, कुछ अनुचित उदारता और कुछ कुटिल नीति की अनभिज्ञता के कारण, हमें इस देश-विभाजन में बहुत कुछ खोना पड़ा है, और बड़ी हानियाँ उठानी पड़ी हैं। इसका भविष्य क्या होगा, इसकी कोई स्पष्ट कल्पना आज भी हमें नहीं हो रही है।

खैर, यह तो एक दूसरी बात है, जिसका विचार हमें प्रस्तुत नहीं है। मैं तो बात कह रहा हूँ हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी के संकटकाल की। इस प्रकार देश का विभाजन हो जाने के कारण और हिन्दुस्तानी के कट्टर हिमायती 'हिन्दुस्तान' नाम ही को नापाक समझकर, इसे छोड़कर अपने नवीन दोस्ताँ पाकिस्तान चले जाने के कारण बिचारी हिन्दुस्तानी निर्बलपक्ष और उत्साहहीन बन गयी। इतने ही में दुर्भाग्य से इसको पितृवियोग का भी अनपेक्षित और अप्रतिकारक आघात सहन करने का दुःखद प्रसंग उपस्थित हो गया, जिससे यह और भी अधिक निस्तेज हो गई।

यद्यपि हिन्दुस्तानी के जन्मग्रह वैसे कोई महत्त्व के नहीं दिखाई दिये थे, तब भी उस महान् राष्ट्रपिता की प्रिय एवं विशिष्ट सम्मान्य संतान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होने के कारण, इसके गौरव-स्थापन के पक्ष में सुसमर्थ और सर्वसम्मान्य नेता-उपनेता एक विशिष्ट वर्ग क्रियाशील बराबर बना रहा। आखिर में संविधान सभा में जब राष्ट्रभाषा के निर्णय का प्रश्न उपस्थित हुआ, तब कुछ दिन तक तो, हिन्दी-हिन्दुस्तानी के पक्ष-विपक्ष के वाद-विवाद का एक तुमुल युद्ध मचा रहा। कुछ समय तक तो ऐसी भी कुशंका होने लगी कि कहीं यह भाषा-समस्या हमारे राष्ट्र के पूर्ण स्वातन्त्र्य को ही खतरे में न डाल दे। परन्तु देश के करोड़ों निर्दोष और निष्पाप मानवों के सद्भाग्य ने इस खतरे को आखिर खत्म कर दिया। संविधान सभा के राष्ट्रहितैषी कुशल कर्णधारों ने, बड़ी कुशलता के साथ, राष्ट्रभाषा की परम आशास्पद जोवननौका को इस खतरे से सर्वथा बचा लिया और इसे किनारे पहुँचा दिया।

इन कर्णधारों में हमारे विशेष अभिनन्दन के पात्र हैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के एक भूतपूर्व सभापति तथा जिस गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मेहमान बनकर, आज हम सब बन्धुजन यहाँ एकत्रित हुये हैं, उस समिति के अध्यक्ष सर्वश्री कन्हैयालाल माणेकलाल मुन्शी। मुन्शीजी ने संविधान की रचना में बड़ा नैपुण्य दिखला कर तथा 'मुन्शी आयंगर फोर्म्युला' के रूप में राष्ट्रभाषा के तीव्र वाद-विवाद को मृदु बना कर, इस विषम समस्या को किसी न किसी तरह हल करने का सर्वाधिक प्रयत्न किया है।

इस प्रकार अनेक दिन तक, अनेक तरह के आशा-निराशा के विसंवादी सूरों का आरोह-अवरोह होते-होते, अन्त में १४ सितम्बर, सन् १९४९ का वह सुप्रभात उदित हुआ, जिसमें संविधान परिषद के बहुसंख्यक सभासदों को, परमात्मा ने वह मंगलकारिणी सन्मति दी, जिससे उन्होंने देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी नाम धारिणी हमारी भारती भगवती को भारतीय संघ की राजभाषा होने का निश्चयात्मक निर्णय किया।

हिन्दी भाषा के इतिहास में यह दिन सबसे अधिक महत्त्व का और मंगलकारक है। हम हिन्दी प्रेमियों को-राष्ट्रभाषा हितैषियों को-चाहिये कि इस दिन को हम सदा और सर्वत्र राष्ट्रभारती-महापर्व के रूप में, बड़े आयोजन के साथ मानें-मनावें। जिस तरह १५ अगस्त और २६ जनवरी हमारे राष्ट्र-स्वातंत्र्य के पर्व दिन बने हैं, उसी तरह १४ सितम्बर भी राष्ट्रभारती का पर्व-उत्सव दिन बनना चाहिये। वास्तव में यदि सोचा जाय तो हमारे राष्ट्र की वास्तविक एकता और उन्नति का सूचक तो सबसे बड़ा यही दिन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत के इतिहास में ऐसी ऐक्यसूचक घटना कभी नहीं घटी। हमारे इस सुविशाल वृद्ध भूखण्ड को, भूतकाल में कुछ ऐसे अवसर अवश्य देखने को मिले हैं, जिनमें न्यूनाधिक अंश में, राजकीय एक-छत्रता की अनुभूति का उल्लास प्रकट हुआ है। इसी तरह कुछ विशिष्ट प्रकार के सुवर्णयुगोन सुराज्य के समय में सांस्कृतिक एकता के अनुभव का आह्लाद भी इस देश ने अनुभूत किया है। परन्तु भाषा-विषयक एकाधिपत्य की उद्घोषणा का सुअवसर तो इसके इतिहास में यह पहली ही दफा उपस्थित हुआ है। यदि यह उद्घोषणा सफल हुई—और इसके सफल होने का एकमात्र आधार हमारी अपनी निष्ठा और साधना ही है—तो हमारा यह देश सस्कृति की दृष्टि से, सम्पत्ति की दृष्टि से, सामर्थ्य की दृष्टि से और सौख्य की दृष्टि से संसार के सब देशों में बड़ी शीघ्रता के साथ श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है।

जिस १४ सितम्बर, १९४९ के दिन, हमने निश्चयपूर्वक निर्णय कर लिया कि हमारे राष्ट्र की राजभाषा हिन्दी होगी और उसकी लिपि देवनागरी होगी– उसी दिन से हिन्दी-हिन्दुस्तानी और फारसी-देवनागरी का वाद-विवाद समाप्त हो गया समझना चाहिये। उसके बाद, २५ दिसम्बर १९४९ को हमारी संविधान सभा ने हमारे राष्ट्र के नूतन संविधान को अन्तिम रूप में स्वीकृत किया और उसके साथ संविधान परिषद् का कार्य परिपूर्ण हुआ। २६ जनवरी, १९५० को हमारे राष्ट्र ने सम्पूर्ण स्वातंत्र्य प्राप्त कर संविधान परिषद् द्वारा स्वीकृत नूतन सविधान के कार्यान्वित होने की उद्घोषणा की। राष्ट्रपति के आदेशानुसार नूतन संविधान का सर्वप्रथम हिन्दो भाषानुवाद किया गया और उसको राष्ट्र को राजभाषा के सर्वादिम लेख्य (डॉक्युमेन्ट) के रूप में मान्यता देकर राष्ट्रपति ने अपने हस्ताक्षरों से अंकित किया।

यह तो हुआ हिन्दी को किस प्रकार आज अपने राष्ट्र की राजभाषा होने की मान्यता मिलो इसका कुछ पूर्व इतिहास। किसी भी विचारणीय वस्तु के पूर्व इतिहास का निर्देश किये बिना उसके वर्तमान और भावि स्वरूप का हम ठोक-ठीक विचार नहीं कर सकते। इसलिये इसका कुछ निर्देश करना प्रसंग प्राप्त हो जाता है।

अब इसके आगे हमें जो विचारणीय वस्तु है वह यह है कि आज हमारी क्या वस्तु-स्थिति है? हम अभी कहाँ पर पहुँचे हैं और हमें अभी कहाँ जाना है। हमने अपने भूतकालीन प्रयत्न से क्या प्राप्त किया और अब आगे क्या प्राप्त करना है? हमारी कार्य सिद्धि कहाँ तक हुई और अभी कितनी बाकी है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन प्रश्नों का विचार करने पर हमारे सम्मुख आज की परिस्थिति का चित्र इस प्रकार उपस्थित होता है—

हमारे हिन्दी-हितैषी बन्धुओं और नेताओं के प्रयत्न से हिन्दी का राष्ट्र की राज्यभाषा बनने का अधिकार मान लिया गया है, लेकिन इस अधिकार को अमल में लाने के निमित्त कुछ कालावधि बतलाई गई है और साथ में कुछ विशिष्ट प्रकार की मर्यादायें भी लगाई गई हैं, जो भविष्य में हमारी ध्येयसिद्धि में यथेष्ट विघ्न भी उपस्थित कर सकती हैं। हमारे इस संविधान के मूल निर्माता ऐसे विद्वान् हैं जिनमें से न किसी की हिन्दी मातृभाषा है और न किसी की हिन्दी लिखने-बोलने में दिलचस्पी ही है। ये सबके सब अँग्रेजी के भक्त और अंग्रेजी से परिपुष्ट अतएव उसके परिपोषक हैं। बात भी कुछ ठीक ही कहनी चाहिये। क्योंकि इनको जो कुछ कीर्ति, सम्पत्ति या प्रतिष्ठा मिली है वह अंग्रेजी ही की उपासना का फल है। इसलिये इन महामनीषियों का अंग्रेजी—परस्त होना स्वाभाविक ही है। अपवाद रूप से इनमें एक सदस्य श्री मुनशीजी हो ऐसे हैं जिनका हिन्दी पर अच्छा प्रेम होकर, अंग्रेजी के साथ-साथ अपनी मातृभाषा (गुजराती) पर भी उत्कट अनुराग और पूर्ण प्रभुत्व है। इन्हीं की देशभक्ति के कारण हिन्दी को हमारे इस संविधान में उक्त प्रकार का कुछ अर्धदग्ध-सा भी स्थान मिला है, ऐसा समझना चाहिये। संविधान के निर्माताओं ने संविधायक सभा की सलाह दी है कि हिन्दी को भले ही भारतीय राज्य संघ को भावी राज्यभाषा अभी घोषित कर दी जाय, लेकिन आगामी १५ वर्ष तक तो देश का कामकाज बहुत करके अंग्रेजी द्वारा ही चलते रहना चाहिये। बाद में एक कमीशन द्वारा विचार कराया जाय कि हिन्दी को अब कितना अधिकार समर्पित किया जाय—इत्यादि इत्यादि।

यह कहने में दुःख होता है लेकिन कहे बिना कुछ रहा भी नहीं जाता—कि ऐसा संविधान करने में उन महाशयों का एक मात्र निजी स्वार्थी हेतु होने की ही हमें कुशंका हो रही है। क्योंकि अभी से हिन्दी को अँग्रेजी का विशिष्ट स्थान दे दिया जाय, तो इन और इनके ही समान शील वयोवृद्ध कानून जीवियों की क्या स्थिति हो? इनके अधिकार पद और आर्थिक आय की क्या गति हो? केवल इन पलितकेशी मस्तिष्क स्वामियों की देशभक्ति-निरपेक्ष स्वार्थ मूलक वृत्ति ने, राष्ट्रभाषा के वास्तविक अधिकार को और वैसा करके देश की समूची प्रगति को—कम से कम एक पीढ़ी तक तो आगे ढकेलने का अनिष्ट काम किया है। यदि इन महानुभावों के हृदय में महात्माजी जैसी राष्ट्रभक्ति की उज्ज्वल ज्योति प्रज्ज्वलित होती, तो ये संविधान सभा को आग्रह पूर्वक ऐसी सलाह देते कि ५ वर्ष के भीतर ही अँग्रेजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाषा के सब अधिकार हिन्दी को समर्पित कर देने चाहिये और देश को अंग्रेजी के जाल से मुक्त कर हिन्दी के लिये सब ज्ञान द्वार खुले कर देने चाहिये। परंतु इनका खयाल तो शायद यह रहा है कि १५ वर्ष तक अँग्रेजी बनी रहने से हमारा जीवन तो बिना किसी हिचकिचाहट के इसी तरह अमन-चमन में पूरा हो जाएगा। आगे की बात आगे वाले जाने-सोचें।

इस प्रकार के जितने भी अँग्रेजी-परस्त महाशय हमारे देश में विद्यमान हैं, प्रायः उन सबकी यही विचारसरणी है और वे अपने जीवन में तो अँग्रेजी का स्थान हिन्दी या देश की किसी भी प्रादेशिक भाषा को दिया जाय, ऐसा अन्तर से नहीं चाहते।

इस विषय में एक बार बातचीत होते हुये उसने मुझसे कहा था कि—ये अँग्रेजी-परस्त वकील, बेरिस्टर, डॉक्टर और सरकारी नौकर हिन्दी या अन्य प्रादेशिक भाषा के त्वरित अधिकार प्राप्त करने की अयोग्यता के विषय में जो कुछ लचर युक्तिवाद पेश किया करते हैं उनसे यदि यह पूछा जाय कि—विगत महायुद्ध में अँग्रेजों के बदले जर्मनों या जापानियों को विजय हो जाती और यदि वे इस देश के स्वामी बन बठते, तो क्या वे इसी तरह अँग्रेजी का शासन यहाँ चालू रहने देते ? और इन अँग्रेजी-परस्तों को इसी तरह अँग्रेजी का गुणगान करते रहने देते ?

हमको इन इने-गिने अँग्रेजी-परस्तों से पूरी तरह सावधान रहना होगा। हमारी राष्ट्रभाषा के भविष्य को यदि किसी का भय है तो इन्हीं अँग्रेजी भक्तों का है। इन्हीं अँग्रेजी प्रेमियों की कृपा का फल है कि हमारा नूतन संविधान, अपने देश की भाषा में न बनकर, उन अँग्रेजों की भाषा में बना जिनको अपने देश में से निकाल देने के लिये और जिनके नाम-निशान मिटा देने के लिये, हमने इतने कष्ट उठाये, इतनी यातनायें सहीं और इतने बलिदान दिये। आज से ३० वर्ष पहले हमारे राष्ट्रपिता ने जिस भाषा के अधिकार और संस्कार का बहिष्कार करना उद्घोषित किया और जिसको अमल में लाने के लिये अपना समग्र सामर्थ्य समर्पित किया उसी अँग्रेजी में, उन अँग्रेजों के चले जाने पर भी, हमारे देश का यह नूतन संविधान बनता है, और वही हमारे पूर्ण स्वतंत्र राष्ट्र का शिरोधार्य शासन निबन्ध माना जाना चाहिये ऐसा राष्ट्रपति का आदेश होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस संविधान में अंग्रेजो की सत्ता कायम रखने की दृष्टि से और भी अनेक तरह की कई कलमें दर्ज की गयी हैं और भावी राज्यभाषा हिन्दी को अनेक तरह की कसौटियों से कसते रहने की सूचनायें दी गयी हैं। यदि इन कसौटियों द्वारा हिन्दी की ठीक ठीक योग्यता सिद्ध हो गयी तो उसे अपना अधिकार मिल जायगा, नहीं तो फिर उसके लिये क्या करना चाहिये इसका विचार देश की केन्द्रीय संसद (पार्लियामेंट) को करना होगा इत्यादि।

यह मिसाल ठीक उसी तरह की है—जैसे किसी ख़ानदानी व्यक्ति के बाप दादों की मालिकी वाले मकान का किसी डकैत ने आकर जबर्दस्ती कब्जा कर लिया और फिर जब कोर्ट-कचहरी की नाना तरह की कठिनाइयाँ झेलकर, उस व्यक्ति ने अपने मकान का मालिकी हक साबित कर दिखाया, तो कोर्ट आज्ञा देती है कि—हाँ, यह मकान तुम्हारा है और तुम इसमें रह सकोगे, लेकिन अभी नहीं—१५ वर्ष बाद। इस बीच में तुम्हारी कसौटी की जाएगी कि तुम इस मकान में रहने की ठीक योग्यता रखते हो या नहीं। जब तक इस कसौटी की कार्रवाई पूरी नहीं हो पाती तब तक तुमको इस मकान के भीतरी कमरों की चाबियाँ नहीं दी जा सकतीं।

हिन्दी के राज्यभाषा-सिंहासन पर आरूढ़ होने-न-होने की भवितव्यता के विषय में आज ऐसी परिस्थिति है। देश के सर्वतोभद्र कल्याण की दृष्टि से इस परिस्थिति को निभा लेना ठीक है या इसमें परिवर्तन करना-कराना आवश्यक है—इसी का विचार मुख्यतया हमें करना चाहिये।

अभी तक तो हमारे हिन्दी के प्रेमियों और हितचिन्तकों का मुख्य कर्त्तव्य यह रहा था कि इसके अधिकार की योग्यता के विपक्ष में विरोधियों द्वारा जिन जिन बातों का—विचारों का प्रचार किया जाता था उसका प्रतिउत्तर देना और हिन्दी की योग्यता का प्रस्थापन करना। पिछले अनेक वर्षों में जितने भी हिन्दी के सम्बन्ध के सम्मेलन या अधिवेशन, भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों और प्रदेशों में, हुये उन सब में यही एक प्रधान प्रस्ताव रहा करता था और अध्यक्षीय भाषणों का मुख्य ध्वनि भी इसी बात की पुष्टि का द्योतक होता था। अब आज हमें इन पुरानी बातों का—चर्चाओं का पिष्टपेषण या चर्वित-चर्वण करने की जरूरत नहीं रही। यह वस्तुस्थिति अब भूतकाल की घटना हो चुकी। इसका उपयोग अब केवल इतिहास के पन्ने भरने के लिये रहेगा। हमारे राष्ट्र ने बहुत कुछ वादविवाद के बाद, यह तो निर्णय कर ही लिया है कि इस देश में केवल हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बनने की विशिष्ट योग्यता रखती है और इसे ही उस पद पर बिठाना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु यह निर्णय तब तक कार्य साधक नहीं होता जब तक हम सब--खास करके राष्ट्रभाषा के प्रचारक जन—इसके लिये प्रचण्ड परिश्रम और प्रकृष्ट प्रयत्न नहीं करते। संविधान संसद को यह घोषणा तो ठीक उसी तरह की मात्र शाब्दिक घोषणा बनी रहेगी, जिस तरह की आज कल, दिन रात, अधिक धान्य उत्पन्न करने की शाब्दिक घोषणा हमारे सब राज्य-संचालक सरकारी नौकर अपने शाही महलों में बैठकर करते रहते हैं। 'धान्य उत्पन्न करो, धान्य उत्पन्न करो', की कोरी चिल्लाहट करने से जमीन में से धान फूट नहीं निकलता। धान पैदा करने के लिये तो बड़ी कड़ी मेहनत करनी आवश्यक होती है। चोटी से लेकर एड़ी तक जब पसीना बहाया जाता है उन्हाले की तीव्र धूप में, शीयाले की कठोर सरदी में और बरसात की त्रिहामणी झाड़ियों में, मिट्टी के ढेलों से दिन-रात हाथ पैर जब छिले जाते हैं - तब कहीं कुछ धान पक सकता है।

इसी तरह की कुछ स्थिति हमारी इस राष्ट्रभाषा के विकास और संवर्धन के विषय में भी समझनी चाहिये। केवल सविधान परिषद् द्वारा की गयी मान्यता विषयक घोषणा हिन्दी का राष्ट्रव्यापी विकास और गुणीभूत संवर्धन नहीं कर सकती। इसका विकास और संवर्धन तो हमें शिक्षकों और प्रचारकों को करना होगा। इसके लिये हमें खूब परिश्रम करना होगा, कठोर तप तपना होगा, दिन रात उज्जागर हो कर उग्र उपासना करनी होगी। वाङ्मय तप के तपस्वी बनकर भगवती भारती की आराधना करनी होगी; और यह सब करना होगा हमको निष्काम बनकर—बदलें में किसी महत् फल की प्राप्ति की आशा-आकांक्षा छोड़कर। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन,' इस भगवद् वाक्य को हमारा ध्यान-मन्त्र मानकर, हमें केवल देशोद्धार की पवित्र भावना से प्रेरित होकर, इसका प्रचार कार्य करना होगा। तभी हमारी भारती देवी सुप्रसन्न होगी और उसके वरदान से हमारे राष्ट्र की समुचित समुन्नति और सुरक्षा हो सकेगी।

जिस तरह हमारे देश के सच्चे पालक-पोषक और यथार्थ हो अन्नदाता जगत्तात कृषक की अपनी कड़ी मेहनत के बदले में, उसके स्वयं पैदा किये हुये अन्न से ही, उसके बुभुक्षित उदर की ज्वाला को शांत मात्र करने जितना स्वल्प फल भी नहीं मिलता है—तब भी वह अपनी सन्तान की रक्षा की दृष्टि से आजन्म यह कठोर परिश्रम बिना चूं-चाँ किये करता ही रहता है; इसी तरह हम राष्ट्र शिक्षकों को भी अपनी कड़ी मेहनत का किंचित् भी सन्तोषजनक फल—सुखपूर्वक रहने का सामान्य स्थान एवं सादा अन्न और सादे वस्त्र भी हमको अपनी मात्र आवश्यकता पूर्ति जितना भी—नहीं मिलता है; तब भी हमें अपना यह सत्कर्म करना होगा और हमारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी स्थिति को नहीं लेकिन हमारे देश की सुस्थिति को समर्थित करना होगा। हम तभी राष्ट्र-शिक्षक के वास्तविक अधिकार को सफल कर सकेंगे।

हम जब तक भारत के प्रत्येक गाँव में राष्ट्रभाषा के शिक्षामठ नहीं स्थापित कर पाते और उन मठों में स्वयं शिक्षण-संन्यासी बनकर नहीं बैठ जाते, तब तक राष्ट्रभाषा की वास्तविक क्षमता और सफलता हम सिद्ध नहीं कर सकते। यह हमारी सच्ची राष्ट्रभाषा तभी बन सकती है जब राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति, कम से कम, इसके समझने की शक्ति तो अवश्य प्राप्त कर ले। ऐसा यज्ञ समापन्न करने के लिये हमें एक प्रकार की शिक्षादान व्रत की पवित्र दीक्षा लेनी होगी।

लेकिन यह तो जरा मैंने बहुत बड़े आदर्श की बात कर दी। मैं जानता हूँ और मानता भी हूँ, कि केवल आदर्शवाद की बातें बनाने से कोई विशिष्ट कार्यसिद्धि नहीं होती। कार्यसिद्धि के लिये हमें कुछ व्यवहारवादी के दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। इस दृष्टि से प्रस्तुत विषय में मुझे जो कुछ थोड़े से तात्कालिक विचार स्फुरित हो रहे हैं, उनका मैं संक्षेप में निर्देश करना चाहता हूँ।

हिंदी को यदि हमें वास्तव में ही राष्ट्रभाषा बनानी है—अखिल भारत की साम्राज्य भारती बनानी है—और उसे राष्ट्र की सभी प्रादेशिक भाषाओं में अग्रस्थान लेने जितनी क्षमता देनी है, तो हमें न केवल इसके जानने-समझने वालों की मात्र बाह्य संख्यावृद्धि ही से संतुष्ट हो जाना चाहिये; अपितु इसकी आंतरिक गुणवृद्धि की ओर भी हमारा वैसा ही महत्तम प्रयत्न होना चाहिये। बिना गुणवत्ता की वृद्धि और आंतरिक समृद्धि के इसकी महत्ता की विशिष्ट सिद्धि नहीं होगी। यदि यह अन्तर से गुणवृद्ध और सत्त्वसमृद्ध नहीं होगी तो संसार की अन्यान्य प्रौढ़ और प्रभावशाली भाषाओं में इसका गौरवपूर्ण स्थान नहीं बनेगा। वैसी दशा में यह 'भारत-भारती' के विभूतिमद् विशेषण द्वारा विभूषित न होकर, केवल 'हिन्दी बोली' के एक क्षुद्र संकेत—लघुतम विरुद के योग्य बनी रहेगी। यह चपरासी की भाँति राज-दरबार की सेवा-वाहिनी 'खड़ी बोली' ही बनी रहेगी।

अभी जो हमने इसका भारत की साम्राज्य भाषा के उच्च पद पर अधिष्ठित होने का अधिकार घोषित कर दिया है, वह केवल इसके पक्ष में दिखायी देने वाले बाह्य संख्याबल की अधिकता के आधार पर है, न कि अन्तर के गुणवत्ता के बल के आधार पर। गुणवत्ता की दृष्टि से तो इसकी बड़ी बहन बंगाली इससे कितनी ही अधिक समृद्ध है। इसी तरह इसकी अन्य बहिनें—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुजराती, महाराष्ट्री आदि—भी किसी-किसी विषय में इसने अधिक सम्पत्ति-शालिनी हैं। परन्तु इसकी 'भुक्ति' का व्याप्तिक्षेत्र अन्य सब प्रादेशिक भाषाओं की अपेक्षा बहुत बड़ा हो गया है। इसकी अन्यान्य बहिनों—जैसी कि भोजपुरी, अवधी, बुन्देली, छत्तीसगढ़ी, ब्रजमाथुरी, मालवी, मेवाती, मेवाड़ी, मारवाड़ी इत्यादि बोलियों—को विशेष रूप से विकसित होने का अवसर और अवलम्बन नहीं मिलने के कारण, उनके स्वाभाविक अधिकार क्षेत्र पर भी धीरे-धीरे इसी की सत्ता जम गयी है और इस तरह इसकी जागीरी बहुत बड़ी हो गयी, एवं यह इन सब में अधिक सत्ताधिकारिणी बन गई है। लेकिन आंतरिक सामर्थ्य की दृष्टि से यह अभी बहुत कुछ निर्बल है, और शायद इसी कारण से हमारे नूतन संविधान के निर्माताओं ने, इसको तुरन्त अपने समग्र अधिकार समर्पित न करने की, संविधान परिषद् को प्रतिगामिनी सलाह देने की मनोवृत्ति प्रदर्शित की।

मेरे इस कथन का आप कोई ऐसा अर्थ न निकालें कि मैं इस प्रकार इसकी महत्ता का कुछ कम मूल्यांकन कर रहा हूँ। नहीं, मैं चाहता हूँ कि हम अपनी भावी सन्तान के जीवन और वीर्य का पोषण और संवर्धन करने वाली इस कामधेनु रूपो भाषा माता की प्रकृति और प्रवृत्ति का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लें और इसके जो जो अंग अपुष्ट और अविकसित हों, उनके उपाय में शीघ्रातिशीघ्र दत्तचित्त हो जायँ। जैसे सुपरिपुष्ट गौके सत्त्वपूर्ण दुग्ध का पान करने से हमारा शरीर पूर्ण सत्त्वशाली बनता है और हमारी बुद्धि-शक्ति का उत्कृष्ट रूप में विकास होता है, इसी तरह सुपरिपुष्ट और सुविकसित भाषा के, प्रभावपूर्ण शिक्षण द्वारा, हमारी ज्ञानचेतना अच्छी तरह प्रस्फुटित होकर हमारा सम्पूर्ण जीवन सत्त्वशाली और ओजस्वी बनता है।

वास्तव में भाषा ही तो मानव-जाति के यच्चैयावत् विकास का मूल कारण है। भाषा ही ने तो मानवप्राणी की चेतना को उत्तरोत्तर अभिव्यक्त और प्रस्फुटित होने का उपादान उपस्थित किया। यदि हम मनुष्य नामधारी प्राणियों के पूर्वजों को भाषा की यह अद्भुत स्फूर्ति न होती, तो हममें और हमारे पूर्वयुगीन सजातीय एवं सदृशाकृतीय वानर नामक प्राणियों के बीच में, वर्गभेद और जातिभेद ही नहीं उत्पन्न होता। विश्व के प्राणि-जगत् में नर और वानर—मनुख और मंकी—संज्ञक भिन्न जातियों का—कह सकते हैं, भिन्न राष्ट्रों का—सर्जन ही नहीं होता। यह एक दूसरा प्रश्न है कि इस भाषा स्फूर्ति के कारण स-चिन्त मानव जाति को (मानव नेशन) को सुख की मात्रा अधिक मिली कि भाषा अनभिज्ञ निश्चिन्त वानर जाति को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(वानर नेशन को) अधिक। इसको मीमांसा यहाँ पर अनावश्यक है। यहाँ तो हमें जो स्थिति प्राप्त हुयी है, उसी का विचार कर्तव्य है।

तात्पर्य यह है कि भाषा ही हमारे मानव मन के विकास का मूलाधार तत्त्व है। इसलिये हमें यदि अपने मन को सुविकसित बनाना है, तो हमारे इस भाषातत्त्व को भी सुविकसित बनाना होगा। इसकी विकास वृद्धि के लिये हमें नाना प्रकार के अन्वेषण, अनुशीलन, संशोधन, संरक्षण, संवर्धन इत्यादि सब कुछ कार्य करने होंगे और वे व्यवस्थित रूप में, विचारपूर्वक, तज्ञों के द्वारा करने–कराने होंगे।

जैसा कि मैंने कहा है, हमारी हिन्दी अभी आंतरिक सामर्थ्य की दृष्टि से बहुत कुछ निर्बल है, परन्तु इसकी यह निर्बलता योग्य उपायों द्वारा, अत्यन्त अल्प समय में ही दूर की जा सकती है। बहुत थोड़ ही काल में यह उतनी ही शक्तिशाली और समृद्धि परिपूर्ण हो सकती है, जितनी अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, चीनी और जापानी भाषायें हैं।

संख्याबल की दृष्टि से आज संसार में इसका तीसरा स्थान है। लेकिन आभिजात्य और आनुवंशिक महत्त्व की दृष्टि से तो संसार में इसका पहिला स्थान है। यह उस दिव्य और भव्य संस्कृत भाषा की अविच्छिन्न सम्बन्ध वाली औरस सन्तान है, जो संसार की सबसे प्राचीन, सजीव, सुघटित सर्वांगपरिपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ अतएव सर्वोत्कृष्ट भाषा है। परपुष्ट अंग्रेजी भाषा के आधुनिक विशाल कलेवर का ऊपर ऊपर से अवलोकन करने वाले, और केवल उदरपूर्ति के साधन की दृष्टि से, अन्यमनस्क होकर, अनेक वर्षों तक उसका आरटन करके उसके भक्त कहलाने की उत्कंठा रखने वाले, अंग्रेजों के जी-हुजूर वर्गीय अंग्रेजी-परस्त भारतीयों की, यह अज्ञानमूलक भ्रांत कल्पना है कि—संस्कृत एक मृत भाषा है; तथा गम्भीर भाव और प्रौढ़ विचारों का प्रकाशन करने में हिन्दी या भारत की अन्य किसी भाषा में, वैसी क्षमता नहीं है, जो अंग्रेजी में है – इत्यादि इत्यादि।

संस्कृत मृत है या सजीव तथा उसकी योग्य वारसदार हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में गम्भीर भाव और प्रौढ़ विचारों के प्रकाशन की क्षमता है या नहीं—इसकी मीमांसा में मैं यहाँ नहीं उतरना चाहता। क्योंकि वह एक दूसरा विषय है, और बहुत बड़ा विषय है। प्रस्तुत में वह विषयांतर-सा होगा और फिर इस चर्चा के लिये यहाँ पर समय भी कहाँ है? लेकिन मैं यहाँ इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि न संस्कृत भाषा मृत है, और न उसकी हिंदी आदि पुत्रियाँ किसी भी प्रकार की क्षमता के अयोग्य हैं। देवताओं की प्रिय वह दिव्य संस्कृत-वाणी आज भी वैसी ही सजीव-सचेतन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, जैसी वह अपने आद्य महावैय्याकरण महर्षि पाणिनि के समय थी। बल्कि उससे भी अधिक अलंकृत, समृद्ध, स्फूर्तिमान और वीर्यवान है। इसकी-सी अद्भुत क्षमता रखने वाली संसार में कोई भाषा अद्यावधि उत्पन्न नहीं हुई है। यह अलग बात है कि इसका अधिकार-प्रदेश आज बहुत संकुचित हो गया है, इसके जानने वालों की संख्या बहुत कम हो गई है। इस दृष्टि से देखें तो जर्मन भाषा के जानने और बोलने वालों की संख्या अंग्रेजी की अपेक्षा कितनी कम है? लेकिन जिनको जर्मन का, किंचित् भी परिचय है वे जानते हैं कि ज्ञान-विज्ञान के भण्डार की दृष्टि से अंग्रेजी जर्मन के सम्मुख दासी-सी दिखाई देती है।

संस्कृत हमारी हिंदी की सगी मातामही है। उसकी समग्र शब्द-समृद्धि और अर्थनिधि की वह अधिकृत वारसदार है। उसके अक्षय शब्दकोष का और अनन्त अर्थ संचय का यह यथेष्ट उपयोग और उपभोग कर सकती है। साथ ही में यह अपनी सब अन्य बहिनों और समकक्ष पड़ोसिनों—तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम आदि द्राविड़ प्रादेशिक भाषाओं के भण्डारों में से इच्छित शब्दालंकरणों और अर्थाभूषणों से यथेष्ट रूप में अपने अंगप्रत्यंगों को अलंकृत कर सकती है। अरबी, फारसी, लेटिन, ग्रीक, होब्रू आदि संसार की पुरातन भाषाओं के और फ्रेंच, जर्मन, रूसी, अंग्रेजी आदि यूरोप की आधुनिक प्रचलित भाषाओं के अत्युपयोगी और अत्यावश्यक, शब्दों को अपनाने में भी इसको कोई रोक-टोक नहीं है, किसी प्रकार का सोच-संकोच नहीं है।

सौभाग्य से इसके सामर्थ्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने वाली हमारी देवप्रिय देवनागरी वर्णमाला भी वैसी ही सर्वरूपग्राहिणी और सर्वध्वनि प्रकाशिनी है, जिसके आधार से यह अनायास ही सब भाषाओं के संकेतों और उच्चारणों को अविकृत रूप में अपने अन्दर समा सकती है और उनको आत्मसात् कर सकती है। अलवत्त इसके लिये हमें अपनी लिपि में कुछ सुधार करना आवश्यक है।

ऐसी विलक्षण क्षमता और विशिष्ट योग्यता रखने वाली हमारी इस भारती देवी के विरुद्ध में, यदि कोई भारतजन किसी प्रकार के कुत्सित विचार प्रकट करें तो उन्हें हमें भ्रांतचित्त और विकृत मस्तिष्क के विशेषण के सिवाय, अन्य किस विशेष नाम से पुकारना चाहिये, इसकी मुझे तो कोई सूझ नहीं हो रही है।

सज्जनो! इस प्रकार हमारी राष्ट्रभाषा की भूत, भविष्यत् और वर्तमान स्थिति का जो अवभास मेरी स्वल्प मति को हो रहा है मैंने उसको आदके सामने गौण और मुख्य दोनों प्रकार की ध्वनियों द्वारा व्यक्त करने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यत्किंचित् यत्न किया है। और इस विषय में हमारा कर्तव्य क्या है, और क्या होना चाहिये, उसका भी कुछ संकेत मैंने किया है।

अब मैं कुछ थोड़े से विधायक विचार प्रकट कर अपने इस वक्तव्य को पूरा करूँगा।

हम सबको अब यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि 'हिंदी' नामधारिणी यह हमारी नूतन राष्ट्रभाषा अब न केवल काशी, इलाहाबाद या कानपुर दिल्ली की 'खड़ी बोली' के रूप में रहेगी; अपितु अखिल भारत की राष्ट्रभारती—समुच्चय हिन्द की हिंदी के रूप में व्यवहृत होगी। इसको अब ऐसा अखिल भारतीय स्वरूप देने के लिये, हमें इसके व्याकरण विधान में और शब्दस्वरूप में कुछ विशेष संशोधन-परिवर्तन करने होंगे।

इसकी व्याकरण प्रक्रिया हमें इस प्रकार की सरल और सुगम बनानी होगी, जिससे अहिंदी भाषाभाषी जनों को भी बिना विशेष कठिनाई के इसका अच्छा और शीघ्र अवबोध हो सके। इसके लिये लिंगभेद, और क्रिया-विभक्ति के रूपों में कुछ आवश्यक परिवर्तन अवश्य करने होंगे।

शब्दों का संग्रह भण्डार बढ़ाने की दृष्टि से तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साथ इसका विशिष्ट सामीप्यकरण करने की दृष्टि उन उन भाषाओं के अनेकानेक विशिष्टार्थ वाचक शब्दों को इसके शब्द कोशों में और पाठ्य पुस्तकों में समाविष्ट करने होंगे। ये शब्द फिर चाहे तमिल, तेलगु आदि द्राविड़ भाषाओं के हों, चाहे अरबी-फारसी आदि इस्लामी प्रादेशिक भाषाओं के हों, चाहे अंग्रेजी, फ्रेंच आदि यूरोपीय भाषाओं के हों, एवं फिर चाहे चीनी जापानी आदि पीतवर्णीय प्रजा की भाषा के हों। मैं तो मानता हूँ कि श्यामवर्णीय निग्रो प्रजा की भाषा के भी अनेक शब्द हमारी हिन्दी में लाने होंगे, क्योंकि अफ्रीका वगैरह निग्रोजातीय जनपदों के साथ हमारा बहुत बड़ा व्यापारिक और औपनिवेशिक सम्बन्ध बना हुआ है।

विशिष्ट विषयों के पारिभाषिक शब्द, यथासंभव संस्कृत भाषा ही के निश्चित किये जाने और लिये जाने चाहिये जिससे हमारी अन्यान्य प्रादेशिक भाषाओं के साथ, इसकी एकरूपता सहज साध्य हो जाय।

लेकिन इस विषय में, हमें इस बात का खास ध्यान रखना चाहिये कि ये संस्कृत पारिभाषिक शब्द किसी मनस्वी मनीषी के मनगढ़त न हों। पारिभाषिक शब्द वे ही निश्चित और स्वीकृत किये जानें चाहिये जिनका प्रयोग हमारे साहित्य में रूढ़ परिचित और व्यवहृत हों। संस्कृत साहित्य इतना विशाल है और इसका शब्द-भण्डार इतना समृद्ध है कि जिससे किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी विषय का कोई समुचितार्थबोधक शब्द इसमें हमें न मिले, ऐसी धारणा करना भूल है। हाँ, अर्थानुसार हम कुछ नये शब्द भी निर्माण कर सकते हैं, लेकिन हों वे व्याकरणशास्त्र के निबद्ध नियमानुरूप। संस्कृत के गणपाठ, धातुपाठ और लिंगानुशासन जैसे नूतन शब्दों की रचना के लिये विशाल टंकशाल जैसे हैं, जिनके आधार हजारों नये शब्द बनाये जा सकते हैं, और इन्हें टकशाली सिक्कों की तरह, साहित्य के बाजार में, बड़ी सरलता के साथ, प्रचलित किये जा सकते हैं। इसके सिवा संस्कृत कोशों में हजारों ऐसे शब्द संचित हुए पड़े हैं, जिनका उपयोग शायद ही किसी 'क्लासिकल' ग्रन्थकार ने किया हो। इनमें से सैंकड़ों तो वे शब्द हैं, जिनका तत्सम अथवा तद्भव रूप पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हमारी देशभाषाओं में प्रचलित हैं, परन्तु संस्कृत ग्रन्थों में इनका विशेष व्यवहार होना नहीं पाया जाता। इस तरह संस्कृत का शब्द भंडार हमारी राष्ट्रभाषा की शक्ति और अभिव्यक्ति के लिये सबसे बड़ा आधारभूत साधन समझना चाहिये।

अन्यान्य प्रादेशिक भाषा भाषियों के अध्ययन निमित्त हिन्दी में ऐसी पाठ्यपुस्तकें हमें तैयार करनी चाहिये, जिनमें तत् तत् भाषाओं के साहित्य की सुप्रसिद्ध गद्य-पद्य कृतियों के अवतरण अनूदित हों और लोकोक्तियाँ किंवा लोकप्रसिद्ध कहानियों के प्रामाणिक रूपान्तर हों। ऐसा करने से प्रादेशिक भाषाभाषियों को हिन्दी का परिचय बहुत आसान और आकर्षक हो सकेगा उस पर निर्भर होगा।

यह हमें अच्छी तरह स्मरण में रखना चाहिये कि हिन्दी के सिंहासन की स्थिति का आधार अहिन्दी भाषी जनपदों के लोकसमूह का इसके प्रति कितना आकर्षण और आदरभाव है।

हिन्दी राष्ट्र की राज्यभाषा होने जा रही है, इसलिये राज्य का आन्तर-प्रान्तीय व्यवहार इसी द्वारा होगा और राज्य की नौकरी चाहने वाले सबको इसका अध्ययन करना अनिवार्य होगा। इस विचार को लक्ष्य में रख कर हमको अभी से सब प्रान्तिक देशभाषाओं में ऐसी सुगम, परन्तु क्रमबद्ध पाठमालाएँ तैयार करनी-करानी चाहिये जिससे पढ़नेवालों की उत्तरोत्तर हिन्दी के अध्ययन में रसवृत्ति जागृत होती जाय और थोड़े समय में वे हिन्दी का उतना ही अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लें, जितना उन्हें अपनी मातृभाषा का हो।

प्रान्तीय भाषा-भाषियों को सुगमता से हिन्दी के अध्ययन की ओर आकृष्ट करने का मेरी समझ में सबसे अच्छा उपाय यह होगा कि—उन उन प्रान्तीय भाषाओं में जो जो विशेष लोकप्रिय कथा-कहानियों का साहित्य है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका सुन्दर, सरल और सुबोधरूप में हिन्दी भाषान्तर किया जाय। कथा-कहानियों से मेरा मतलब प्राचीन लोक-कथाएँ तथा आधुनिक लिखित नई शैली के उपन्यास आदि दोनों का है। इसी तरह हिन्दी का जो इस प्रकार का मौलिक कथा-साहित्य है, उसका भाषान्तर उन उन प्रान्तीय भाषाओं में किया जाय। ऐसा करने से हिन्दी का खूब विकास होता जायगा और विस्तार बढ़ता जायगा तथैव प्रान्तीय भाषाओं की समृद्धि और शक्ति बढती जायगी।

अन्त में मैं कुछ शब्द, अपने हिन्दी के विशिष्ट लेखक बन्धुओं के प्रति कहना चाहता हूँ। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दी के लेखकों की और उपासकों की संख्या अब दिन प्रतिदिन बड़ी तेजी के साथ बढ़ती जा रही है। परन्तु इन उत्साही लेखकों का लक्ष्य, स्थायी साहित्य के सर्जन की ओर अभी तक जैसा चाहिये वैसा नहीं हो रहा है। हिन्दी में कविता लिखने वाले युवकों की जितनी विशाल संख्या है उतनी शायद अन्य किसी भाषा में न होगा। मैंने ऐसे अनेक युवक देखे हैं कि जिनको हिन्दी में सामान्य व्यवहार की घटना का भी व्यवस्थित वर्णन लिखना नहीं आता, लेकिन वे भी कविता करने की और कवि कहलाने की बड़ी उत्सुकता रखते मालूम दिये। कविता से आगे किसी की कुछ दौड़ होती है तो वह कुछ छुट-फुट और अस्तव्यस्त विचारों वाली कहानियाँ लिखने की होती है। परन्तु इसके सिवा, भिन्न-भिन्न प्रकार के विषयों के निबन्ध, प्रबन्ध, लेख आदि लिखकर अपनी मातृभाषा के भंडार को पुष्ट करने का और उसके द्वारा अपने करोड़ों अज्ञान देशवासियों अन्धकारपूर्ण झोपड़ियों में, ज्ञान ज्योति के दीपक जगाने का कोई विशेष लक्ष्य नहीं हो रहा है। अँग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं की बात को सर्वथा जाने दें। परन्तु अपने देश की बंगला, मराठी, गुजराती आदि प्रान्तीय भाषाओं के पुस्तक भंडारों की तरफ ही हम कुछ विशेष नजर डालकर देखेंगे, तो हमें प्रतीत होगा कि इन भाषाओं के गण्यमान्य लेखकों ने विविध विषयों के जितने भी छोटे बड़े ग्रन्थ, निबन्ध आदि लिखकर अपनी मातृभाषा के चरणों में, चिरंजीवी साहित्यिक पुष्प समर्पित किये हैं और कर रहे हैं, उसकी तुलना में हिन्दी का नंबर कहाँ है; यह आप जरा गंभीरता के साथ जरूर सोच-विचार करने की कृपा करें।

बंगला-साहित्य की समृद्धि से तो हमारे हिन्दी भाषी साहित्यकार बहुत कुछ परिचित हैं ही, क्योंकि हमारा हिन्दी का औपन्यासिक ग्रन्थालय प्रायः बंगला उपन्यासों के अनुवादों ही से भरपूर है। परन्तु उपन्यासों के अतिरिक्त अन्यान्य प्रकार के अनेकानेक विषयों के साथ सबन्ध रखने वाले छोटे-बड़े ग्रन्थनिबन्धरूप सैकड़ों साहित्यिक रत्नों से बंगला जैसी समृद्ध है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका 10 वाँ हिस्सा जितना भी हिन्दी-पुस्तक भंडार समृद्ध नहीं है। इसी तरह मराठी भाषा के साहित्य भंडार की तरफ भी आप कुछ नजर डाल कर देखेंगे, तो आपको मालूम देगा कि चिपळूणकर, तिलक, केळकर, केतकर, आप्टे, नाम जोशी आदि धुरन्धर विद्वानों ने, अपनी मातृभाषा के पुस्तक भंडार को विविध प्रकार के विषयों से परिपूर्ण करने के लिय कितना परिश्रम उठाया है और कितना मूल्यवान् साहित्य सजन किया है।

मैं जब इस दृष्टि से अपने हिन्दी साहित्यिकों के वाङ्मय सर्जन को देखता हूँ, तो मुझे उसमें वैसे मूल्यवान रत्न बहुत हो कम दृष्टिगोचर होते हैं। श्री राहुलजो, जयचन्दजो, हजारा प्रसादजी, वासुदेव शरणजी संपूर्णानन्दजो आदि हिन्दी के कतिपय प्रौढ़ और पोढ़ भक्तों की सारस्वत-साधनाक फलस्वरूप, हमारे इस स्वल्पनिधि वाले द्रव्य-पिटक (केश बॉक्स) में कुछ मूल्यवान् सौवर्ण द्रम्मों या कार्षापणों का थोड़ासा विशिष्ट संग्रह अवश्य जमा हुआ है; लेकिन हिन्दी की हुंडियाँ तो अब सारे भारतवर्ष में चलनी शुरू होंगी; वैसो स्थिति में हमारा यह साहित्यिक खजाना सब प्रकार के रत्नों के बड़े-बड़े चरुओं से और मूल्यवान् धातुओं के मुद्रापुञ्जों से भरपूर बने और इसको साख सर्वत्र उत्तरोत्तर बढता रहे—इसके लिए हमें अथक उद्योग, प्रचण्ड प्रयत्न, और प्रकृष्ट पुरुषार्थ करना आवश्यक है।

भगवती भारती हमको ऐसा करने को सन्मति और शक्ति प्रदान करे—यही मेरी उससे सतत प्रार्थना है। जय हिन्द, जय हिन्दो!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, उदयपुर 1945

स्वागताध्यक्ष
मुनि जिनविजयजी का
वक्तव्य

सहृदय सद्विद्य साहित्यप्रिय सभ्यगण !

अहोभाग्य है कि हम आज इस विश्वविदित वीरभूमि में विभूति-वर्धक वाङ्मय यज्ञ करने के कल्याणकर निमित्त सोल्लास सम्मिलित हो रहे हैं। यह वह भूमि है जिसकी एक तरफ स्वयं भगवान् महेश्वर एकलिंग-देव, दूसरी तरफ जिनेश्वर ऋषभदेव और तीसरी तरफ गोकुलेश्वर श्रीनाथदेव रक्षा कर रहे हैं। शिव, जिन और विष्णु के ऐसे एकत्र एवं अद्वितीय अधिष्ठानों की महनीय महिमा आपको अन्य किसी भूमि में दृष्टिगोचर नहीं होगी।

महाकवि चक्रवर्ती श्रीहर्ष का बनाया हुआ सुन्दर संस्कृत तीर्थ-वन्दन-स्तोत्र है, जिसमें विश्व के पुण्यतम तीर्थस्थानों की भक्तिपूर्ण वन्दना गाई गई है। उसमें एक पाद एक यह है—

"आघाटे मेदपाटे क्षितितलमुकुटे चित्रकूटे च कूटे"

इसमें मेदपाट के इसी प्राचीन तीर्थस्थान और राज्याधिष्ठान आघाट (पुर) का और पृथ्वीतल के मुकुट समान चित्रकूट शिखर का प्रात-मंङ्गलकर नाम-कीर्तन है। इन्हीं आघाट और चित्रकूट के विभूतिमान् अवशेषों से इस उदयपुर का अभ्युदयकारक उत्थान हुआ है, यह आप भली-भांति जानते हैं।

सम्वत् १९९० के वर्ष में 'विविध तीर्थकल्प' नाम का एक बड़े महत्व का, संस्कृत और प्राकृत भाषा में बना हुआ पुरातन ग्रंथ, मैंने प्रकाशित किया था। उस ग्रन्थ का समर्पण मैंने इस पुण्यभूमि मेवाड़ को- जो मेरी पूजनीय मातृभूमि है-इन श्लोकों में किया है—

यस्याः क्षेत्रं वनं वापी कूपस्सरित् सरोवरम् ।
ग्राम-नगर-गिर्यादि सर्वं तीर्थमयं स्थितम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेवाडाख्या प्रसिद्धा या स्वर्गादपि गरीयसी ।
जन्मभूमिर्मदीया सा मातृतुल्या प्रियंकरा ।।
तस्याः पुण्यपवित्रायाः सत्कीर्तिमूर्तिमन्दिरे ।
करोम्यहं कृतेरस्याः सद्‌भक्त्या वै समर्पणम् ।।

माता के पुनीत चरणों में मेरा यह तुच्छ समर्पण आज सफल-स्वप्न हो रहा है, यह सोच कर मेरा हृदय अत्यन्त उल्लसित हो रहा है।

बङ्ग महाकवि द्विजेन्द्रलाल ने मेवाड़ की गाथा गाते हुए इसके इन ऊँचे ऊँचे पहाड़ों का—

'है मेवाड़ पहाड़ ये जूझा जहाँ सिंह परताप ।
अटल रहा पर्वतसा यद्यपि सहे घोर सन्ताप ।।
वधकी रूपागिनी पदमिनि की जहाँ प्रबल चहुँ ओर ।
कूद पड़ी थी जिसमें सेना यवनों की घनघोर ।।
है मेवाड़ पहाड़ ये जिसकी लाल धजा फहराती है ।
दर्प पुराना चूर किया है यवनों का, बतलाती है ।।

इत्यादि पद्यों में जो गौरव-गभीर और भावभरे उद्‌गारों में पुण्य कीर्तन किया है, वह सब आपसे अविदित नहीं है। इससे कहता हूँ कि यह हमारा अहोभाग्य है कि आज हम इस वीरभूमि में यह वाङ्मय महायज्ञ करने रूप सत्त्वशील सदुद्योग निमित्त सोत्कण्ठ सम्मिलित हो रहे हैं।

यह मेवाड़ की राजधानी उदयपुर है। इसके नाम का स्मरण और श्रवण कर, स्वाधीनताप्रिय कवि-हृदयों में किन किन उत्कट भावों का उदय होता रहता है वह आपको अज्ञात नहीं है। विधि के विधान से, जिस समय प्रायः सारे भारत के भाग्याकाश को, विजातीय और विधर्मीय शासन शक्ति की प्रबल आँधी से आक्रांत कर दिया था और पराधीनता एवं पराभवता के घोर वातावरण ने भारतवासियों के आत्मभानरूप प्रदीप्त भानु को तिमिराच्छन्न कर दिया था, उस दयनीय दुर्दिन में भी, इस उदयपुर के आदर्श अधिष्ठाता सूर्यवंशी सन्तानों ने, राजस्थान के राहुग्रस्त राष्ट्रीय जीवन-सूर्य को तथा राजस्थानीय प्रजा के आत्मसम्मान के अस्तित्व को प्रकाशित रखने वाले ओजस् आदित्य को, अक्षुण्ण रूप से उदीयमान बना रखा था।

आर्य जाति के अपूर्व आत्मोत्सर्ग से पुनीत बनी हुई इस पुण्यभूमि में, आज इस पावन पर्व के दिन, राजस्थान के उस अलौकिक आत्मभान की अनुभूति कराने वाली ज्ञान ज्योति के परम उपासक ऐसे आप सब सज्जनों के आनन्ददायक दर्शन कर, मैं अपने जीवन की एक अद्वितीय धन्यता का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनिर्वाच्य अनुभव कर रहा हूँ। इस अमृतानुभव को उचित रूप में व्यक्त करने योग्य, मेरी वाणी में वैसी कोई विशिष्ट व्यंजनाशक्ति नहीं है जिससे मैं आपको अपने अन्तर के आह्लाद को ठीक ठीक सुना सकूँ। गूँगे के रसास्वाद की तरह मेरा यह आत्मिक आह्लाद भी अकथ्य बन रहा है।

आप सब सज्जनों ने, राजस्थान के इस अभिनव वाङ्मय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये, बड़े सौहार्दपूर्वक जो मुझे आमंत्रित किया और अपनी क्षुद्र सेवा समर्पित करने रूप स्वस्तिकर अंजलि देने का जो सद्भाग्य प्रदान किया, इसके लिये मैं आपका किन शब्दों में उपकार मानूँ? आपकी इस अनन्य उपकारिता का, किन्हीं भी शब्दों में यथार्थ मूल्यांकन करने वाली ऐसी वणिक्विद्यासिद्ध किंचित् भी वाक्कला मेरे में नहीं है। सो इस विषय में भी मैं मौन रहने ही में अपना आत्मरक्षण और वाणीभूषण समझता हूँ। आप सब सहृदय विदग्ध और मर्मज्ञ भावुक हैं इस लिये मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे इस हृद्गत गद्गद्भाव को आप अच्छी तरह ग्रहण कर सकेंगे।

यहाँ पर इस समय मेरे मन में रह रह कर यह आश्चर्यजनक विचार आ रहा है कि उदयपुर के इस वाङ्मय यज्ञ के सत्कर्मी विधायकों ने, मेरी किस योग्यता को लक्ष्य कर; मुझे इस स्थान पर अधिनायक हो कर बैठने के लिये वाधित किया है। मैं न कोई हिन्दी भाषा का नामी लेखक हूँ और न कोई प्रसिद्ध साहित्यिक हो हूँ। न मैंने हिन्दी भाषा की अन्य किसी प्रकार से उल्लेख योग्य कोई विशेष सेवा ही की है। हिन्दी भाषा-भाषी विद्वद्वर्ग का मुझे बहुत ही कम परिचय है। राजस्थान के सद्विद्य साहित्योपासकों के दर्शन करने का या परस्पर निकट परिचय प्राप्त करने का मुझे कोई सद्भाग्य प्राप्त नहीं हुआ। सिवाय उदयपुर के कुछ सज्जन मित्रों के, मैं आप लोगों को प्रायः अपरिचित सा ही दिखाई दे रहा हूँ।

उस दिन बम्बई में मेरे मित्र श्रीयुत कृष्णलालजी वर्मा ने आकर यह शुभ खबर सुनाई कि 'उदयपुर के कुछ उत्साही साहित्य सेवी-मित्रगण, राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन करने का आयोजन कर रहे हैं और उसमें कुछ सूचना आदि देने-भेजने की आपसे आशा रखते हैं।' मैं इस खबर को सुन कर तो मन में अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ कि उदयपुर में—मेवाड़ में—मेरी प्यारी जन्मभूमि में—साहित्य सम्मेलन किये जाने जैसी प्रौढ़ सांस्कारिक प्रवृत्तियाँ होने लगी हैं। लेकिन उसके बारे में कुछ सूचना आदि देने-भेजने जैसी मेरे पास कोई खास सामग्री नहीं है और ना ही मैं इसमें किसी प्रकार का सक्रिय भाग लेने जैसी परिस्थिति में हूँ—इसका विचार कर मन में जरा खिन्न हो कर मैंने वर्माजी से यों ही कुछ टालमटोल जवाब दे दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे दुर्भाग्य ने मुझे बचपन ही से अपनी जननी की गोद में से उठा कर दूर कर दिया है; इसलिये मेवाड़ में आने का और जन्मभूमि के दर्शन करने का मेरा औत्सुक्य कितना उत्कट बना रहता है यह भगवान् ही जानते हैं। लेकिन मेरे सतत चालू ऐसे साहित्यिक कार्यभार की संकीर्णता और व्यग्रता के कारण मैं कहीं आने जाने या सभा-सम्मेलन में भाग लेने में असमर्थसा बना हुआ रहता हूँ। कोई ४-५ वर्ष पहले यहीं—इसी उदयपुर में, शायद राज्य की ही ओर से, न्युमस्मेटिक कॉन्फरन्स का एक जलसा किया गया था। मेरे स्वर्गवासी गाढ मित्र विद्यावारिधि काशीप्रसादजी जायसवाल उसके प्रमुख थे। उन्होंने उस समय मुझे बहुत आग्रह करके उसमें सम्मिलित होने के लिये लिखा था। मेरी इच्छा भी हुई कि इस निमित्त मुझे मेवाड़ के दर्शन का लाभ हो जायगा सो चला जाऊँ; लेकिन उसी कार्यभार की व्याकुलता के कारण, मैंने जायसवालजी को अपने आने की इच्छा लिख कर भी, अन्त में मैं आ नहीं सका। खैर।

उक्त वर्माजी से वार्तालाप होने के कुछ ही दिन बाद मित्रवर डॉक्टर महोदय श्री मोहनसिंहजी मेहता का एक पत्र मुझे मिला कि 'यहाँ पर उदयपुर में साहित्य सम्मेलन किया जा रहा है और उसके अध्यक्ष बनने के लिये, यहाँ के अन्यान्य मित्रों का और मेरा भी आपसे आग्रहपूर्ण अनुरोध है' इत्यादि। डॉक्टर साहब का यह पत्र पाकर मैं आश्चर्य मुग्ध सा हो रहा। उदयपुर में राजस्थान-वासियों का हिन्दी साहित्य सम्मेलन और उसमें मैं अध्यक्ष! न्यायशास्त्र की परिभाषा में मैं सोचने लगा कि इस सम्बन्ध में परस्पर क्या कार्य कारण भाव हो सकता है? यह तो 'अदरक के व्यापारी को जहाज की खबर से क्या मतलब' वाली कहावत जैसा प्रतीत हो रहा है। अपनी जिंदगी में मुझे इसका तो कभी स्वप्न भी नहीं आया कि मैं हिन्दी भाषा के साहित्य सेवियों का भी कोई सम्बन्धी हूँ। मैं तो एक प्रकार से गुजरात और गुजराती का दत्तक पुत्र बन चुका हूँ। अहमदाबाद में, सन् १९३६ की साल में, महात्मा गांधीजी के प्रामुख्य में, गुजराती साहित्य सम्मेलन के १२ वें अधिवेशन का जो समारोह किया गया, उसमें 'इतिहास और पुरातत्त्व विभाग' का अध्यक्ष मुझे बनाया गया था। उस समय के मेरे व्याख्यान में मैंने अपने गुजरात के साथ के सम्बन्ध का परिचय इन शब्दों में दिया था—"गुजरात के पुरातन इतिहास, साहित्य और स्थापत्य पर मेरा प्रगाढ़ अनुराग है—प्रबल पक्षपात है और इसीलिये मैंने गुजरात की भूमि में जन्म न लेने पर भी, गुजरात को अपनी जन्मभूमि के रूप में स्वीकार किया है। मातृभाषा को भुला कर, बुद्धिपूर्वक, मैंने गुजराती भाषा को अपने हृदय में मातृभाषा के पीठ पर स्थापित की है और इस तरह मैं गुजरात और गुजराती का दत्तक पुत्र बना हूँ।" गुजरात के साथ इस प्रकार आत्मीय भाव का सम्बन्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखने से, गुजरात के साहित्यिक गण जो मुझे अपनी गूर्जर–साहित्यिक प्रवृत्ति के किसी कार्य में कोई सेवा करने का स्थान दे तो वह कुछ स्वाभाविक सा लगता है। गूर्जर साक्षर वर्ग प्रायः ऐसा करता भी रहता है। इसी वर्ष में, बम्बई में होने वाले गुजराती साहित्य सम्मेलन के १४वें अधिवेशन का मुख्य प्रमुख बनने के लिये, गुजरात के कतिपय गण्य-मान्य विद्वानों ने, अन्यान्य दो-एक अधिकारी विद्वानों के नामों के साथ, मेरा क्षुद्र नाम भी आगे किया है। लेकिन हिन्दी के साहित्य क्षेत्र में मेरा कोई दूर का भी किसी प्रकार का सम्बन्ध पहुँचता हो, यह मै नहीं समझता था।

मैं हिन्दी में कुछ लिखता अवश्य आया हूँ। मेरे अभ्यस्त और प्रिय विषय जो पुरातत्त्व विषयक हैं उनके विषय के कुछ लेख, निबन्ध और पुस्तक–पुस्तिकाएँ आदि मैंने हिन्दी में लिखी हैं, और स्वर्गवासी आचार्य द्विवेदीजी एवं विद्यावारिधि काशीप्रसादजी जायसवाल, तथा विद्यमान म. म. पण्डित प्रवर गौरीशंकरजी ओझा, राजरत्न डॉ॰ हीरानन्द शास्त्री और पितृविशेष ठाकुर साहब श्री चतुरसिंहजी (रूपांहेलो) जैसे वृद्ध विद्योपासक गुरुजनों ने उनकी भूरि भूरि प्रशंसा भी की है। मेरे कुछ क्षुद्र लेखों को तो, आचार्य द्विवेदीजी ने, मेरे प्रति अपना अनुपम आत्मीयभाव प्रकट करते हुए, स्वयं अपने ही लेख कह कर, निज के पुरातत्त्व विषयक निबन्ध संग्रह में समान आसन दिया है–इत्यादि। पर इतनी सी अल्प पूँजी पर मैं अपने को हिन्दी का एक गिनती में गिनाने लायक सम्पत्तिशाली व्यक्ति नहीं समझ सकता।

इन बातों को लक्ष्य कर मैंने कुँवर साहब श्री मोहनसिंहजी को, इनके सौजन्यशाली आग्रह के अधीन होने में बड़ी संकुचिततता के साथ अपनी अक्षमता का निवेदन किया। इतने में सम्मेलन के सहृदय उत्साही मन्त्रीजी का भी वैसा ही आग्रहपूर्ण अनुरोध वाला पत्र आ पहुँचा। इनको भी इसी प्रकार की कितनीक 'ननु नच' और 'ऊँ हुँ' आदि बातें मैंने लिखीं; लेकिन आखिर में, मातृभूमि के मोह में मुग्ध हो कर, मुझे इनकी आज्ञा उठाना अपना कर्तव्य मालूम दिया और तदनुसार अपनी योग्यायोग्यता का कुछ विशेष विचार न कर, मैं आज इस मंगलमय शुभ अवसर पर आप सबकी सर्वतोभद्र सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

इस सम्मेलन का विशेष ध्येय क्या है; इसका भावी कार्यक्रम क्या होगा, इसकी भावनाएँ और कामनाएँ कैसी होंगीं, इसके उद्देश्य और विधेय क्या होंगे, इसके पालक और पोषक कौन रहेंगे, इसका विकास और विहार किस तरह होगा-इत्यादि बातों का, मुझे कुछ ज्ञान नहीं है। किसी प्रज्ञाचक्षु व्यक्ति के, कोई अपरिचित स्थान में, मित्रों द्वारा ले जाकर बैठाये जाने जैसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरी स्थिति है। यह अब आप ही का कर्तव्य होगा कि मुझे अपने कार्यक्षेत्र के मार्ग और स्थानों का परिचय करावें। हमारे साध्य और साधन क्या हैं, उन्हें बतलावें।

मैं यहाँ आपका कोई नेता बनने की इच्छा से नहीं आया हूँ। न मुझमें कोई वैसी क्षमता है और न मुझे कोई वैसी अभिलाषा ही है। मेरे यहाँ आने की मुख्य इच्छा तो रही है केवल अपने देशबन्धु साहित्य सेवियों के दर्शन करने की और प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करने की।

ईश्वर ने राजस्थान में मुझे जन्म दिया लेकिन राजस्थान की कोई सक्रिय सेवा करने का मुझे भाग्य नहीं दिया। राजस्थान में कहीं रह कर कुछ सार्वजनिक कार्य करने का मनोरथ मेरा कोई २० वर्षों से बना हुआ है। इस दृष्टि से मैंने कुछ स्थानों का निरीक्षण भी कभी-कभी किया है—लेकिन यह इच्छा, शायद, ईश्वर को अभीष्ट नहीं रही। मैं वर्षों तक महाराष्ट्र के केन्द्र पूना में रहा और वहाँ शैक्षणिक और साहित्यिक दोनों प्रकार के कुछ न कुछ काम करता रहा। गुजरात को तो मैंने प्रारम्भ ही से अपना पूरा आश्रय स्थान बना रखा है। भारतख्यात गुजरात विद्यापीठ के जन्म से पूर्व ही, उसके गर्भगत संस्कारों के साथ मेरा कुछ सम्बन्ध बन गया था; और फिर उसके जन्म लेने के बाद उसको अधीनता में गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर जैसी संस्था के संरक्षण और संचालन में मैंने यथायोग्य अपनी सेवा दी। पिछले दो वर्षों से बम्बई में, उसी पुरातत्त्व मन्दिर की एक पुनरावृत्ति जैसी, लेकिन उससे भी व्यापक कार्यकर 'भारतीय विद्याभवन' नाम की एक विशिष्ट संस्था, मेरे मान्य मित्र श्रीमान् कनैयालालजी मुन्शीजी के प्रखर प्रयत्न से स्थापित हुई है जिसका मैं अन्तरङ्ग कार्यवाहक हो कर प्रधान सेवक सा बन रहा हूँ। बंगाल के शान्ति निकेतन जैसे विश्वविख्यात विद्या केन्द्र में भी ३-४ वर्ष रहने का और वहाँ के महाजनों के साथ आत्मीय भाव प्राप्त करने-कराने का मुझे अपूर्व लाभ मिला। वहीं पर मुझे, दानवीर बाबू श्री बहादुरसिंहजी सिंघी जैसे संस्कारमूर्ति, शिक्षाप्रिय और साहित्य रसिक सज्जन को प्रेरणा कर सिंघी जैन ग्रन्थ माला जैसी श्रेष्ठ प्रकार की ग्रन्थावली की प्रतिष्ठा कराने का सुयोग प्राप्त हुआ।

मेवाड़ के एक छोटे से गाँव में, अशिक्षित राजपूत के निर्धनप्राय कुल में जन्म लेने वाले और जन्म से लेकर आज तक भी किसी स्कूल-कॉलेज या शाला-महाविद्यालय में कुछ भी शिक्षा न प्राप्त करने वाले मेरे ग्रहयोग में, युरोप की मुसाफरी भी लिखी हुई पाई गई; और तदनुसार, आज से कोई १२ वर्ष पूर्व, मैं वहाँ चला गया। जिसका नामोल्लेख करता आज शायद किसी को अमंगलकर मालूम होगा, लेकिन मैं अपना ज्ञान बढ़ाने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिलाषा से उस जर्मनी में जा पहुँचा। हाँ, उस समय वहाँ पर हेर हिटलर 'हाइल' के नारे कहीं नहीं सुने जाते थे! वहाँ पर मैं करीब १८-२० महिने रहा। वहाँ पर भी दैवने मेरे लिये कोई ऐसा योग उपस्थित किया, कि जिसके बल से बर्लिन शहर के बड़े भारी राजमार्ग पर, अपने एक राष्ट्रीय भावना वाले मुस्लिम मित्र की सहायता से मैंने 'हिन्दुस्थान हाउस' नाम का एक वर्सातगृह खोल दिया। इस गृह में हिन्दुस्थानी और जर्मन मित्रों के बीच में परस्पर सांस्कृतिक समागम का वड़ा ठठ जमा करता था। राजा महेन्द्र प्रताप, शिवप्रसाद गुप्त, श्री धोंडो केशव कर्वे, सोमेन्द्रनाथ टागोर, नृत्यकार उदयशंकर, स्वामी सत्यदेव, बेरोष्टर चुड़गर आदि हिन्दुस्थान की अनेक नामी व्यक्तियों ने, मेरी उपस्थिति में इस गृह में उत्तम आतिथ्य अनुभव किया। सैंकड़ों जर्मन मित्र-जिनमें बड़े-बड़े प्रोफेसर, व्यापारी, कलावान्, राजनीतिज्ञ भी सम्मिलित रहते थे-इस गृह का बड़ा आदर करते थे और बर्लिन के सब नामी अखबार इसकी खबरें और छबियाँ बड़ी सहानुभूति के साथ प्रकट करते थे। इस गृह में बैठ कर मैंने कई ज्ञानपिपासु सुशिक्षित जर्मन कुमारियाँ, कुमारों और प्रौढ़ों को हिन्दी भाषा के पाठ पढ़ाये और भारत के राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध विचार सुनाये-समझाये। मेरे जीवन का वह एक सबसे अद्भुत और सफल प्रयोग रहा।

इस तरह जीवन के कोई पिछले २५ वर्षों से मैं इन दूर-दूर के देश-परदेशों में, रह भटक कर कुछ न कुछ सार्वजनिक प्रवृत्ति करने का सुयोग प्राप्त करता रहा हूँ; लेकिन इस राष्ट्रमुकुट राजस्थान में-जहाँ के प्राणवायु की पहली सांस ने मेरे इस जीवन चक्र को आद्य गतिमान् किया, जहाँ के अमृतरूप जल की पहली घूंट ने मेरी चेतना शक्ति के संचालक हृदययंत्र को पहले पहल स्फुरित किया, जहाँ के प्रकाशमान् नील आकाश ने मेरी चाक्षुष ज्योति का सर्वप्रथम उन्मीलन किया और जहाँ की भूतिशालिनी भूमि ने मुझे पैरों पर खड़े होकर सबसे प्रथम चलने की गति प्रदान की-उस जीवनदात्री जननी धरित्री-'सर्वभूतानां माता मेदिनी'-में कुछ भी सेवा या सत्कर्म करने का मुझे अभी तक कोई सुयोग नहीं मिला। बस, इसी का विचार करके, शायद ईश्वर ही ने अनुग्रह करके जीवन के अब इस ढलते पहर में मेरे लिये यह सुवर्णमय अवसर उपस्थित किया है ऐसा समझ कर, मैं आपकी सेवा में हाज़िर हुआ हूँ।

मेरे में यह नैसर्गिक वैगुण्य है कि मैं जनसंसर्ग के साथ अधिक तादात्म्य नहीं साध सकता। मुझे प्रायः एकांतवास ही अधिक प्रिय होता है और एकांत ही में बैठ कर मैं अपनी साहित्य-साधना किये करता हूँ। व्याख्यानादि में मेरी विशेष रुचि नहीं होती। बोलने की अपेक्षा मौन रहने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में मुझे अधिक आनन्द आता है और शायद इसी विषय में मेरा यह 'मुनि' उपपद ठीक सार्थक मालूम देता है। बाकी जैसा कि आप मेरे जीवन–व्यवहार से देख सकते हैं'। 'मुनि' नामक विशेषण के साथ मेरी और कोई खास लेन-देन नहीं है। संस्थाओं के आंतरिक व्यवहारों और अधिकारों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं होती; इसलिये मैं उनकी उलझनों में कभी नहीं पड़ता। जहाँ कहीं ऐसा प्रसंग उपस्थित होता दिखाई देता है–और प्रायः सार्वजनिक संस्थाओं में ऐसा बहुधा हुआ ही करता है–तो मैं शीघ्र वहाँ से पलायन कर जाता हूँ। अवश्य ही यह कायरता का लक्षण हो सकता है–पर मेरी प्रकृति जो रही। इसीलिये यहाँ आने का जब विचार किया, तो मैंने मन्त्री महाशय से, इस विषय में एकाध प्रश्न भी पूछ लिया था कि इस प्रस्तावित सम्मेलन के बारे में किसी की, कोई प्रकार की, कुछ खींचतान तो नहीं है न ? इत्यादि।

यह कुछ अपनी राम कहानी जैसी कथा आपको इस लिये मैंने सुनाई है कि जिससे आप मेरी शक्ति, प्रवृत्ति और प्रकृति का कुछ खयाल कर सकें और तदनुसार मुझसे ली जाने वाली सेवा की कल्पना और आशा रख सकें।

मैं सर्वथा उन मनुष्यों की-सी प्रकृति वाला जीव नहीं हूँ जिनके लिये संस्कृत के किसी कवि ने यह कह रखा है - 'तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।' मैं तो पूर्णतया प्रगतिगामी विचारों और आचारों का परम उपासक और प्रशंसक हूँ। मैं नीतिकार के इस कथन को खूब उचित समझता हूँ कि–'शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि' और साथ ही मैं उस महाकवि के इस कथन को भी यथार्थ समझता हूँ कि– 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि नव्यमिति वाप्यवद्यम्।'

इन्हीं सैद्धान्तिक विचारों का अनुगमन करता हुआ मैं अपने देश के, क्या प्राचीन और क्या नवीन, सभी कार्यकलापों का निरीक्षण करता रहता हूँ। धर्म, समाज, शिक्षण, साहित्य और राजनीति–विषयक सभी प्रवृत्तियों का मैं इसी दृष्टि से अवलोकन किये करता हूँ और उनके औचित्य –अनौचित्य के गुणांक दिये करता हूँ। मेरी इस दृष्टि और विचार-सरणि के अनुसार 'राजस्थान' के विषय में मेरे क्या विचार हैं इसका ठीक परिचय तो मैं आपको इस समय कराने में असमर्थ हूँ ! मेरा स्वास्थ्य इन पिछले दिनों में जरा अच्छी तरह अव्यस्थित रहा और इसलिये मैं कुछ लिख नहीं पाया। परन्तु, संक्षेप में, मैं 'राजस्थान' के विषय में आपको अपना कुछ हृद्गत नीचे के वक्तव्य में सुनाता हूँ जो कुछ ही दिन पहले मैंने, 'भारतीय विद्या' में अंकित किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजस्थान अर्थात् राजपूताना भारतवर्ष का एक रत्नभूत प्रदेश है। यह सब तरह से रत्नों की एक अपूर्व खान है। इसका भूगर्भ सोना, चाँदी, तांबा, लोहा, हीरा, माणिक आदि सभी मूल्यवान् धातुओं से भरा पड़ा है। इसके पहाड़ और जंगल असंख्य तरह की अमूल्य वनस्पतियाँ, औषधियाँ, जड़ी-बुट्टियाँ और सब प्रकार के वृक्षों से आच्छादित हैं। इसके मैदान सब जाति के धानों के उत्कृष्ट उत्पादक और रस-कस से परिपूर्ण हैं। इसके जल-वायु जीवनपोषक, स्वास्थ्यवर्द्धक और बलदायक हैं। राजस्थान का पशुधन सारे भारत में एक उत्तम कोटि का और आदर्शरूप माना जाता है। भारतीय आर्य जनता की दृष्टि में साक्षात् देवस्वरूप समझे जाने वाले और देवता-ही-के समान पूजे जाने वाले गौ-वृषभ, जैसी श्रेष्ठ--आकृति और प्रकृति वाले राजस्थान में देखे जाते हैं वैसी जाति के भारत में अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई देते। हमारे प्रतापी पूर्वज युगातीत काल से, मरुस्थल के धोरी वृषभ की महती प्रशंसा करते चले आये हैं। यह वृषभ हमारे राष्ट्र के कल्याणकर देव 'शिव' का वाहन है—यह सचमुच ही हमारे राष्ट्र का 'नन्दी' (मंगलकर) राष्ट्रवाहक है।

और राजस्थान की निवासिनी जनता का तो कहना ही क्या? इसने तो अपने सद्गुणों के कारण संसार के इतिहास में एक विशिष्ट नाम प्राप्त किया है। भारत की अभिजातीय महत्ता और आर्यत्व की स्वाभिमानिता का जैसा रक्षण, इस निकटपूर्व इतिहासकाल में, राजस्थान की जनता ने किया है वैसा और किसी ने नहीं किया। अपने स्वधर्म और स्वदेश की रक्षा के निमित्त जैसा महान् उत्सर्ग राजस्थान के वीरों ने किया वैसा संसार में, शायद ही अन्य किसी ने किया हो। भारत के और सब प्रधान प्रदेश जब शताब्दियाँ पूर्व ही अपनी स्वतंत्रता संपूर्णतः खो बैठे हैं; तब, राजस्थान की सन्तान, उस स्वतंत्रता को, अब तक भी किसी न किसी स्वरूप में, निभा रही है। यह राजस्थान-ही-के सत्पुत्रों के किये हुए सर्वस्व त्याग का सुफल है कि आज भी हम राजपूताने के गाँव-गाँव में, उन प्राचीन देव-मन्दिरों को, अखण्ड रूप में खड़े देख रहे हैं, जो हमारी संस्कारिता के केन्द्र और कला के अद्वितीय स्मारक हैं। इन देव मन्दिरों के दिव्य-दर्शन कर, हम अपने उन पूर्वजों की लोकोत्तर धर्म प्रवणता और दानशीलता का कुछ निदर्शन कर पाते हैं। शैवों के एकलिंगेश्वर, जैनों के ऋषभदेव, और वैष्णवों के श्रीनाथजी जो विधर्मी म्लेच्छों के पाप-स्पर्श से अद्यापि अस्पृष्ट रह सके, वह राजस्थान-ही-की सुकर्मी सन्तानों के स्वर्गीय बलिदान का परिणाम है। काशी के विश्वेश्वर की, सोरठ के सोमेश्वर की और उज्जयिनी के महाकालेश्वर की दीपक-ज्योति, इस पिछले एक हजार वर्षों में, म्लेच्छों के दुष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आक्रमणों के कारण अनेक बार बुझ चुकी; परन्तु, राजस्थान के राष्ट्रदेव एकलिंगेश्वर की वह ज्योति, आज कम से कम तेरह सौ वर्ष से तो, अखण्ड रूप में जल रही है। इस दुनिया में इतनी पुरानी अखण्ड देव ज्योति और कहीं नहीं जलती होगी। इस ज्योति को खण्डित न होने देने के लिये राजस्थान के कितने किशोर, युवा और वृद्ध वीरवरों ने हँसते-हँसते, युद्ध की वेदी में अपने प्राणों की आहुति दे दी; और उन वीरों की कितनी सती मातायें, बहिनें, पुत्रियाँ और पत्नियाँ इसके लिये मंगल गीत गाती हुई अग्नि की भयंकर ज्वाला में स्वाहा हो गईं-इसकी गिनती कौन कर सकता है?

राजस्थान-निवासियों का यह जातीय-राष्ट्रीय-जीवन इस प्रकार केवल वीररस से ही परिपूर्ण मात्र न था। यह जीवन तो उसी तरह स्नेह, प्रेम, हास्य, करुण, वत्सल और शान्त आदि अन्यान्य उत्तम रसों से भी परिपूर्ण था। राजस्थान के वीर-जीवन की इस अनुपम गाथा की तरह, इसके स्नेह जीवन, शान्तजीवन, करुणजीवन आदि की गाथायें भी वैसी ही अद्भुत और रोमांचक हैं। राजस्थान के महाजनों में वीर, धीर, उदात्त और ललित आदि सभी प्रकार के उत्तम जीवन के आदर्शभूत, अनेक पुरुषपुंगव हो गये हैं। इनमें से, राजस्थान के वीरजीवन का कुछ परिचय तो, महामति इंग्रेज कर्नल जेम्स टॉड के 'राजस्थान' इतिहास के प्रकट होने के प्रारम्भ से ही संसार को होना शुरु हो चुका था; और वह अब विशेष रूप में, राजस्थान के अद्वितीय इतिहासज्ञ और विद्वद्रत्न म० म० पण्डित प्रवर श्रीयुत गौरीशंकरजी ओझा लिखित 'राजपूताने का इतिहास' नामक महान् ग्रन्थ-रत्न के प्रकाशन से हो रहा है। लेकिन इस वीरजीवन की कथाओं के सिवा, राजस्थानियों के उक्त अन्यान्य रसपरिपूर्ण जीवन की जो असंख्य जातीय कथायें हैं उनका परिचय करने-कराने का अभी तक कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं हुआ है। विद्वानों का लक्ष्य, अभी तक, खास करके, राजवंशों से संबद्ध राजकीय इतिहास का संकलन और संशोधन करने तक ही सीमित है। समग्र प्रजा जीवन से संबद्ध व्यापक इतिहास का अनुसन्धान कर, प्रजाकीय सामाजिक संस्कारों और सामूहिक व्यवहारों के इतिहास के विषय में, व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करने की तरफ अभी तक हमारा कोई प्रयत्न नहीं है। जातीय और राष्ट्रीय जीवन का ठीक-ठीक स्वरूप जानने के लिये प्रजा समूह के विविध धार्मिक भाव, सामाजिक संस्कार, लौकिक व्यवहार और वैयक्तिक कार्य-कलाप इत्यादि विषय में हमें खूब अन्वेषण और पर्यालोचन करना चाहिए। राजस्थान में इस विषय की साधन-सामग्री अब भी यथेष्ट प्रमाण में उपलब्ध हो सकती है। राजस्थान इस सम्पत्ति से अब भी बहुत कुछ समृद्ध है। लेकिन इसकी यह सम्पत्ति न इन राजा-महाराजाओं के बड़े बड़े महालयों में रक्षित है और न श्रीमान् सेठ-साहूकारों की हवेलियों और हाटों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में संचित है। यह तो दबी पड़ी है उन उज्जड़प्राय बने हुए गाँवों के टूटे-फूटे पुराने क्षुद्र घरों में। इस संपत्ति का बहुत-सा भाग या तो इन घरों में रहने वाले अज्ञान और गरीब दिखाई देते हुए वृद्ध नर-नारियों की लूखी-सूखी जीभ में भरा हुआ है या दुरवस्थ यतियों, ब्राह्मणों और चारणों जैसे भिक्षोपजीवी जनों के पास, कटे फटे कपड़े के बस्ते में, बन्धे हुए सड़े-गले कागजों और पोथियों में लिखा पड़ा है। इन लोगों ने, चाहे अज्ञानवश ही, आज तक इस सम्पत्ति को कुछ काम की समझ कर अन्धेरे की ओट में जैसे वैसे संभाल रखा। लेकिन हम शिक्षित और सम्पन्न समझे जाने वाले लोगों ने तो इसको कोड़ी की भी कीमत की नहीं समझा और इसकी रक्षा का किंचित् भी प्रयत्न नहीं किया। विदेशीय विभुता, विक्रम, विद्या और विचारों की चकाचौंध में आकर हम अपने जातीय जीवन के गौरव को खो बैठे; और हम कौन हैं और किस दशा में पड़े हुए हैं इसका भी हमें ठीक होश नहीं रहा। पर, अब कुछ कुछ हमारी यह मोहनिद्रा दूर होती दिखाई दे रही है और हमें अपनी दशा का कुछ कुछ मार्मिक भान हो रहा है। हम अपनी बेहोशी में क्या-क्या खो बैठे हैं और हमारी कौन सम्पत्ति किस तरह नष्ट हो गई है इसका थोड़ा बहुत खयाल हमें आ रहा है। हमारा प्रथम कर्तव्य अब यह है कि—हम शीघ्र ही अपनी इस जातीय और राष्ट्रीय जीवन-संपत्ति को, जो नाशोन्मुख हो रही है, गाँव-गाँव में भटक कर खोज निकालें और उसका रक्षण करें।

यों तो राजस्थान निवासी धन-सम्पत्ति का उपार्जन करने में बड़े कुशल और साहसी हैं। इस विषय में सारे भारत में इनकी खूब ख्याति है। भारतवर्ष के कोने-कोने में ये इस काम के लिये पहुँचे हुए हैं और सब कहीं से सोना-चांदी रूप जड़ धन संग्रह करके ये अपने देश में लाया करते हैं। लेकिन इनको अपने इस सांस्कृतिक-जीवन धन की कोई कीमत नहीं मालूम देती और इसलिये अपने ही घर में, इस अमोल धन का प्रतिक्षण नाश होते देख, इसके रक्षण का कुछ प्रयत्न नहीं करते। सोना-चाँदी जैसी मिट्टी रूप धन-सम्पत्ति तो बिल्कुल मिट्टी के घड़े जैसी क्षुद्रस्वरूप और क्षणस्थायी वस्तु है। उद्यमी कुम्हार, मिट्टी में से एक दिन में जैसे सैंकड़ों घड़े बना सकता है, वैसे ही उद्योगी व्यापारी एक दिन में हजारों लाखों रुपये पैदा कर सकता है। परन्तु जाति के इस संस्कार रूप जीवन धन के एक-एक कण के सर्जन होने में कई युगों का समय और अनेक आदर्श साधकों का स्वार्पण अपेक्षित होता है। सोना-चाँदी पैदा करने वाले तो रोज हजारों जन्म लेते हैं, लेकिन इस जातीय जीवन-धन का उत्पादन करने वाला वर्षों में कोई एक ही जन्म लेता है। यह ठीक है कि हमारी परवशता के कारण हमारा सोना—चाँदी जैसा क्षुद्र धन भी हमारे देश में से लुप्तप्राय हो गया है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम आज संसार की जातियों में निर्धनतम दिखाई देते हैं; एवं हमारी यह बाह्य आर्थिक दरिद्रता हमें इस जातीय सम्पत्ति का रक्षण करने में भी असमर्थ बना रही है। तब भी हमें इस सम्पत्ति का तो प्राणार्पण करके भी रक्षण करना परम आवश्यक है। हमारे जातीय जीवन का प्राणाधार तो यही धन है। इसके नष्ट हो जाने पर फिर हमारे जीवन में कोई सत्त्व ही क्या रहेगा। जिस दिन हमारे देश में--हमारी जाति में हेस्टींग्स् और क्लाइव की प्रतिमूर्ति सा, कोई कौटिलीय राजनीति का कुशल ज्ञाता पुरुष पैदा होगा, उसी दिन, हमारा देश सोना-चांदी की ईंटों से फिर भर जायगा। एक प्रताप, एक शिवाजी, एक रणजीतसिंह के अवतार लेते ही, सात समुद्र पार गया हुआ हमारा वह सब सोना–चांदी, मय सूद के, वापस आ सकता है। लेकिन नष्ट हुए इस सस्कार धन का कौन कहां से वापस ला सकता है?। अगर हमारे पास हमारा यह जातीय धन विद्यमान है और इसके संरक्षण की हमने यथेष्ट सावचेती रखी तो–वह दिन अब दूर नहीं है, जिसमें हमारा इस आर्थिक दरिद्रता और राजकीय परवशता से उद्धार होने वाला है। हमारी दृष्टि में तो देश के वे ही पुरुष सच्चे रक्षक और उद्धारक हैं जो प्रजा की इस जीवन–सम्पत्ति की यथाशक्ति रक्षा करते रहते हैं।".

इस वक्तव्य के अन्तिम वाक्य में, जो विधान मैंने किया है उसकी ओर मैं आपका विशेष लक्ष्य दिलाना चाहता हूँ। मेरी दृष्टि में प्रजा की इस जीवन सम्पत्ति के सच्चे रक्षक और उद्धारक कौन हैं सो आप समझ ही गये होंगे। वे और कोई नहीं लेकिन खुद आप स्वयं–साहित्य सेवी गण–ही हैं। इस सम्पत्ति के रक्षक न राजा लोक हैं और न राजनीतिज्ञ नेतागण हैं। राजा और राजनीतिज्ञ, किसी अर्थ में कुछ रक्षक हो सकते हैं तो वे सिर्फ हमारी इस मिट्टीमय भूमि के और धातुमय जड़ सम्पत्ति के। लेकिन प्रजा के इस आंतरिक जीवन सम्पत्ति के रक्षक और उद्धारक तो वे ही हैं जो साहित्यिक नेता और साहित्योपासक विद्वान् हैं। मैंने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि हमारे लिये तो भारतवर्ष की पुरातन संस्कृति के रक्षक पुरुष रामचन्द्र और कृष्ण नहीं हैं परन्तु महर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास हैं। इन साहित्य सम्राट् महाकवियों ने यदि रामायण और महाभारत की रचना न की होती तो हम यह कैसे जानते कि भगवान् रामचन्द्र और योगेश्वर श्रीकृष्ण कौन थे और उन्होंने क्या किया था। इतिहास दृष्टि से भी विचार किया जाय तो हमको मालूम होगा कि जिन सामान्य राजाओं ने भी साहित्य सेवियों का सत्कार और सम्मान किया, उनकी कीर्तिकथा हमारे कानों में गूंज रही है और जिनके भाग्य में ऐसे साहित्यिकों का आशीर्वाद नहीं लिखा गया, वे बड़े-बड़े सम्राट हो कर भी हमारे लिये कीड़े-मकोड़े के जीवन की तरह कुछ भी स्मृति नहीं रख गये। संस्कृत के एक कवि ने कहा है कि सम्राट चाहे भले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने क्षणजीवी स्थूल ऐश्वर्य की रक्षा, खड्ग की धारा-से-स्वकीय बाहुबल से कर सके परन्तु अपने चिरजीवी–यश की रक्षा तो वह किसी सत्कवि की कृपा से, उसकी वाणीद्वारा ही कर सकता है। इस प्रकार राजा और प्रजा के इस जीवन-धन के सच्चे रक्षक आप साहित्य-सेवी जन ही हैं। राष्ट्र के सार्वजनिक भाग्य-निर्माण और भाग्य-रक्षण का भार आप ही के ऊपर निर्भर है।

ईश्वर ने आपको वह शक्ति दी है जिसका आप सदुपयोग करें तो इस मृतप्राय जाति को कुछ ही समय में प्रबल पौरुषवाली बना सकते हैं–अज्ञान के पंक में आकण्ठ गर्क बनी हुई इस प्रजा को, विज्ञान के मैदान में सबसे आगे दौड़ा सकते हैं। अगर आप अपनी ईश्वरदत्त इस महाशक्ति का राष्ट्रनिर्माण के लिये ऐसा सदुपयोग नहीं करते तो आप ईश्वर और राष्ट्र के सामने अपने को बड़ा अपराधी सिद्ध करते हैं। इस दशा में आपकी यह प्रतिभाशक्ति आकाश में चमकती हुई बिजली की तरह निरर्थक ही है। इससे हमारी जाति का कोई उपकार नहीं होता। आपको ज्ञात ही है कि आज संसार में ऐसी जीवित जातियाँ, अमर्ष की उत्तेजना से उद्विग्न हो उठी हैं कि जिन्होंने जाति के स्वमान की रक्षा के लिये और राष्ट्र के अपमान को रसातल में पहुँचाने के लिये, आइनस्टाइन जैसे जगत् के अद्वितीय वैज्ञानिक को और **'ऑल क्वाइट ओन धी वेस्टर्न फ्रन्ट'** जैसे जगद्–विख्यात उपन्यास के लेखक एरिश मेरिया रेमार्क को अपने देश में से सदा के लिये निकाल दूर कर दिया। यदि किसी साहित्य सम्राट की कृति से राष्ट्र के संस्कार ओजस् को–जाति के आत्मतेज को हानि पहुँचती है तो वह जागृत जाति की दृष्टि में एक हीन व्यक्ति है। हमारी आर्य संस्कृति उसे म्लेच्छ कहती है।

इन शब्दों के उच्चारण में यदि आपको कुछ रौद्र रस की उग्रता का आभास मालूम दे तो, मुझे क्षमा करें। मनुष्य के हृदय में केवल शृंगार करुण या शान्तरस ही नहीं रहते। इनके अलावा वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स आदि रस भी उतने ही महत्व के हैं–जिन सबके भावों के उद्रेक से जीवन की परिपूर्णता होती है। परिपूर्ण जीवन वाली मनुष्य जाति ही संसार में श्रेष्ठता प्राप्त करती है। जो जाति निसर्ग के इस सनातन नियम की उपेक्षा करती है अगर अवहेलना करती है वह अपना विनाश निकट बुलाती है। प्रकृति-स्थित समग्र भावों का समत्व ही पूर्ण आरोग्यता का लक्षण है। इनमें से किसी एक भी भाव का न्यूनाधिकत्व होने से शरीर में व्याधि उत्पन्न होगी और यदि उसका उचित प्रतिकार न किया जाय तो वह जीवन के नाश का कारण होगा।

आप साहित्य-सेवी राष्ट्र के भाववैद्य हैं। आपका कर्तव्य है कि राष्ट्र के आरोग्य की पूरी सम्भाल रखें और इसके संवर्द्धन और संरक्षण का अप्रमत्त भाव से प्रयत्न करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सज्जनों, यह तो मेरे व्याख्यान का एक प्रास्ताविक सा अंश है यदि मैं उसे लिख पाता, वह होता जिसमें हिन्दी और राजस्थान के सम्बन्ध की आवश्यक विचारणा का ऊहापोह किया जाता। हिन्दी भाषा और हिंदी साहित्य, राजस्थान और हिन्दी का सम्बन्ध, हिन्दी और राजस्थानी बोलियों का सम्पर्क, राजस्थान और हिन्दी की परस्पर लेन-देन, राजस्थान में हिन्दी का अधिकार और प्रचार, राजस्थान की साहित्य समृद्धि—इत्यादि बहुत-सी प्रासंगिक और आनुषंगिक बातें मेरे मन में घुल रही हैं जिनके विषय में, विस्तार के साथ, इस व्याख्यान द्वारा, में अपना निवेदन आपके सम्मुख उपस्थित करता। परन्तु जैसा कि आप जान चुके हैं, मेरे स्वास्थ्य ने, अपने इस व्याख्यान के लिखने में, मुझे बिलकुल असमर्थ कर दिया और वे सब मन की बातें मन ही में दबी रहने जैसी हो रहीं।

यद्यपि हिन्दी के वर्तमान प्रभाव, प्रसार और प्रकार इत्यादि के विषय में मुझे कोई खास बात कहने जैसी नहीं लगती, तथापि इसके प्राचीन इतिहास, विकास और व्यापकत्व आदि के विषय में कुछ बातें अवश्य कहने लायक हैं।

जैसा कि मैंने पहले सूचित किया, मेरे अध्ययन के प्रिय विषय, हमारा प्राचीन इतिहास और भाषा विकास विषयक हैं। इसलिये मैंने इस विषय में यथा-बुद्धि और यथाशक्ति कुछ संशोधन, संपादन और संग्रह आदि का मौलिक कार्य किया है और सतत किये जा रहा हूँ। राजस्थान और गुजरात के पुरातन ग्रन्थ भंडारों का लगभग कोई 30 वर्षों से, मैं निरीक्षण करता आ रहा हूँ और इन भण्डारों में हमारे प्राचीन इतिहास और भाषा-साहित्य के साथ सम्बन्ध रखने वाली जो कुछ साधन-सामग्री मुझे दृष्टिगोचर होती रहती है उसका अध्ययन और अवलोकन करता हूँ। मेरे इस अध्ययन और अवलोकन से मुझे ज्ञात हुआ कि हिन्दी भाषा के प्राचीन इतिहास, क्रम विकास, सवर्द्धन, रूपान्तर और अवस्थान्तर इत्यादि के बारे में विद्वानों ने अभी तक बहुत कम अन्वेषण किया है और बहुत कम तथ्य प्राप्त किया है।

यद्यपि इतःपूर्व कई अध्ययनशील योग्य विद्वानों ने हिन्दी भाषा के इतिहास और साहित्य के स्वरूप को प्रकाश में रखने के लिये अनेक अभिवादनीय प्रयत्न किये हैं और छोटे-बड़े कई ग्रन्थ लिखे-लिखाये हैं; तथापि उनमें हिन्दी के प्रारंभिक मूल स्वरूप का और उसके विस्तृत आकार-प्रकार का सम्यक् परिचय कराने वाली तथ्यपूर्ण सामग्री बहुत कम देखी जाती है।

पुरातन हिन्दी अथवा पुरातन राजस्थानी के—जिसकी एक उप शाखा पुरातन गुजराती भी है—क्रम विकास का शृंखलाबद्ध और सुव्यवस्थित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान कराने वाली जितनी विशाल साहित्य सामग्री राजस्थान के पुराने पुस्तक भण्डारों में और अन्यान्य व्यक्तियों के अधिकारों में अब भी जो विद्यमान है उसका इन अध्ययनशील लेखकों और अध्यापकों को कुछ भी पता नहीं है। मेरे अवलोकन में ऐसी छोटी बड़ी सैकड़ों नहीं हजारों कृतियाँ आई हैं जिनके अध्ययन और संशोधन से, हम अपनी भाषा के जीवन-क्रम का बड़ा अपूर्व ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इन कृतियों के आधार से हम अपनी भाषा के, कम से कम विक्रम की ८ वीं शताब्दी के अन्त से लेकर १८ वीं शताब्दी के अन्त तक के, १ हजार वर्षव्यापी जीवन काल का, बहुत कुछ क्रमिक ज्ञान उपलब्ध कर सकते हैं।

यहाँ पर इन कृतियों का थोड़ा-सा नाम निर्देश करना भी मेरे लिये अशक्य हो गया है तो फिर उनके ठीक-ठीक परिचय के कराने की तो बात ही कहाँ रही। पर आशा है कि आप इसका परिचय, आज नहीं तो कुछ समय बाद, मेरे अन्य लेखादि द्वारा प्राप्त कर सकेंगे।

मेरे इस अन्वेषण और अध्ययन काल में, ऐसे सैकड़ों पुरातन ग्रंथ देखने में आये जो हमारी भाषा के प्रत्यक्ष अंग न होकर भी उसके अंग-प्रत्यंगों की संकलना में बड़ी मूल्यवान सामग्री की पूर्ति करनें वाले हैं। ये ग्रंथ खास कर प्राकृत भाषा में हैं और कुछ संस्कृत में भी हैं।

विक्रम की ८ वीं शती के अन्त में, इसी मेदपाट (मेवाड़) में चतुर्दश विद्यापारगामी हरिभद्र नाम का एक महान् ब्राह्मण पण्डित हो गया, जो राजपुरोहित था। उसने एक दिन, चित्रकूट के किसी जिनचैत्य में रहने वाली याकिनी, नामक तपस्विनी जैन आर्यिका के मुख से रास्ते में जाते हुए, एक प्राकृत भाषामय गाथा की ध्वनि सुनी, जिसका अर्थ उसकी समझ में कुछ नहीं आया। उस सर्वविद्यानिधि को यह अभिमान था कि संसार में ऐसा कोई शाब्दिक विषय विद्यमान नहीं जिसका अर्थ मुझे ज्ञात न हो। पर उस आर्यिका की पढ़ी हुई गाथा का अर्थ न समझकर वह अपने ज्ञानवर्ग से विमुख हुआ और उस आर्यिका के पास जाकर शिष्यभाव से उसने उस गाथा का अर्थ पूछा। आर्यिका बड़ी वत्सलता के साथ उसे अपने गुरू के पास ले गई, जो ज्ञानपूर्ण होकर भी विनम्रता की उत्कृष्ट मूर्ति थे। हरिभद्र ने उन गुरू के समागम से कोई अपूर्व सम्यग्दृष्टि प्राप्त की और अन्त में वे उनके अन्तेवासी हो गये। जैन सम्प्रदाय में जितने समर्थ ग्रंथकार हो गये उनमें हरिभद्र का स्थान सबसे ऊँचा है। संस्कृत और प्राकृत भाषा में उन्होंने बड़े प्रौढ़ और गम्भीर विषयों के सैकड़ों ग्रन्थ बनाये। भट्टकुमारिल और शंकराचार्य की कोटि के वे महान् दार्शनिक ग्रंथकार थे। उनकी एक विशिष्ट और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुपम प्राकृत कथा–रचना है जिसका नाम 'समराइच्चकहा' है। दस हजार श्लोकसंख्या जितनी यह विशाल कृति है। इस ग्रंथ में मैंने ऐसे अनेक शब्द पाये जो अपनी भाषा के खास देश्य शब्द हैं।

इस प्राकृत कथा के जैसा ही एक दूसरा संस्कृत कथाग्रंथ है जिसका नाम 'उपमितिभवप्रपच कथा' है। इसका प्रणेता सिद्धर्षि नामक एक जैन विद्वान् यतिवर था, जो परम्परागत श्रुति के अनुसार महाकवि माघ का चचेरा भाई था। यह मारवाड़ के प्रसिद्ध उसी पुरातन शहर भिन्नमाल का, जो एक समय में सारे राजस्थान का सांस्कृतिक और राष्ट्रीय केन्द्र था, रहने वाला था। यह विद्वान् यति पूर्वावस्था में एक बड़े धनाढ्य साहूकार का पुत्र था और इसके बहुत सुशील रूपसुन्दरी पत्नी भी थी। पर यह दुष्ट मित्रों के संसर्ग के कारण नामी जुआरी बन गया। रोज रात के वक्त बहुत देर से घर में आते रहने के कारण, इसकी माता ने दुःखी होकर, एक दिन, इसे शिक्षा देने के निमित्त, घर के दरवाजे बिल्कुल नहीं खोले। तब अन्धेरी रात, किसी आश्रयस्थान में बिताने के निमित्त, यह इधर-उधर की गलियों में भटकने लगा तो इसने एक पुराना-सा मकान देखा जिसके दरवाजे यों ही खुले पड़े थे और अन्दर बैठे हुए कोई मुनि मन-मन में ईश्वर के नाम की माला फेर रहे थे। यह जुआरी वहाँ जा चढ़ा और उन मुनि के पास शान्ति से बैठ गया। सारी रात उसी तरह चुपचाप बैठे रह कर बिताई और सवेरा होने पर मुनि से कुछ उपदेश सुना। इस उपदेश से इसको अपने निकृष्ट जीवन से उपरति हो आई और अन्त में यह उन मुनि का शिष्य बन गया। दीक्षित हुए बाद इसने खूब विद्याध्ययन किया और फिर नामी साहित्यकार बना। इसकी उक्त 'उपमिति भवप्रपंच कथा' सारे ही संस्कृत साहित्य में एक अपूर्व कृति समझी जाती है। संस्कृत-भाषा के इस महान् ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने ऐसे सैकड़ों शब्दों का व्यवहार किया है जो संस्कृत के कोषों में नहीं मिलते और जो देश्य भाषा के स्वत्व समझे जाते हैं। हमारी भाषा के इतिहास और विकास में इनका बहुत ही अधिक महत्त्व है।

विक्रम संवत् ८३५ में जिसकी रचना समाप्त हुई, ऐसा एक और महान् प्राकृत कथा-ग्रंथ है, जिसको मैं वर्तमान में छपवा रहा हूँ। यह रचना, मारवाड़ के जाबालिपुर (वर्तमान जालोर) में, जबकि प्रतिहार सम्राट नरहस्ती वत्सराज राज्य कर रहा था, पूर्ण हुई। यह ग्रन्थ देश्य भाषाओं के इतिहास की दृष्टि से बड़ा ही अपूर्व है। इसमें भारत की तत्कालीन १८ देश-भाषाओं के कुछ वाक्यांश ग्रथित है। राजस्थान की बहुत–सी बोलियों में जो 'तू' की जगह 'थु' ऐसा उच्चारण किया जाता है, यह उच्चारण इसी रूप में, मुझे इस एक हजार वर्ष के पहले के बने हुए ग्रंथ में मिला है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और इसकी पुरानी हस्तलिखित प्रति, जो ताड़पत्र पर लिपिबद्ध है, सं० ११३९ की लिखी हुई है और जैसलमेर के भण्डार में अभी तक सुरक्षित है।

भरत के नाटचशास्त्र में लिखा हुआ मिलता है कि अर्बुदगिरि (आबू पहाड़) के आसपास के लोगों की बोली में 'तकार की बहुलता' यानि 'त' अक्षर की अधिकता पाई जाती है। आज तक किसी भाषातत्त्वविद् पण्डित को यह पता न लगा था कि इस तकार बहुलता का तात्पर्य क्या है। मेरे अवलोकन में इस 'तकार बहुलता' का कुछ स्वरूप नजर आया जिसका उल्लेख मैंने अपने अहमदाबाद वाले, गुजराती साहित्य-सम्मेलन में दिये गये, व्याख्यान में किया है। विक्रम की ६ठी, ७वीं, ८वीं शताब्दी के कई ग्रंथों मे मुझे इस तकारबहुला भाषा के सैकड़ों उदाहरण मिल आये हैं।

राजस्थानी और हिन्दी में प्रसिद्ध दोहा छन्द के प्राचीनतम उदाहरण मुझे ३री ४थी शताब्दी की रचनाओं में देखने को मिले। ८वीं, ९वीं शती की कृतियों में 'चउपई और 'छप्पय' के दृष्टान्त भी उपलब्ध हुए। उसके बाद, १०वीं, ११वीं, १२वीं शताब्दियों के दरम्यान की तो अनेक बड़ी-बड़ी रचनायें उपलब्ध हुई और उनमें से कई अब प्रकाशित भी हो रही हैं।

१२वीं शताब्दी की एक रचना में, किसी लोक प्रसिद्ध आभाणक का सूत्र सूचक यह दोहा उद्धृत किया हुआ मिला है—

खडी गड्डी बैल तुहुं बेटा जाया तांह ।
रण्णिवि हुंति मिलावडा मित्त सहाया जांह ।।

देखिये हमारी भाषा का कितना निकट स्वरूप इसमें उद्घोषित हो रहा है—

इसी १२वीं, १३वीं शताब्दी का एक ताड़पत्र-लिखित ग्रंथ मुझे पाटन के प्रसिद्ध भण्डार में उपलब्ध हुआ है, जिसका प्रकाशन शीघ्र ही, बम्बई के भारतीय विद्याभवन द्वारा होने वाला है। किसी दामोदर नामक ब्राह्मण विद्वान् की यह कृति है। पूर्वी हिन्दी भाषा द्वारा संस्कृत व्याकरण के कुछ प्राथमिक पाठ पढ़ाने के निमित्त इसकी रचना की गई है। इसी प्रकार का एक और प्रकरण ग्रंथ ज्ञात हुआ है, जो प्रायः १४वीं शती का है। इसके कर्ता का नाम है-संग्रामसिंह और कृति का नाम है 'बालशिक्षा'। जैसलमेर के भण्डार में इसकी असली प्रति विद्यमान है। इसमें अपनी राजस्थानी भाषा के व्याकरण की अच्छी सामग्री संकलित है।

राजस्थानी के प्राचीन गद्य का जिसमें बहुत सुन्दर उदाहरण देखने को मिलता है, ऐसा एक संग्रह, मैंने पुरातत्त्व मन्दिर में बैठ कर तैयार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया था, जो गुजरात विद्यापीठ ने प्रकाशित किया है। इस संग्रह में १५वीं शताब्दी के महत्त्व के गद्य अवतरण एकत्रित किये गये हैं। इन अवतरणों में जिस भाषा का परिचय हम पाते हैं, वह उस समय प्रायः उत्तर में दिल्ली से लेकर दक्षिण में दमण तक-जो कि वर्तमान गुजराती की दक्षिणी सीमा का अन्तिम स्थान समझा जाता है—समान रूप से समझी जाती थी और लिखी जाती थी। इस समय के, इस प्रकार के गद्य लिखाने के कई बड़े-बड़े ग्रंथ उपलब्ध होते हैं, जिनके अवलोकन से हमारी भाषा की प्राचीन समृद्धि का हमें बहुत कुछ वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है।

१३वीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी के अन्त तक में, राजस्थान में जो रास, भास, फाग, चउपई और प्रबन्ध इत्यादि पद्य-कृतियों का निर्माण हुआ है उसकी तो कोई गिनती भी करनी कठिन है।

ये सब कृतियाँ प्रायः उन जैन यतियों की हैं जिन्होंने हमारी भाषा के भण्डारों को सबसे अधिक समृद्ध और सबसे अधिक विस्तृत किया है। जब हम कबीर, दादू और रामस्नेही-पंथ के सन्तों की वाणी का आदरयुक्त आकलन करते हैं और अष्टछाप आदि के रचयिता वैष्णव भक्तों की रचनाओं का उत्साहपूर्वक परिशीलन करते हैं, तब हमें इन जैन यतियों की उन अनुपम कृतियों का भी वैसे ही आदर और उत्साह से अध्ययन करना चाहिए। यह मैं आपसे इसलिये नहीं कहता कि, मैं एक यतिशिष्य हूँ (नहीं 'था' ऐसा कहना चाहिए-क्योंकि अब तो मैं अपने आपको संप्रदायों से अतीत और जात-पात से परे ऐसा जीव मानता और कहता हूँ) लेकिन इसलिये कहता हूँ कि ये सब साहित्यकार हमारे राष्ट्र के और हमारे वाङ्मय के समान पोषक और परिवर्द्धक हैं। माता भारती की भव्य गोद में किसी प्रकार के धार्मिक, सामाजिक और साम्प्रदायिक भेदभाव को कोई स्थान नहीं है। यह माता अपने सब सन्तानों का समान रूप से पालन करती है।

इसी भारती माता के मंगलकर आशीर्वाद से हमारा परम कल्याण होगा। तथास्तु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक संस्मरण :

मुनि जिनविजय की आचार्य धर्मिता

ओंकार श्री (माणक)

एक हाथ में कलम और दूसरे में कुदाली, हृदय में करुणा और मन-मस्तिष्क में क्रान्ति—इतने सतेज स्वरूपों वाला विद्वान् राजस्थान ने सदियों बाद पैदा किया एक परमार क्षत्रिय वंश में—रूपाहेली गाँव का वह किसनसिंह, माँ का वह प्यारा रणमल और जन-जन का वह कालजयी किसान—विद्वान् था मुनि जिनविजय।

उनकी विद्वत्ता, शोधकीय विलक्षणता, संपादन—कुशलता, प्राच्य विद्या-निपुणता, कार्य-प्रवणता, संगठनात्मक एकात्मकता व देशभक्ति-परायणता के बारे में कम सही, पर लिखा जरूर गया है।

पर उनके आचार्यत्व का पक्ष—अभी पटाक्षेप में है। प्राचीन गुरुकुल परम्परा की कुलीन परम्परा के इस गुरुतर मानव के मन में विद्या-वैभव रसा-बसा था। अनेक शोधक इस युग संशोधक के चरणों में ज्ञानावनत रहे। तीन-तीन विषयों में एक साथ पी—एच० डी० डिग्री-अधिकृति सम्पन्न यह विरला ही साधु था जिस पर बम्बई विश्वविद्यालय ने सदा गर्व किया।

अघोषित विधान है विपुल, इस वसुधा का। रूढ़ अर्थों में नहीं कृतज्ञ भाव से कहें तो मुनि जिनविजय युगाचार्य थे—प्राच्य विद्यावतार !

मुझे याद पड़ता है कि जब मीरां की गिरधर-मूर्ति की प्रामाणिकता जुटाने में जब मुनिजी उदयपुर—चित्तौड़ के व्यापक भ्रमण के बाद जो तथ्य जुटा पाये थे उससे मेवाड़ राजघराना नाराज भले ही हुआ, पर मुनिजी का शोधाचार्य अपने सत्य पर कायम ही रहा। आचार्य मात्र ग्रन्थों का नहीं, युग-संदर्भों का, पाया तो मुनि जिनविजय सरीखा निर्भीक और स्वाभिमानी कभी नहीं।

आचार्य देवोभव :

एक विरल संस्मरण स्मरण में है। मैं और मेरे स्वर्गीय कवि—गीत-

उप सम्पादक, माणक, जोधपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार बन्धु श्री नन्दलाल दया 'अपूर्ण' चित्तौड़-भीलवाड़ा क्षेत्र के कवि सम्मेलनों में भाग लेकर चन्देरिया की ओर चल पड़े। हमारी यह प्रबल कामना थी कि मुनिजी के सर्वोदय आश्रम स्थित सर्वदेवायतन के उस महा-मनोषी के साथ कुछ प्रहर विताए जायं।

गुलाबी ठंडक थी, हम तीसरे प्रहर तक आश्रम पहुँचे। हमने देखा-एक कृशकाय वृद्ध दूर खेत में खड़ा है; हाथ में खुरपी और माथे पर किसानी धुमाल।

हम खेत में खड़े उस कृषक-मुनि के समक्ष हुए। पदवन्दन के साथ हमने अपना परिचय दिया। हम कवि हैं—यह जान मुनिजी ने आशीष मुद्रा में अपने हाथों हमारी पीठ थपथपाई। मुनिजी हमें एक सघन नीम के पेड़ के तले ले गये। मुनिजी के सामने हम पत्थर की साफ शिला पर बैठे। आज भी यह बैठक याद आती है तो मन मुदित हो उठता है कि कितना सौम्य, कितना शांत और सुखद-सुन्दर चन्देरिया का यह तपोवन था।

मैंने कहा न मुनिजी प्रकृतितः आचार्य थे। उन्होंने हमें उस दिन जो बात कही उसका सत्य अब साक्षात् हो रहा है। मुनिजी ने मुझसे पूछा—

❀ कविता क्यों करते हो ?

— आत्मानन्द और जन–जागरण हेतु ।

❀ जन जागरण का हेतु ?

— मातृभाषा राजस्थानी–चेतना का।

❀ नन्दजी, आपकी, कविता का हेतु ?

— मुनिवर, मैं पनवाड़ी हूँ। ओंकारजी के साथ मैंने भी पान का बीड़ा उठाया है घर-घर, जन-जन तक राजस्थानी का स्वर गुंजाने का।

इस हेतु–जिज्ञासा से धीर-प्रशान्त हुए मुनिजी ने राजस्थानी भाषा के सम्बन्ध में, कविता के बारे में और कर्ममय जीवन-यापन हेतु जो कहा, वह स्वर था—

सुनो ध्यान से :

"मातृभाषा मेरी भी राजस्थानी है। पर तुम कवि हो। कवि होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain; Digitizagtion by eGangotri

ही मनीषी है । तुम तो बोड़ाधारी कवि हो, यह बड़ी बात है । यह बीड़ा, पीड़ा का है । मात्र कविता की क्रीड़ा का नहीं । तुम्हें एक बात मेरी पीड़ा की कहूँ--सुनो ध्यान से—राजस्थान में राजस्थानी में लिखी लाखों पांडुलिपियाँ नष्ट होने से बचाने के लिए मैंने जो शुरुआत की, उसका प्रवाह सूख रहा है । सरकार में कोई असरकार आदमी इस पीड़ा को समझने वाला नहीं है, मैं अब थक चला । शरीर पर जो अतिचार करना था वह कर लिया और उसका भार भर ढो रहा हूँ । तुम ओंकार हो–बिन्दु संयुक्त और तुम हो नन्द नितनंदित । पारीक हो एक तुम कविता के । पारीक था एक कलम का । ठाकुर था एक कलम का, स्वामी था एक कलम का । तुम तीनों कलम कीर्तिवानों का संदर्भ समझे ना ! संदर्भ है उनकी चली—कलम का । अब 'वेलि' सूख रही है । 'दूहा' कालंगत हो रहा है । लोकगीत की जगह शोकगीत चल रहे हैं । यह त्रिवेणी थी राजस्थानी की । इसके सूखने की पीड़ा का इज़हार मैंने कई बार किया है । तुम लोग इस त्रिवेणी–साहित्य को पढ़ो तो तुम्हारी पीड़ा गहराएगी–नन्दजी ! यह पोड़ा कौन उठाएगा ?"

मुनिजी की इस गुरु-गम्भीर वाणी को सुनकर हम पहली बार राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रति प्रतिबोधित ही नहीं हुए बल्कि आत्म सम्बोधित भी । अपनी बात कहने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा—

❀ "आप कवि हैं, पत्रकार हैं, अकादमी के अहलकार हैं, एक बात बताइए आप अपने हाथ से रोज देश-सेवा कितनी करते हैं ?"

— मैं मुनि-प्रश्न सुन, सकपका गया । सोचा, जवाब के लिए जवाब देना ठीक नहीं । अतः कुछ क्षण रुक कर मैं बोला— "क्या कलम चलाना, साहित्य साधना करना देश-सेवा नहीं है मुनिजी ?"

❀ मुनिजी बोले—"तुम सर्वोदय आश्रम में हो । सर्वोदय कहता है अपना सारा काम अपने हाथों से पूरा करो । पराश्रित मत रहो । घर के काम में हाथ बँटाओ । घर के बाहर की सफाई करो । नाली गन्दी है साफ करो । गन्दगी फैली है घर–मोहल्ले में तो उसे बुहारो । कोई अन्याय कहीं होता है तो अहिंसक शक्ति को बढ़ाओ । अनपढ़ को अक्षर ज्ञान कराओ । जनता को संविधान समझाओ । घर में तुलसी का पौधा ही लगाओ खेती-बागवानी की जगह । प्यासे जीव–जिनावरों को पानी पिलाओ । फुर्सत का समय निकाल कर फिर स्वाध्याय भी करो, लिखो भी । ये सारे काम देश-सेवा के हैं । कोरी कविता किस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काम की ? कविता तो बेचने बेचाने की चीज नहीं । हाँ, सबसे बड़ी देश सेवा करो तो ग्रन्थ बचाओ । एक ग्रन्थ बचाना–एक वृक्ष लगाना और एक मनुष्य साक्षर करना—यह करना है तो बोलो·······? अन्यथा यह आश्रम कवि–विहार थोड़ा ही है, सैर सपाटे का ।"

मुनिजी की इस तेजवन्त–आचार्य-वाणी के दीक्षान्त–प्रतिबोधनः का जब भी स्मरण हो आता है तो मन कहता है—तुमने मुनिजी की कही का क्या पालन किया ? मैं मन को साक्षी देता हूँ—'घर का काम मुनिजी की प्रेरणा से अनवरत करता हूँ, घर के बाहर की सफाई तथा ग्रन्थ-वृक्ष संरक्षण का कार्य यथा साधन सतत् जीवन्त किये हुए हूँ । ये कार्य कर मैं साक्षर हो रहा हूँ । मुनिजी का यह आचार्य स्वरूप हम दोनों कवि-हृदयों को मिला, यह पूर्व-जन्म का सुकृत्य ही कहा जाएगा । श्री नन्दलालजी तथा 'अपूर्ण' जब तक जीवित रहे, जीव-जिनावरों को पानी पिलाने तथा पान की दुकान में बैठे स्वाध्याय का यज्ञ चेताते ही रहे । आचार्यदेवो भव ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

SCHOLAR WHO HELPS SPREAD WISDOM OF THE AGES

Prof. K. B, Vyas.

Small political events are often over-lauded, while events of great academic interest and importance are glossed over. Such an event was the conferment of the honorary membership of the German Oriental Society on Acharya Muni Shri Jinavijayaji a few years ago.

Jinavijayaji was the second Indian scholar to be honoured thus, Sir R. G Bhandarkar being the first.

Retiring Nature :

It would appear a little strange that a scholar of such colossal stature is not more widely known. This is, no doubt, a reflection on our present set of values and pattern of life. Muni Shri Jinavijayaji's quiet, retiring temperament, so characteristic of great scholars, may also have partly contributed to this.

He shrinks from the glare of publicity and devotes himself whole-heartedly to his scholarly work-study and publication of rare ancient literary and historical works in Sanskrit, Prakrit and early Indian languages, a field in which he has hardly a compeer in India today. In the elite circles particularly of Rajasthan and Gujarat he is recognised as a great savant.

Born over seventy years ago in a Rajput family in a small hamlet in Mewad, he was brought up in an entirely orthodox atmosphere. This afforded him an opportunity for the study of the old manuscripts of Sanskrit Prakrit, and new Indo-Aryan works preserved in the Jain Bhandars.

Not tutored in the normal way, he managed to acquire, by

Ex. Head of the Deptt of Gujarati Language and Literature, Elphinstone College, Bombay.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

his own herculean efforts, a commendable mastery over Sanskrit, Prakrit and Apabhramsha languages and their literatures, and became a keen student of ancient Indian History. His erudition attracted the notice of all India leaders as early as the twenties.

Patriotic Call :

Gandhiji called him away from his researches at the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona in 1922 to take over the Puratatvamandir—the Archaeological and Ancient History section of the Gujarat Vidya Pith (The National University) founded by Gandhiji at Ahmedabad. He did this work admirably.

Soon he became one of the brightest luminaries in the sphere of Indological research. At the Puratatvamandira. he had an equally distinguished colleague in the late Acharya Dharmanand Kosambi,

Jinavijayaji proceeded to Germany to widen his contacts and explore new fields in Indological research. There he did excellent work in fostering better understanding between the German scholars and the Indian residents there. His work evoked considerable interest in Indian political circles and Gandhiji warmly approved of his activities.

Soon, the historical salt satyagraha, was launched by Gandhiji and the scholar was sensible to this patriotic call. Muniji rushed back to India to participate in the freedom movement and courted imprisonment.

On his release, the Gujarat Vidya Pith was no longer functioning. This time Gurudev Tagore sent a pressing invitation to him to come to Shantiniketan to take over the Department of Prakrit and Jainistic studies in the Vishva Bharati University.

It was here that he stared the Singhi Jain Series, financed by the munificence of the late Bahadursinghji Singhi. Under Muniji's able guidacne as a general editor and with the co-operation of eminent Indologists all over India, the Singhi Jain Series won well-merited fame as one of the most outstanding series of publications in Indology today.

Under its auspices various rare Sanskrit and Prakrit works of great literary and historical value have been published so far,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

In 1938, when Shri K. M. Munshi founded the Bharatiya Vidya Bhavan, Muniji was invited to be the head of the department of Prakrit and Jainistic studies, and later on, to become its Director.

Muniji, in fact, remained the soul of the academic and research activities of the Bharatiya Vidya Bhavan for well over a decade. Subsequently his home province, the newly-formulated State of Rajasthan, claimed his services for organising and directing the Rajasthan Puratattva Mandir, modelled on the Bhandarkar Oriental Institute, Poona and the Gujarat Puratattva Mandir, Ahmedabad.

Under Muniji's benign care and guidance the Rajasthan Puratattva Mandir has been flourishing as a research centre in Indology. The Puratattva Mandir has acquired a collection of over two thousand rare manuscripts pertaining to various subjects.

Honour Given :

Some of these works have been already edited and published in the Rajasthan Puratattva Series and have won the highest praise from scholars all over the world. It was in recognition of Muniji's unparalleled record of invaluable research work in Indology that the German Oriental Society conferred on him honorary membership of the society, which is not only the most outstanding distinction that any Indian scholar can win, but also a great honour for the country.

This veteran savant, though suffering from loss of vision in one eye and severe myopia in the other, is still pursuing his work of critically studying rare old manuscripts, editing them, supervising their publication, correcting every set of proofs that comes from the presses in the various parts of the country where the publication works under his editorship are in progress.

HE MUST HAVE, BY NOW, BROUGHT OUT OVER A HUNDRED VOLUMES, ALL OF GREAT LITERARY AND HISTORICAL VALUE, AND HAS MATERIAL READY FOR AT LEAST ANOTHER HUNDRED VOLUMES.

He hopes to bring to light this great knowledge which has been lying for ages buried in obscurity. We only hope that he will be spared to complete this work to which he has dedicated himself for the last forty years.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(परीशिष्ट १)

स्व. मुनिश्री जिनविजयजी

के

कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र सहयोगियों के नाम

पत्रांक–1

आचार्य जिनविजय मुनि
डायरेक्टर, भारतीय विद्या भवन
अध्यक्ष, प्राकृत एवं हिन्दी शिक्षापाठी
तथा जैन शास्त्र शिक्षापाठी
सिंघी जैन ग्रन्थ माला
"भारतीय विद्या"

भारतीय विद्या भवन
हाई वे रोड, चौपाटी, बम्बई-7
निवास–मोतीवाला बिल्डिंग
चौथा मंजला, प्रोक्टर रोड
ग्राण्ट रोड स्टेशन
बम्बई-7 ता. 17/9

प्रिय बन्धुवर श्री केशरपुरीजो योग्य

सस्नेह। कुशल पूर्वक आपका पिछला ता० 30-8 का लिखा पत्र यहाँ, बम्बई होकर अहमदाबाद में मिला। मैं कार्यवश बीच में अहमदाबाद चला गया था। आशा है अभी आप पूर्ण विश्रान्ति ले रहे होंगे। और स्वास्थ्य ठीक बन रहा होगा। मैं यहाँ के कार्य में व्यस्त हूँ। चन्देरिया से समाचार मिलते रहते हैं और वहाँ पर पं० प्रभुदत्तजी व भाई फकीरजी वगैरह कार्य सम्भाल रहे हैं। स्कूल का काम कुछ शिथिल हो गया है। अभी पाँच-सात दिन पहले बन्धुवर श्री यज्ञदत्तजी का पत्र मिला था। उसमें उन्होंने आपसे मिलने करने का समाचार लिखा था तथा चन्देरिया के बारे में भी अपना मनोभिलाष प्रकट किया है। मैंने उनको पत्र लिखा है और जब मैं उधर आऊँ तो चन्देरिया आने का निमन्त्रण लिखा है। मैं यहाँ तारीख 21 को प्रस्थान कर अहमदाबाद जाऊँगा। और वहाँ ता० 4 को रवाना होकर 25 को जयपुर पहुँचना चाहता हूँ। वहाँ पर कुछ आवश्यक कार्य इकठ्ठे हो रहे हैं, उनको निपटाना है। फिर जोधपुर भी दो-एक दिन के लिये जाना होगा। तदनुसार चन्देरिया पहुँचना चाहता हूँ। बहुत करके ता० 5-4 तक वहाँ पहूँचूँगा। उसी समय श्री यज्ञदत्तजी को भी वहाँ बुलाना ठीक होगा।

भाई दरियाव सिंह जी के बारे में आपने जो लिखा है सो यथार्थ है। यदि मनुष्य को अपनी यथार्थ-सिद्धि करने निकलना है तो फिर शर्तें गारंटियों का ख्याल नहीं होना चाहिये। मैंने जो दो वर्ष का अवकाश लेने का सुझाव दिया है वह तो इस दृष्टि से उनको याद हो कि उस दरमियान उनको यह महसूस हो कि मेरे लिये तो वही पुराना कार्यक्षेत्र अधिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुकूल हो तो वापस उस स्थान पर पहुँच सकें। और नौकरी के चले जाने का कोई संकट नहीं। मैं केवल 2 वर्ष का प्रबन्ध इसलिये कराने को उद्यत हुआ कि उसका प्रबन्ध मैं कर सकूँगा। भविष्य के लिये आज मेरे पास कोई निश्चितता नहीं हैं। भविष्य का विचार तो हम सब मिलकर कर सकते हैं। इसमें उनकी भी सक्रिय प्रवृत्ति अपेक्षित होगी। मेरी दृष्टि से जो कोई स्थायी तत्त्व हैं वह तो उसके द्वारा चन्देरिया की भूमि हम जो कुछ प्राप्त कर सकें। वह परिश्रम-जन्य फल होगा। हमारी आशा तो ऐसी अवश्य है कि वहाँ बैठकर कुछ ठीक काम किया जाय तो उसके पोषक कुछ साधन भी उपलब्ध हो ही जावेगी। पर मैं उसका बन्धन नहीं स्वीकार करना चाहता। और, जो बन्दे इस प्रकार की मुझसे बन्धन की आशा रखें तो वह मेरे लिये अस्वीकार्य होगी। मैं मानता हूँ कि आप मेरी तरह इन बातों को और अच्छी तरह समझते हैं। और आपका अनुभव भी इस विषय में पर्याप्त है। सो आप ही इस विषय में सोच-विचार कर उनको स्पष्ट रूप से लिख दें।

मैं तो ऐसे राष्ट्र-सेवकों की कल्पना करता रहता हूँ। कि जो अपने ही परिश्रम से उत्पन्न किये गये निर्वाह-साधनों द्वारा जीवन-यापन करने का व्रत रखें, और परिश्रम करें। हमारे बाल-बच्चे भी परिश्रम करें। उसी के द्वारा हम अपना जीवन निर्वाह करें। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का विकास करें। नौकरी की आकांक्षा और मलसूवृत्ति का परिहार करें। उसे हेय समझेंगें। अपने बच्चों को तथा परिवार वालों को भी धनार्जन के लक्ष्य से विमुख कर सेवाधर्म के संस्कारोंमें परिपुष्ट करें। इसमें व्यक्ति और समाज दोनों का आध्यात्मिक विकास होगा और व्यावहारिक उन्नति भी होगी। मेरी दृष्टि में ऐसे ही लक्ष्य की ओर प्रवृत्ति करने वाले व्यक्ति सच्चे साधुजन होंगे।

चन्देरिया के बारे में, बहन के बारे में आपका प्रयत्न चालू ही होगा। इधर तो ऐसी बहनें सहज से मिल सकती हैं। उनके लिये वह प्रदेश अपरिचित होकर भाषा की दृष्टि से कठिनाई वाला लगता है।

पत्र का उत्तर आप अहमदाबाद के पते से दें।

वहाँ का पता इस प्रकार हैं--

अनेकान्त विहार
श्रेयस् कॉलोनी
पो० नवरंगपुरा
अहमदाबाद नं०9

आपका
मुनि जिनविजय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्रांक-2

अनेकान्त विहार
श्रेयस् कॉलोनी
पो० नवरंगपुरा
अहमदाबाद – 9
10-12-74

परमप्रिय श्री केशरपुरीजी गोस्वामी योग्य

सस्नेह। कुशल मंगल की शुभकामना पूर्वक आपका दि० 20-11-74 का लिखा पत्र 4–5 दिन पूर्व मिला। पशुओं की बलि रोकने के विषय में आपने जो ट्रेक्ट तैयार किया उसकी प्रतियाँ आज डाक से मिलीं। प्रसंगोचित पत्रिका ठीक है, पर मेरे नाम से अंकित कोई पत्रिका प्रकट करना ठीक नहीं है। सर्वोदय विचारमाला या ऐसे किसी नाम से पत्रिका निकालना उचित होगा। ताकि ऐसे काम के लिए किसी बहिन भाई को सहायतार्थ प्रेरित किया जा सकता है। इसका आप ख्याल रखें। ऐसे विचार पर ट्रेक्ट निकालना आश्रम के हित में हो सकता है और लोगों को मदद के लिए कहा भी जा सकता है। व्यक्तिगत नाम का कोई महत्त्व नहीं है।

मैं बहुत दिनों से आपके कुशल समाचार जानने की इच्छा रख रहा था। चन्देरिया छोड़ने के बाद आपके कोई समाचार नहीं मिले। मैंने भाई मांगीलाल को तथा नवरतनजी को भी आपके स्वास्थ्य के बारे में पुछवाया। आप एक दो बार चन्देरिया आकर गये थे, ऐसे समाचार वहाँ से मिले थे। आपका पत्र प्राप्त कर संतोष हुआ।

दिल्ली में पिछले दिनों श्रीमती सुचेता कृपलानीजी का दुःखद स्वर्गवास हो गया। आचार्य श्री कृपलानीजी के लिए यह इस अवस्था में बहुत ही शोक-संतापकारक घटना है। विधि की क्या योजना है, कौन जान सका है। उधर श्री जयप्रकाशजी को भी जीवन-सहचरी चली गईं। इधर श्री कृपलानीजी भी अकेले रह गये। बड़े पुरुषों के लिए विधाता का कोई ऐसा ही क्रूर नियम होता ही रहता है। किसी लोकभावी कवि ने कहा है कि—'दुःख बड़न को होत हैं, छोटे से दुःख दूर। तोरो को कुछ होत नहीं ग्रह चन्द्र और सूर।"

मैं यहाँ से इन दिनों में निकलने की सोच रहा था। परन्तु पिछले 12 दिन से पं० श्री सुखलालजी का स्वास्थ्य बहुत खराब हो रहा है। डा० वगैरह का पूरा इन्तजाम है। परिचर्या की भी पूरी सुविधा है। परन्तु अभी कोई आश्वासनदायक स्थिति मालूम नहीं देती। उम्र भी पूरी है। परसों 8 तारीख को 95वाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ है। मेरा और इनका सहवास तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्नेह सम्बन्ध 60 वर्ष से भी अधिक है। हम दोनों समान विद्यारूपी और समाज-सेवा की भावना रखते आये हैं। जो विचार देश और धर्म तथा मसाज की दुर्गति के विषय में मेरे बने हुए हैं, ठीक वैसे ही विचार इन पण्डितजी के भी बने हुए हैं। अभी प्रायः मृत्यु-सेवा जैसी स्थिति में पड़े हुए हैं तब भी ऐसी ही देश की दुर्दशा देखकर मनोव्यथा व्यक्त करते रहते हैं।

मेरा यहाँ पर रुकना इसलिए आवश्यक हो रहा है कि कब इनकी स्थिति गिरी, इसका कोई आभास नहीं हो रहा है। जैसी परमात्मा की इच्छा होगी, वैसा ही होगा।

मैंने भाई श्री नवरतनजी को आश्रम के बारे में लिखा है कि आश्रम की जमीन और पानी की जो सुविधा हो उसका पूरा-पूरा लाभ उठाने की कोशिश होनी चाहिए। इससे देश की भी सेवा होती है और आश्रम को भी लाभ ही होगा। मेरे दिल में कुछ कार्य करने की बातें आती रहती हैं, वहाँ पहुँचने के बाद सोचा जायगा।

शायद उस दवाखाने वाले अभी नहीं आये मालूम देते। स्कूल के कमरे खाली हो गये हों तो उनको और किसी को अभी मत देना। उनका कुछ उपयोग मैं सोच रहा हूँ। आपका स्वास्थ्य ठीक चल रहा होगा। कोई विशेष अभी नहीं है। अब तो मुझे पण्डितजी के स्वास्थ्य की चिन्ता लगी हुई है। 4-7 दिन में पण्डितजी का स्वास्थ्य कुछ ठीक मालूम दिया तो दिसम्बर की 23-24 तक चन्देरिया पहुँचना चाहता हूँ आप अभी इन दिनों में एक बार चन्देरिया की खबर अवश्य निकाल आने का कष्ट उठावें।

सबको आशीर्वाद।

आपका
मुनि जिनविजय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्रांक-3

अनेकान्त विहार
श्रेयस् कॉलोनी
पो० नवरंगपुरा
अहमदाबाद–9 [गुजरात]
ता० 27-5-76

भाई श्री नवरत्नजी पटवारी योग्य,

सस्नेह कुशल मगल की कामना पूर्वक आपका ता० 25 का लिखा पत्र आज मिला, समाचार मालूम हुए। श्री पुरीजी के नाम हमने एक पत्र आश्रम के पते पर लिखा था इसलिए कि उनको वह पत्र तुरन्त मिल जाय। भाई माँगीलाल शनिवार को आना चाहता था। इसके लिए भी पुरी जी को पत्र में बहुत सी बातें लिख दी थीं। भाई माँगीलाल तो रविवार की रात को यहाँ पहुँच गया इससे मालूम हुआ कि पुरीजी तो एक दिन रहकर वापस भीलवाड़ा चले गये। हमने उनको उद्देश्य करके आश्रम के बारे में बहुत सी बातें लिखी थीं। वे सब बेकार गईं उनको चाहिये था कि 4 दिन आश्रम में ठहर कर भाई माँगीलाल के वापस पहुँचने तक प्रतीक्षा करते।

खैर, आज आपके पत्र से मालूम हुआ कि आपने उनको वह पत्र भीलवाड़ा पहुँचा दिया है। मालूम नहीं उनको मिले या नहीं क्योंकि उनका भीलवाड़ा का निवास अव्यवस्थित है। शायद पत्र मिल जाय और वे कुछ जवाब लिखें तो हमको कुछ तसल्ली हो।

हमारा स्वास्थ्य बहुत खराब हो रहा है कई दिनों से जीने मरने के झोलों में झूल रहे हैं। भगवान की जैसी मरजी होगी वैसा होगा। मन तो चित्तौड़ किसी तरह पहुँचने का हो रहा है पर पहुँचना न पहुँचना यह तो भगवान ही जाने। आखिर में हमारा निश्चेतन शरीर सर्वोदय देवायतन के के आँगन में पहुँचाने की व्यवस्था हमने यहाँ पर कर रखी। आश्रम हमारे जीवन के अन्तिम श्वास तक मन में लगा रहेगा। पर दुर्भाग्य है कि आश्रम को अपनाने वाला राजस्थान में कोई दुर्भागी नहीं निकला। जैसी भगवान की इच्छा।

आपका
मुनि जिनविजय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्रांक-4

सर्वोदय साधना संघ
चन्देरिया
दिनांक 20-9-70

प्रिय भाई श्री केशरपुरीजी, अध्यक्ष सर्वोदय साधना संघ, चन्देरिया
एवं
श्री महेशचन्द्रजी व्यास, मन्त्री सर्वोदय साधना संग, चन्देरिया

मेरा बहुत दिनों से अहमदाबाद जाने का विचार चल रहा है और मैं अब जल्दी ही अहमदाबाद चला जाऊँगा। मेरा वहाँ से लौटकर आना निश्चित नहीं है।

सर्वोदय साधना संघ, चन्देरिया की वार्षिक सभा आप करने वाले हैं। उसमें आदरणीय श्री हरिभाऊजी, श्री गोकुलभाईजी, श्री सिद्धराज जी को भी आप बुलाने वाले हैं। किन्तु मैं शायद उस समय सभा में उपस्थित रह पाऊँ या नहीं। अतः अपनी भावना व विचार संस्था व आश्रम की भावी व्यवस्था के बारे में सभा के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए लिख भेज रहा हूँ।

मेरा स्वास्थ्य भी इन दिनों काफी कमजोर हो चला है। और अब मेरा जीवन भी ज्यादा लम्बा दिखता नहीं। अतः आप सब लोग जो मेरे साथ प्रेम रखते हैं और जिनके साथ मेरी आत्मीयता है, वे मेरी निम्नलिखित भावना व विचार के अनुसार आश्रम व संस्था के बारे में सोचकर उचित व्यवस्था कर दीजिये—

1. मेरी इच्छा है कि सर्वोदय साधना संघ, चन्देरिया एक रजिस्टर्ड संस्था है। उसके विधान में आवश्यक परिवर्तन करके संघ के आश्रम की सम्पत्ति, जायदाद, इमारतें, कुआ, मोटर, पम्प व अन्य साधन व 51 हजार जो स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर की चित्तौड़ शाखा में एफ० आई० डी० में जमा हैं—इन सबकी सुरक्षा हेतु एक ट्रस्ट का निर्माण करावें। ट्रस्ट में आप बहुत ही जिम्मेदार व्यक्तियों को लेवें; जो इसकी वर्तमान स्थावर-जंगम सम्पत्ति की पूर्णरूपेण सुरक्षा कर सकें। और बिना इसकी मूल सम्पत्ति को हानि पहुँचाये इसका किराया, कृषि, ब्याज आदि की आप से जो भी सर्वोदय विचार की सेवा हो सके वैसा कार्यक्रम ट्रस्ट स्वीकार कर संघ को कार्य करने के लिए प्रदान करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

2. संघ ऐसे कायक्रम जो सर्वोदय विचार के अनुकूल हों, चलायें। उसके लिए राज्य से अथवा किसी बोर्ड, ट्रस्ट अथवा दानी लोगों से सहायता भी लें परन्तु वह सहायता इसकी मूल सम्पति पर किसी भी प्रकार का भार नहीं डाल सके। यह मूल सम्पत्ति न रहन को जावे न वेचा जावे। 51/- हजार को स्थायी कोष के रूप में मानकर इसके व्याज को सेवा कार्यों में व्यय करें। परन्तु इस कोष में कमी न आने दें।

3. ट्रस्ट में श्री हरिभाऊजी उपाध्याय, गोकुलभाईजी भट्ट, श्री सिद्धराजजी ढड्ढा, श्री केशरपुरीजी गोस्वामी, मैं मुनि जिनविजय श्री लादूरामजी दुधाड़िया छापर, श्री रमेशचन्द्रजी ओझा, श्री नवरत्नमलजी पटवारी, चित्तौड़गढ़, श्री भंवरलालजी सिसोदिया चित्तौड़गढ़,—ये नौ व्यक्ति फ़िलहाल रहें। इनमें से एक व्यक्ति को मैनेजिंग ट्रस्टी के रूप में लिया जाय, जो दैनन्दिन सम्पत्ति की व्यवस्था संचालित करें तथा एक ट्रस्टो इस ट्रस्ट को कार्यालय व्यवस्था तथा मंत्री का कार्य करे। ये ट्रस्टीगण अपने कर्त्तव्य निर्वाहन के लिए आवश्यक-नियम उपनियम बना लें। उपरोक्त दृष्टि को ध्यान में रखते हुए संस्था के कार्य व व्यवस्था का संचालन करावें। इस व्यवस्था को खड़ो करने में आवश्यक हो तो कानूनी राय भी ले ली जाय ताकि आगे जाकर कोई कानूनो उलझन पैदा न हो। श्री भंवरलालजी सिसोदिया व श्री केशरपुरीजी को मेनेजिंग ट्रस्टी के रूप में लिया जाय।

4. आश्रम की वर्तमान व्यवस्था संतोषजनक नहीं है। 18 हजार करीब का ऋण राजस्थान खादी ग्रामोद्योग बोर्ड का है। उसको चुकाने का प्रथम दायित्व है। यह ऋण कृषि की आय, मकानों का किराया व व्याज की आय से प्रतिवर्ष 2 हजार चुकाये जायं तो 9 वर्ष में यह रकम चुकती हो जावेगी।

5. अभी एक स्कूल चलता है तथा कस्तूरबा ट्रस्ट का एक केन्द्र है जिसमें बालवाड़ो चलती है। दोनों हीं की स्थिति बहुत खराब है। अतः स्कूल को मेरो राय में तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। उसकी जवाबदारी नहीं उठानी चाहिए। बालवाड़ी कस्तूरबा ट्रस्ट चलावें तो अच्छी बहिन रखकर वें चलाते रहें। मेरी राय में खादा बोर्ड का ऋण चुकाने के बाद जो रकम बचे उससे एक वैद्य कार्यकर्त्ता रखा जाय जो आश्रम को व्यवस्था की देखभाल व हिसाव आदि रखे और एक औषधालय चलावे जिससे आस-पास के क्षेत्र की रोगी सेवा हो सके। अन्य प्रवृत्ति जो चलाई जाय तो वो बाहर की मदद से चलाई जाय।

6. अभी भाई महेश चन्द्रजी व्यास मंत्री के रूप में कार्य करते रहे हैं। इनके निर्वाह का भी प्रश्न है। साथ ही भाई भ्रमरचन्दजी सोनी जिन्होंने इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आश्रम व संस्था की सेवा की है उनके निर्वाह का भी प्रश्न है। दोनों के बारे में आप सहानुभूति पूर्वक सोचिये। दोनों विचार प्रचार व सर्वोदय के काम के लिए समर्पित तरुण हैं। इनको शक्ति का उपयोग हो। इस पर आप लोग सोचिये।

7. संस्था की कार्य समिति का पुनर्गठन भी आवश्यक है। चित्तौड़ क्षेत्र के लोगों को इसमें आप शामिल करेंगे तो क्षेत्र के लोगों की संस्था के साथ आत्मीयता पैदा होगी।

मैं सोचता हूँ कि मैंने इसमें आप सब लोगों की सेवा में अपने विचार लिख दिये हैं कि जिनसे संस्था व आश्रम के हित सुरक्षित रखते हुए इस आश्रम के द्वारा पूज्य विनोबाजो के विचारों को इस क्षेत्र में फैलाने में सफलता प्राप्त हो सकती है। आप सब विद्वान्, देशभक्त, कर्मठ लोकसेवक हैं। आशा है मेरी भावनाओं व विचारों को ध्यान में लेकर आप जो भी करेंगे, वह योग्य ही होगा।

सबको प्रणाम।

आपका
मुनि जिनविजय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्रांक–5

अनेकांत विहार
श्रेयस् कॉलोनी
पोस्ट–नवरंगपुरा
अहमदाबाद–9 (गुजरात)

दिनाँक
21–5–76

प्रिय श्री आत्मबन्धु केशरपुरी गोस्वामी,

सस्नेह। कुशल मंगल की कल्याण कामना पूर्वक बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद आज आपका पत्र मिला। आपके छूटने के समाचार मुझे भाई नवरत्नजी ने लिखे थे। मैंने उनको दो-तीन पत्र लिखे कि तुम भीलवाड़ा जाओ और श्री पुरीजी से मिलकर उनके स्वास्थ्य आदि के सब समाचार मुझे तुरन्त लिखो। परन्तु उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। उधर भाई मांगीलाल को भी दो-तीन पत्र लिखवाये पर उसका भी कोई जवाब नहीं आया।

मैं एक महीने से आश्रम की चिन्ता में व्याकुल हूँ। कोई उत्तर न मिलने से मुझे यहाँ पड़े-पड़े अनेक संकल्प-विकल्प हो रहे हैं। आज आपका पत्र मिलने से मेरे मन को कुछ समाधान हुआ।

मेरा स्वास्थ्य यहाँ आने पर बहुत खराब हो रहा है। निमोनिया वगैरह हो जाने से स्वास्थ्य बिल्कुल खत्म-सा हो रहा है। यहाँ पर मित्र लोग सब हैं ही, डॉक्टर आदि का भी प्रबन्ध चलता रहा, परन्तु डॉक्टर ने भी........................। मेरा शरीर इतना कमजोर हो गया है कि अब उठना-बैठना भी कठिन हो गया है। हाथ-पैर इतने कमजोर हो गये हैं कि अब शरीर का खड़ा होना सम्भव नहीं। खाना-पीना भी प्रायः नहीं-सा है, चाय भी बराबर नहीं ली जाती। आभास ऐसा हो रहा है कि कुछ दिनों में अब प्राण पंखेरू चले जाने की तैयारी में हैं।

आप लोग कोई चिन्ता न करें। वहाँ आपके सिवाय कोई स्वजन है नहीं, अब वहाँ आना तो जीवित रूप में सम्भव नहीं है पर मैंने यहाँ वालों को कह दिया है कि मेरे शरीर को चन्देरिया में ले जाकर सर्वदेवायतन मन्दिर में जो जगह मैंने बता रखी है, वहाँ इसे भस्म कर देना।

आपका पत्र पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ कि जेल में जो यातनाएँ आपके इस रोगीष्ट शरीर को उठानी पड़ी, इसका अत्यन्त दुःख हुआ। पर हमारे देश का दुर्भाग्य आगे बढ़ रहा है। यह अभी सभी समाप्त नहीं हुआ है। देश की बरबादी होने के बाद ही उसके दुःख को मिटाने वाला होगा, आज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं। आप अभी वहीं हैं खर्च का कोई विचार न करें। आप अपनी सुख सुविधा का प्रबन्ध निस्संकोच होकर करे।

मैं इस अनाथ आश्रम को आपको सर्वतोभाव से समर्पित करता हुआ जा रहा हूँ। आप किसी कमेटी या किसी का कोई खयाल न करें। मेरे जीवन का अन्तिम आदेश आपको है। आगे जैसा भगवान ने देखा होगा वैसा होगा। सभी को जाना है। आश्रम की दुर्दशा का मुझे यहाँ बैठे दिन-रात चित्र दिखाई देता है। पर व्यक्ति के अभाव में बड़े राज्य भी नष्ट हो गये इसलिए ऐसी ममता रखना निरर्थक है।

यहाँ पण्डित सुखलालजी भी अस्वस्थ हैं पर मेरे जितने नहीं। ये अभी थोड़े बहुत चलते फिरते रहते हैं।

मोतीबा भी 4 दिन से बिल्कुल अस्वस्थ हो गई, सुधबुध भी नहीं रही। बड़े अस्पताल में दाखिल कराया है। उपचार चल रहा है। कुछ ठीक मालूम दे रहा हैं। कुछ बहिनें सेवा के लिए बम्बई, पालनपुर से आ गई, इससे कुछ मामला सम्भल गया, नहीं तो जीने की आशा भी नहीं रही। मैं अब ज्यादा बोल नहीं सकता, बैठ नहीं सकता, बाकी मन स्वस्थ है। भगवान से मैं यही प्रार्थना कर रहा हूँ किसी हालत में मुझे जल्दी बुलाये।

आपके आने की आवश्यकता नहीं है। आने का कुछ उपयोग भी नहीं है। लगता है यहाँ वालों को कुछ कष्टदायक होगा। आप मुझे हर तीसरे चौथे दिन एक पत्र लिखा करें। माँगोलाल आ जाता है तो ठीक है। वह सब देख जायेगा और आगे का सब समझ जायेगा।

यहाँ पर चिरंजीव...........दिन-रात सेवा में लगा हुआ है। अन्य किसी की कोई आवश्यकता नहीं।

आपका
मुनि जिनविजय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain; Digitizagtion by eGangotri

पुरातत्त्व एवं ऐतिह्य के तलस्पर्शी प्रकाण्ड पण्डित
पद्मश्री मुनि जिनविजयजी महाराज
सञ्चालक
राजस्थान प्राच्य-संस्थान की सेवा में
श्री जिनदत्तसूरि-मण्डल अजमेर की ओर से
सादर समर्पित
अभिनन्दन-पत्र

परमादरणीय मुनिराज !

आज श्री जिनदत्तसूरी मण्डल, अजमेर श्रद्धावनत हो आपका हार्दिक स्वागत करता है।

श्रद्धेय शिरोमणे !

यद्यपि आपकी जन्मभूमि राजस्थान है, परन्तु आधिक्येन गुजरात ही आपकी कर्मभूमि रही है। यह राजस्थान का सौभाग्य है कि उसका लाडला बीते चौदह वर्षों से राजस्थान को अपने रचना रत्न समर्पित कर रहा है। यहाँ तक कि अपनी अस्थियाँ भी राजस्थान की सेवा के लिए उत्सर्ग करने हेतु निःसंकोच समुद्यत है। ऐसा सब कुछ होते हुए भी आप सम्पूर्ण भारत के ही हैं।

बालब्रह्मचारिन् !

बाल्यकाल में आपने एक विद्वत्तम यतिराज से शिक्षा का अधिगम किया। उसके फलस्वरूप शीघ्र ही जैन दीक्षा से दीक्षित हो भारत के अनेक स्थानों का भ्रमण कर पाये। इसी भ्रमण के समय आपने विविध आगमों, भाषाओं और लिपियों का अध्ययन, चिन्तन, मनन और परिशीलन किया। वही क्रम आज भी साहित्य-सेवा के रूप में परिणत है।

पुरातत्त्वशास्त्रिन् !

आप संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, बंगला, लेटिन, जर्मन और इंग्लिश के ज्ञाता हैं तो भी पुरातत्त्व के ज्ञान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की महिमा के कारण पुरातत्त्ववेत्ताओं में मूर्धन्य हैं और पूर्णरूपेण यशस्वी हैं।

सम्मान्य आचार्यवर !

महात्मा गाँधी के प्रतिष्ठापित गुजरात विद्यापीठ के आचार्य बनकर उसमें आपने ही पुरातत्त्व मन्दिर की नींव रखी। उसी मन्दिर ने आपके तत्त्वावधान में अनेक ग्रन्थरत्नों का उद्योतन किया। तदनन्तर "शान्ति निकेतन" के सिंघो जैन ज्ञानपीठ के आचार्य पद को अलंकृत कर "सिंघो जैन ग्रन्थमाला" से साहित्यिक, दार्शनिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों की एक अनुपम माला पिरो डाली। इतना ही नहीं, किन्तु अपनी बहुमुखी प्रतिभा से "शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट" बीकानेर से भी अप्रकाशित ग्रन्थों को प्रकाश में लाने का सफल प्रयत्न किया। आगे चलकर "राजस्थान राज्य" ने आपके परामर्श पर राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर की स्थापना का श्रीगणेश किया। उसका ही परिणाम है कि इसके अन्तर्गत छोटे-बड़े ग्रन्थ बम्बई, अहमदाबाद, अजमेर, बनारस, पटना तथा जयपुर प्रभृति स्थानों में मुद्रित हो प्रकाश से जगमगा रहे हैं। भारत विख्यात "जैन ग्रन्थ भण्डार" जैसलमेर के विशिष्ट ग्रन्थों का भी प्रकाशन आपश्री की यशोराशि की ही एक झलक है।

साहित्यसेवि महात्मन् !

बाल्यकाल के दीक्षित साधुवेष के साथ तादात्म्य न रहने के कारण व्यावहारिक सम्भ्रान्त वेष में रहकर अध्ययन, अध्यापन और साहित्य सेवा में आज भी तल्लीन हैं। यही कारण है कि इस वार्धक्य में भी विश्वविद्यालयों के पी०-एच०-डी० के छात्रों का चन्देरिया (राजस्थान) के सर्वोदय साधनाश्रम, भारती भामाशाह बालमन्दिर, चित्तौड़ एवं श्री हरिभद्र सूरि स्मृति मन्दिर, चित्तौड़ के संचालन के साथ-साथ मार्गदर्शन कर रहे हैं। प्रतिष्ठा के धनी होने के कारण किसी सम्मेलन के सभापति और किसी संस्था के संस्थापक एवं किसी पत्रिका के आप प्राण हैं। वास्तव में "यशोसाधनां हि यशो वरीयः" की उक्ति आपके परमार्थ में प्रतीत है।

देशभक्तिशालिन् !

जब आप इंगलैण्ड, जर्मनी प्रभृति देशों का भ्रमण कर भारत लौटे तो सत्याग्रह में सम्मिलित होकर आपने नासिक की जेल को भी छह मास के लिए पवित्र किया। इसीलिए तो यह उक्ति चरितार्थ हुई है कि "होनहार बिरवान के, होत चीकने पात"।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्यागमूर्ते तपस्विन् !

स्वभाव से सुस्पष्ट और मन से निष्कपट आप जैसे आप ही हैं। शरीर से दुर्बल रहते हुए भी आप आरात्रि कार्यभार वहन करते हैं। सब कुछ आप देश, समाज और धर्म के लिए ही सर्वार्पण करते हैं। अनेक निर्धन युवकों पर सब कुछ न्यौछावर कर आज आप महानुभाव के अनुभाव से शोभित हैं। यथार्थ में आप आप ही हैं।

यशोधरकल्पवृक्ष !

अतीत के भारत की महाविभूति दादाश्री जिनदत्त सूरिजी की स्मृति में प्रतिवर्ष आयोजित समारोह में पधारकर आपने अपनी हृदय की विशालता का दिग्दर्शन कराकर वास्तव में मण्डल और मण्डल के सदस्यों और भावुक दर्शनार्थियों को उपकृत किया है। अतएव मण्डल का प्रबन्धक वर्ग आपकी सेवा में श्रद्धोन्मुख परम आभारी है।

हमको आशा ही नहीं, किन्तु पूरा विश्वास है कि आप भविष्य के लिए भी भारत की इस विशिष्ट समाजोपयोगी संस्था के प्रति अपना सौहार्द बनाये रखेंगे और समय समय पर अपने स्नेहसलिल से इसे आप्लावित करते रहेंगे।

अजमेर (राजस्थान)
दिनांक 20-7-1964

हम हैं आपके सस्नेह भाजन
सदस्य तथा अधिकारी
श्री जिनदत्तसूरि मण्डल, अजमेर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरातत्त्वाचार्य प्राच्यविद्या विशारद 'पद्मश्री' मुनिश्री जिनविजयजी की सेवा में सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

महामनीषी !

साहित्य, शिक्षा एवं संस्कार की विविध प्रवृत्तियों के संगठक, संचालक, आयोजक और प्रसारक के रूप आपके ऐतिहासिक, दार्शनिक, तात्त्विक, वैज्ञानिक, धार्मिक, नैतिक आदि विविध विषयों के प्राचीन एवं नवीन साहित्य के अध्ययन, अध्यापन, अन्वेषण, संशोधन व सम्पादन के महान् कार्यों की स्मृति ही, हार्दिक अभिनन्दन करते हुए श्रद्धाञ्जलि समर्पण के लिए हमें प्रेरित कर रही है।

सर्वोदय के साधक !

अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद और सर्वदर्शन की भावनाओं को जनता में जागृत एवं व्यापक बनाने के लिए चन्देरिया में स्वसंस्थापित 'सर्वोदय साधनाश्रम' सर्वोदय को विशिष्ट केन्द्र-स्थान बनाने की मंगल कामना से ओत-प्रोत होकर निष्कामभाव से श्री विनोबाजी को अर्पित कर आप सर्वोदय यज्ञ के सम्पोषक बने हैं।

पुरातत्त्वाचार्य !

विद्या साधना के हेतु सांसारिक व्यामोह से विमुक्त रहने के लिए आपने पुरातत्त्व की शिक्षा दीक्षा को अंगीकार कर जैन-संस्कृति और पुरातत्त्व के अन्वेषण में जिज्ञासुवृत्ति से साधनारत हो गये और जैन-वाङ्मय के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० हरमन जेकोबी, डॉ० शुब्रिंग, प्रोफेसर ग्लेजेनाप जैसे विद्वानों को जैन धर्म के मर्म से अवगत कराने की दृष्टि से जर्मनी आदि देशों का भी पर्यटन किया है।

राष्ट्रसेवी !

आप साहित्य साधक ही नहीं हैं, अपितु पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त स्वातन्त्र्य-संग्राम के अमर-सेनानी हैं। सन् 1930 में महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में सञ्चालित सर्वप्रथम अहिंसक सत्याग्रह में धरासणा से प्रथम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सैनिक बनकर जन-जन के मन में स्वतन्त्रता की अमर-ज्योति जलाई थी।

सरस्वतीपुत्र !

विगत दो हजार वर्ष के भारतीय इतिहास में जो महान् तत्त्वविचारक, धर्मप्रबोधक एवं दार्शनिक हो गये हैं, आप उनके वर्तमान-कालीन प्रतिनिधि हैं। भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना में किये गये आपके संशोधन कार्यों से आकर्षित होकर गांधीजी ने अपने द्वारा संस्थापित गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर के प्राचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया था और "पुरातत्त्व" पत्र द्वारा अपनी अन्वेषित कृतियों से जनता-जनता को परिचय कराया था। पश्चात् जैन साहित्य संशोधन मण्डल, पूना और शान्ति-निकेतन में रहते हुए "सिंघी जैन ग्रन्थमाला" कलकत्ता के तत्त्वावधान में प्राचीन जैन वाङ्मय का परिशीलन कर अनेक ग्रन्थों द्वारा भारत-भारती की श्रीवृद्धि की है और आज भी राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान द्वारा उसी साधना में लीन हैं।

जैनतत्त्व के परम प्रचारक !

जैन तत्त्व के मूलाधार अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त तत्त्व का रहस्य और निष्कर्ष बतलाने एवं धर्मतत्त्व का व्यावहारिक आधार और आचरण के लाभकारी नियमोपनियम बनाने की निष्काम भावना से अपनी दिनचर्या द्वारा आप जैनत्व के मूल प्रचारक हैं।

भाषाशास्त्री !

संशोधन और अन्वेषण के अतिरिक्त आपके द्वारा हिन्दी, संस्कृत, गुजराती, अंग्रेजी आदि विश्व की प्रमुख भाषाओं में लिखे गये अनेक निबन्ध विविध भाषाओं की विद्वत्ता और विज्ञता की अनुभूति कराते हैं।

युगनायक !

समस्त भारतीय वाङ्मय में सर्वदर्शनों का समुच्चय और समन्वय करने वाले अपने ज्ञानदीप के प्रकाश से जनता के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक जीवन को प्रज्वलित करने वाले महाश्रमण आचार्य श्री हरिभद्र सूरि की महत्त्वशाली प्राणप्रतिष्ठा में रत आपके अध्ययन को देखकर "हरिभद्र सूरि याकिनीमहत्तर सूनु" की स्मृति आ जाती है और अतीत को पुनः वर्तमान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनाने की आपको धुन हमें "युगनायक" के विरुद से सम्बोधित करने के लिए प्रेरणा दे रही है।

अभिनन्दन ! वीर प्रसू !! मेवाड़ के साहित्य वीर !!!

आपश्री के गौरव से समृद्ध हमारे द्वारा समर्पित भावनाओं के नवनीत शब्द-पुष्पों को ग्रहण कीजियेगा।

हम हैं, आपके
सदस्यगण, श्री अ. भा. श्वे. स्था.
जैन कान्फरेन्स

12, लेडी हार्डिंग रोड
नई दिल्ली, 30-4-61

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैन-नवयुवक-मण्डल-चित्तौड़गढ़ द्वारा

पुरातत्त्वाचार्य मुनि श्री जिनविजयजी की सेवा में समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

महर्षि !

बचपन से ही वैभवविलास तथा सुखों से विरक्त रहकर आपने अपने जीवन के लगभग 80 वर्ष सत्य की खोज में लगाये। इस खोज के लिए आपने परिव्राजक-सा जीवन बिताया। आप धन्य हैं। आपने अपनी ज्ञान साधना में इतनी निपुणता प्राप्त की कि आप जैन संस्कृति और जैन दर्शन के महान् विद्वान् माने जाने लगे।

पुरातत्त्वाचार्य !

इतिहास को पुनर्जीवित करने और पत्थरों को स्वर प्रदान करने में आपने जो कर्त्तव्यपरायणता निभाई है उसकी बराबरी करने वाला इस देश में और कोई नहीं है। जोधपुर का राजस्थान–प्राच्यविद्या–प्रतिष्ठान आपकी प्रतिभा और आपके श्रम की गवाही दे रहा है।

परिव्राजक !

सत्य की खोज, इतिहास की जिज्ञासा और ज्ञान के प्रचार के लिए आपने सिर्फ भारतवर्ष में ही नहीं, योरोप के देशों में भी भ्रमण किया है। आप देश के जाने माने स्वातन्त्र्य सेनानी और विद्वानों के सम्पर्क में आये।

स्वातन्त्र्य सेनानी !

इतिहास प्रसिद्ध नमक–सत्याग्रह में एक सैनिक के तौर पर दाण्डीकूच में हिस्सा लिया और छः माह तक जेल में रहे।

मनीषी !

आपने अपना सारा जीवन देश, समाज और साहित्य को अर्पण कर दिया और आज भी अहर्निश उसी साधना में लीन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैन रत्न !

शान्ति-निकेतन में जैन पीठ "सिंघी-जैन-ग्रन्थमाला" तथा चित्तौड़गढ़ में 'हरिभद्रस्मृति-मन्दिर' की आपकी अभूतपूर्व देन से सारे विश्व का जैन समाज आपका ऋणी है।

हम चित्तौड़गढ़ के जैन नवयुवक-मण्डल के सदस्य आपके चरणों में शतशः नमन करते हुए आपका अभिनन्दन करके स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं।

दिनांक 15-7-72

हम हैं आपके
जैन नवयुवक मण्डल चित्तौड़गढ़ के सदस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट-2

स्व० मुनि जिनविजय : कृतित्व एक दृष्टि

स्वर्गीय मुनि जिनविजयजी गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल और अपनी उत्तरावस्था में राजस्थान में रहकर अपना विद्याव्यसन और अध्यवसाय में लगे रहे। इस दीर्घ अवधि में वे अनेक संस्थाओं से जुड़े - अनेक ग्रन्थमालाओं व पत्र – पत्रिकाओं का सम्पादन – प्रकाशन किया। अपनी शोध-जिज्ञासा को अपने लेखों के माध्यम से हमारे सम्मुख रखा। इनमें सिंघी-जैन-ग्रन्थमाला, कान्तिविजयजी-इतिहासमाला, गायकवाड़–ओरियण्टल-सीरीज, गुजरातविद्यापीठ पुरातत्त्व-मन्दिर, जैन-साहित्य संशोधक-समिति, पुरातत्त्व-मन्दिर-ग्रन्थावली और राजस्थानपुरातन ग्रन्थमाला के द्वारा जो प्रकाशन सामने आए अथवा उनकी जीवनी अथवा अन्य माध्यम से उनके बारे में हम जान सकते हैं - उन समस्त सम्पादनों, शोध-पत्रिकाओं तथा लेखों का उल्लेख उनकी पुण्य-स्मृति में छपने वाले विशेषांक का एक अभिन्न अंग-सा है। अनेक ग्रन्थमालाओं में उनके अधूरे रहे कार्यों अथवा सम्पादन वगैरह की जानकारी प्राप्त करने के हमारे प्रयत्नों की सफलता क्षीण होती जा रही है, इसलिए उनके ज्ञात सम्पादनों एवं लेखों को सामान्य पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत करनें का यह उपक्रम है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1) राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला से प्रकाशित—
(राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

1. त्रिपुराभारती लघुस्तव (संपा.)
2. कर्णामृत प्रपा (संपा.)
3. बालशिक्षा-व्याकरण (संपा.)
4. प्रमाण—मंजरी
5. यन्त्रराज-रचना
6. महर्षिकुलवैभवम् (मूल व वृत्ति) ग्रन्थांक 6 व 59
7. वृत्ति दीपिका
8. राजविनोद महाकाव्य
9. तर्कसंग्रह
10. प्राकृतानन्द (संपा.)
11. कान्हड़दे-प्रबन्ध
12. उक्ति-रत्नाकर (संपा.)
13. क्यामखां रासा
14. कूर्मवंशयशप्रकाश (लावारासा)
15. शृङ्गारहारावली
16. कृष्णगीति
17. नृत्तसंग्रह
18. कारकसम्बन्धोद्योत
19. शब्दरत्न-प्रदीप
20. चक्रपाणिविजय महाकाव्य
21. बांकीदास री ख्यात
22. दुर्गापुष्पाञ्जलि
23. दशकण्ठवध
24. नृत्यरत्न कोश - (ग्रन्थांक 24 व 25)
25. कर्ण-कुतूहल
26. राजस्थानी-साहित्य-संग्रह (भाग-1)
27. वासवदत्ता कथा
28. ईश्वरविलास महाकाव्य
29. पद्यमुक्तावली
30. राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज
31. जुंगलविलास
32. वीरवांण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

33. कवीन्द्रकल्पलता
34. गोरा-बादल पद्मिनी चौपई (संपा.)
35. वसन्तविलासफागु
36 स्वयभूच्छन्द
37. पदार्थरत्नमञ्जूषा
38. चान्द्रव्याकरण
39. गोरा-बादिल-चरित्र
40 रसदीर्घिका
41. भगतमाल
42. वस्तुरत्न कोश
43. काव्यप्रकाश (भाग 1 व 2)
44. मुंहता नैणसी री ख्यात
45. रघुवर जस प्रकाश
46. राजस्थानी-साहित्य-संग्रह भाग-2
47. राजस्थानी-साहित्य-संग्रह भाग-3
48. श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्
49. सूरजप्रकाश
50. रत्नपरीक्षादि सप्तग्रन्थ-संग्रह
51. वृत्तिजातिसमुच्चय
52. कविदर्पण
53. नेहतरंग
54. एकाक्षरनामकोश संग्रह
55. हम्मीर महाकाव्यम्
56. मत्स्यप्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन
57. इन्द्रप्रस्थ-प्रबन्ध
58. बुद्धिविलास
59. रुक्मिणी-हरण
60. सन्तकवि रज्जब
61. भक्तमाल सटीक
62. पश्चिमी भारत की यात्रा
63. विन्हैरासो
64. सोढ़ायण
65. नन्दोपाख्यान (संपा.)
66. राठौड़ वंश री विगत एवं वंशावली
67. कविकौस्तुभ (संपा.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिंघी जैन ग्रन्थमाला

	प्रकाशन वर्ष (वि. सं.)
(1) प्रबन्ध चिन्तामणि भाग-1	1997
(2) प्रबन्ध चिन्तामणि भाग-2 हिन्दी भाषान्तर	1997
(3) प्रबन्धकोश (प्रथम भाग)	1991
(4) विविधतीर्थकल्प (प्रथम भाग)	1991
(5) पुरातनप्रबन्ध संग्रह (मूलपाठ)	1992
(6) प्रभावक चरित (प्रथम भाग-मूल ग्रन्थ)	1997
(7) जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह (प्रथम भाग)	1999
(8) सन्देशरासक	2001
(9) कथाकोष प्रकरण भाग 1-2	2005
(10) कुवलयमाला	
(1) दि लाइफ ऑफ हेमचन्द्राचाय	1992
(2) देवानन्द महाकाव्य	1994
(3) अकलंकग्रन्थत्रयम्	1996
(4) भानुचन्द्रगणिचरित	1997
(5) ज्ञानबिन्दु प्रकरण	1998
(6) बृहत्कथाकोश	1999
(7) रिष्ट समुच्चय	2001
(8) दिग्विजयमहाकाव्य	2001
(9) लीलाबाई (लीलावती)	2005
(10) शतकत्रयादि-सुभाषित संग्रह	2005
(11) धर्मोपदेशमाला विवरण	2005
(12) धर्माभ्युदय महाकाव्य	
(13) भद्रबाहु संहिता	2005
(14) ज्ञानपंचमी कथा	2005
(15) पउमसिरीचरिउ	2005
(16) धूर्ताख्यान	
(17) छन्दोनुशासन	
(18) काव्यप्रकाश खण्डन	
(19) उक्तिव्यक्ति प्रकरण	
(20) राजसिद्धान्त	
(21) विविधगच्छीय पट्टावली संग्रह	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(22) खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावलि
(23) कुमारपाल चरित संग्रह
(24) कीर्त्तिकौमुदी आदि वस्तुपाल प्रशस्ति संग्रह
(25) सुकृतसंकीर्तन
(26) जम्बूचरित
(27) विज्ञप्ति लेख-संग्रह
(28) विवेकविलास टीका - भानुचन्द्र गणि कृत
(29) वासवदत्ता टीका - सिद्धिचन्द्रोपाध्याय विरचित
(30) पुरातन रास-भासादि संग्रह (हिन्दी भाषान्तर)
(31) पुरातन प्रबन्ध संग्रह (हिन्दी भाषान्तर)
(32) जयपाहुड़नाम (निमित्त शास्त्र)
(33) भद्रबाहु संहिता
(34) नर्मदा सुन्दरी कथा - महेन्द्र सूरि
(35) जिनदत्ताख्यानद्वय
(36) काव्यप्रकाश खण्डन
(37) धर्मोपदेश माला

[3] कान्तिविजयजी इतिहासमाला—श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर

कृपारसकोश
शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध
प्राचीन जैन लेख संग्रह, भाग 1-2
जैन ऐतिहासिक, गुर्जरकाव्य संचय
द्रौपदी स्वयंवर (नाटक)
विज्ञप्ति त्रिवेणी — 1884 ई०

[4] गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज

कुमारपाल प्रतिबोध

[5] गुजरात विद्यापीठ पुरातत्व मन्दिर

प्राचीन जैन लेख संग्रह 1921 ई०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[6] जैन साहित्य संशोधक समिति, पूना

खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह
आचारांग सूत्र
कल्प-व्यवहार-निशीथ सूत्राणि
जीतकल्पसूत्र
विजयदेव माहात्म्य

[7] पुरातत्त्व मन्दिर ग्रन्थावली, अहमदाबाद

अभिधानप्प दीपिका - पालि शब्द कोश
प्राकृत कथा संग्रह
पालि पाठावली
प्राचीन गुजराती गद्य-सन्दर्भ

[8] सर्वोदय साधन आश्रम, चन्देरिया (चित्तौड़गढ़)

मेरी जीवन प्रपंच कथा – मुनि जिनविजय
मेरे दिवंगत मित्रों के कुछ पत्र

[9] पत्रिका – सम्पादन व प्रकाशन

भारतीय विद्या
जन जागृति (हिन्दी-गुजराती), पूना
जैन साहित्य संशोधक (त्रैमासिक)

[10] लेख—

वसन्त रजत महोत्सव स्मारक ग्रन्थ - 1927
जैन इतिहास नी झलक
धनपाल विषयक लेख
नेमिनाथ राजीमती बारामासा
जैन श्वेताम्बर कॉन्फ्रेन्स हेराल्ड
वैयाकरण शाकटायन (प्रथम लेख)
सत्त्वपरिपूर्ण समदर्शी जीवन – ज्ञानांजलि, मुनि श्री पुण्यविजयजी अभिवादन ग्रन्थ-बड़ोदरा, 1969
हरिभद्राचार्यस्य समयनिर्णय: – अखिल भारतीय प्राच्य-सम्मेलन, बम्बई, 1944

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

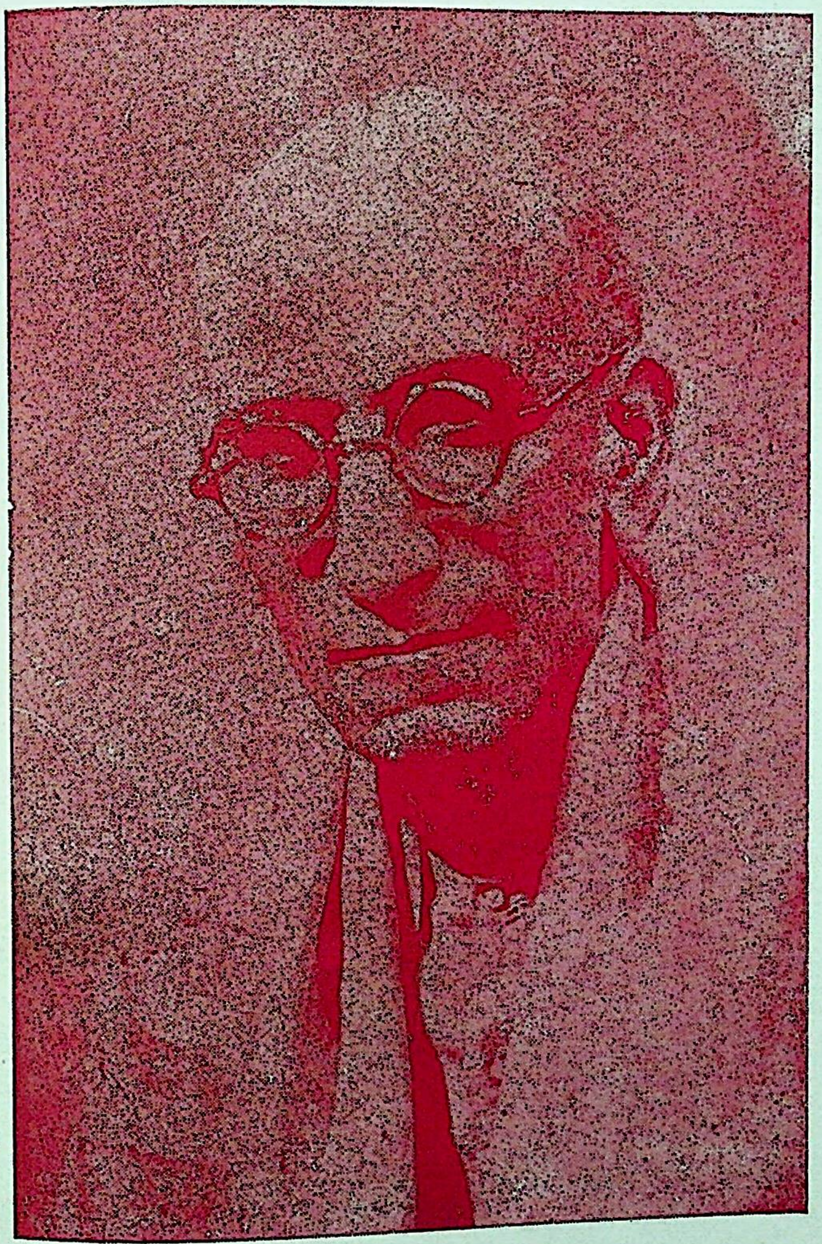

राजस्थान पुरातत्व मन्दिर के
सम्मान्य संचालक
मुनि जिनविजयजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

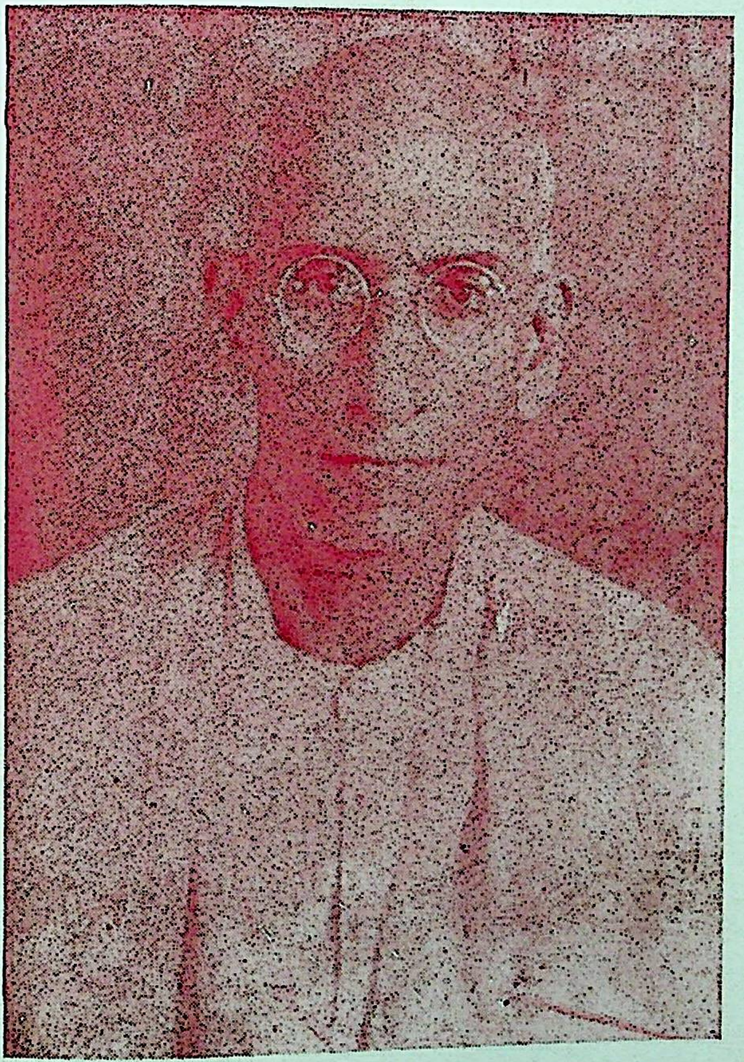

मुनि जिनविजयजी की युवावस्था का एक दुर्लभ चित्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

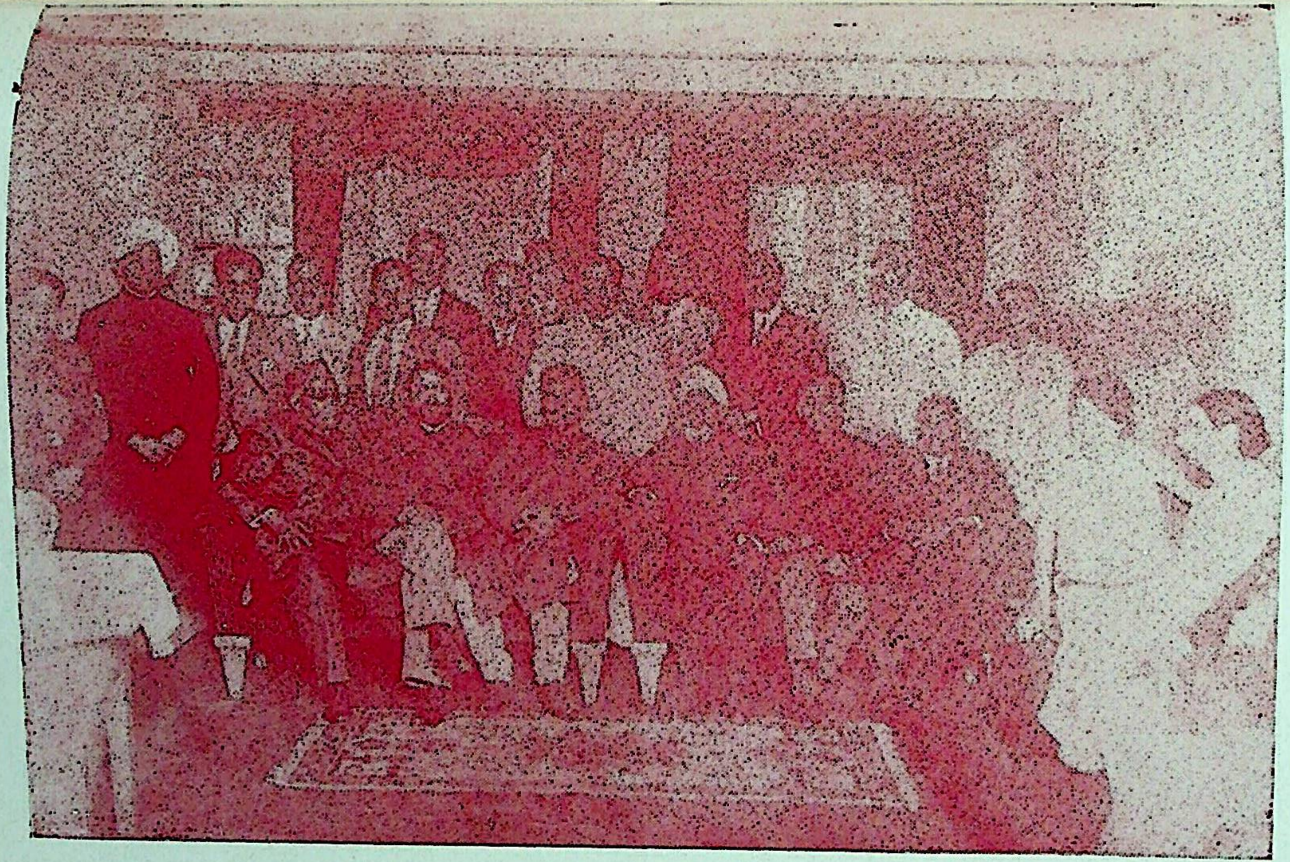

सन् १९२८ में बर्लिन के हिन्दुस्तान हाउस में लिया गया दुलर्भ चित्र
बाईं ओर से बैठे हुए :—सर्वश्री शिवप्रसाद गुप्ता, राजा महेन्द्र प्रताप,
पण्डित गौरीशंकर मिश्र, प्रो. कर्वे, मुनि जिनविजयजी और श्री चुडगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

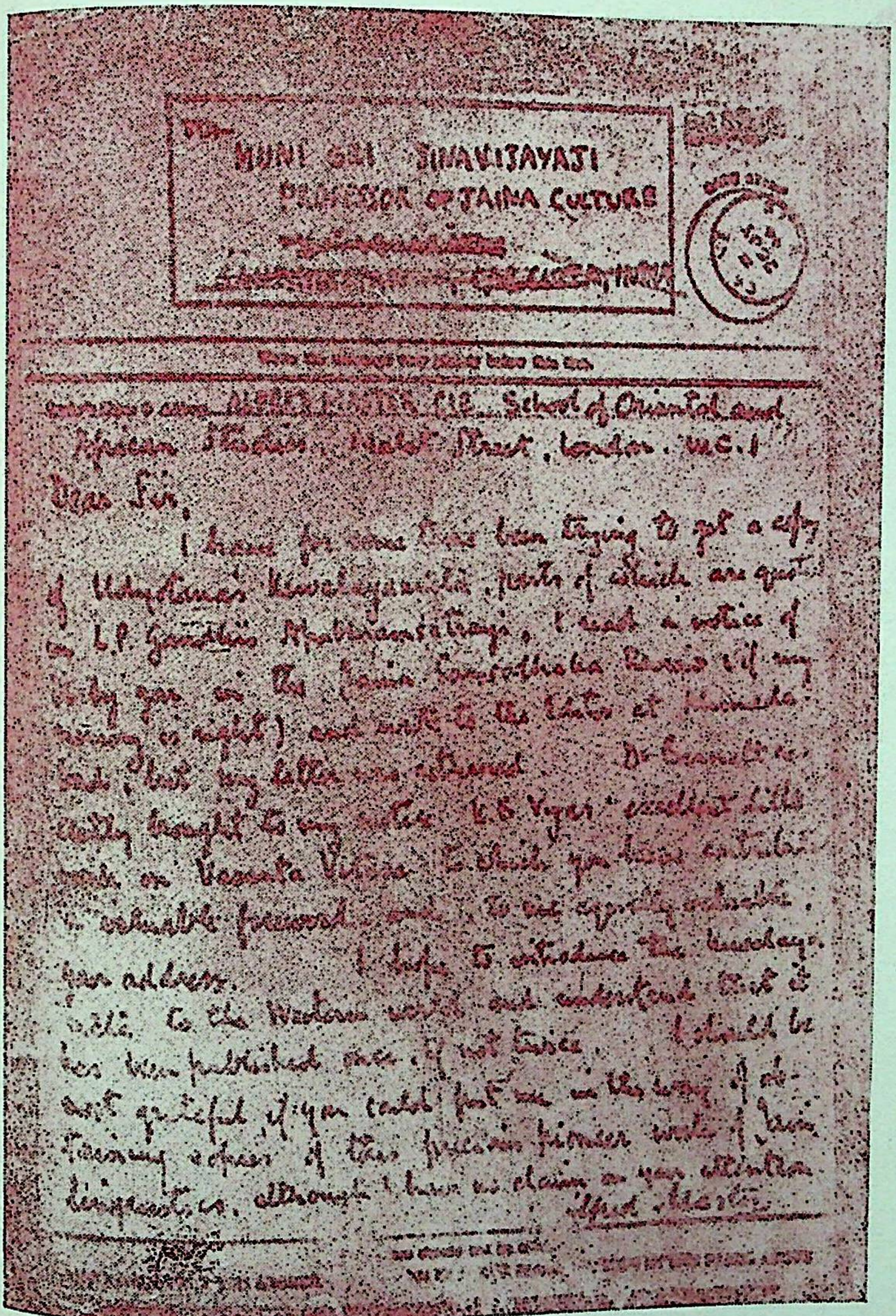

MUNI SRI JINAVIJAYAJI
PROFESSOR OF JAINA CULTURE
[illegible] CALCUTTA, INDIA

[illegible] ALFRED MASTER C.I.E. School of Oriental and African Studies, Malet Street, London. W.C.1

Dear Sir,

I have for some time been trying to get a copy of Udyotana's Kuvalayamala, parts of which are quoted in L.P. Gandhi's Apabhramsa [illegible]. I read a notice of [illegible] the Jaina [illegible] [illegible] to the [illegible] Dr. [illegible] but my letter was returned [illegible] brought to my notice [illegible] Vyas' excellent [illegible] work on Vasanta Vilasa to which you have contributed a valuable foreword [illegible]. I hope to introduce [illegible] your address. [illegible] to the Western world [illegible] has been published once if not twice. I should be most grateful if you could put me in the way of [illegible] this precious pioneer work of Jain [illegible] although I have no claim on your attention.

Alfred Master

स्कूल ऑफ ओरियण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज, लंदन की ओर से
प्रो० एलफ्रेड मास्टर का मुनिजी के नाम दुर्लभ पत्र
२६ जुलाई, १६४४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

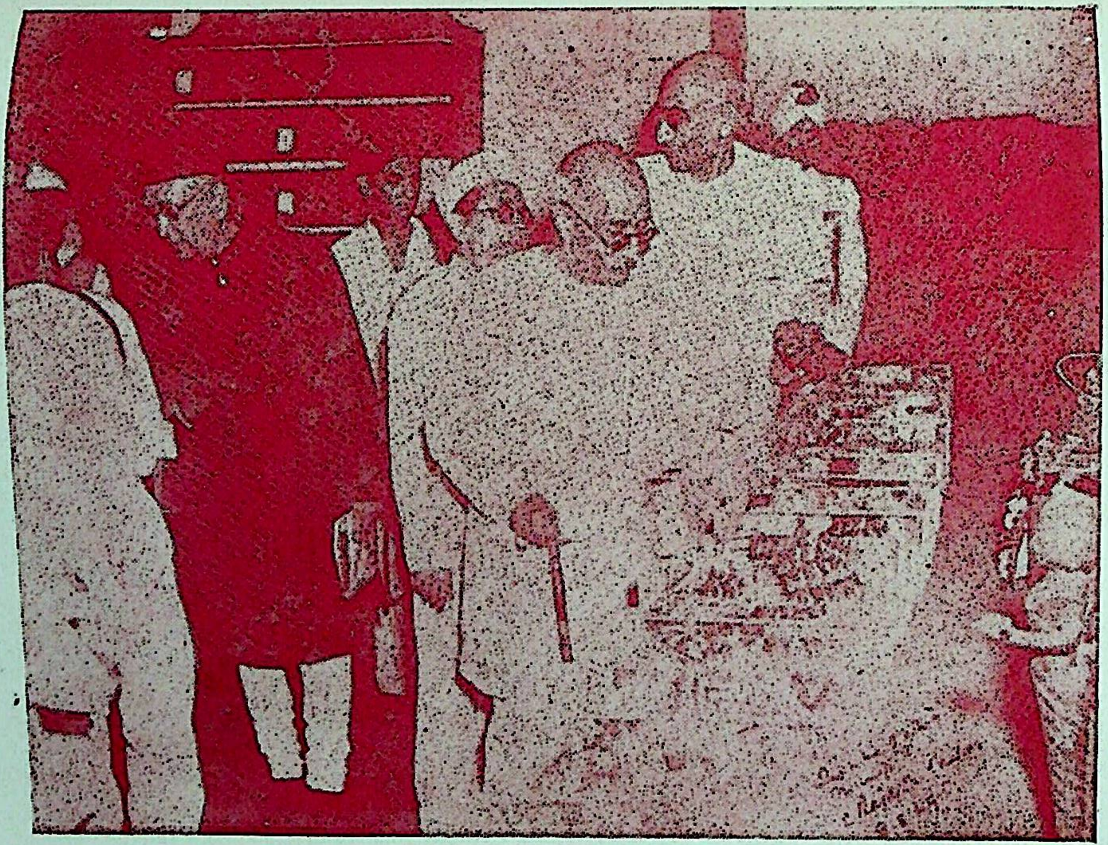

भारतीय विद्याभवन में श्री राजगोपालाचारी तथा
अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

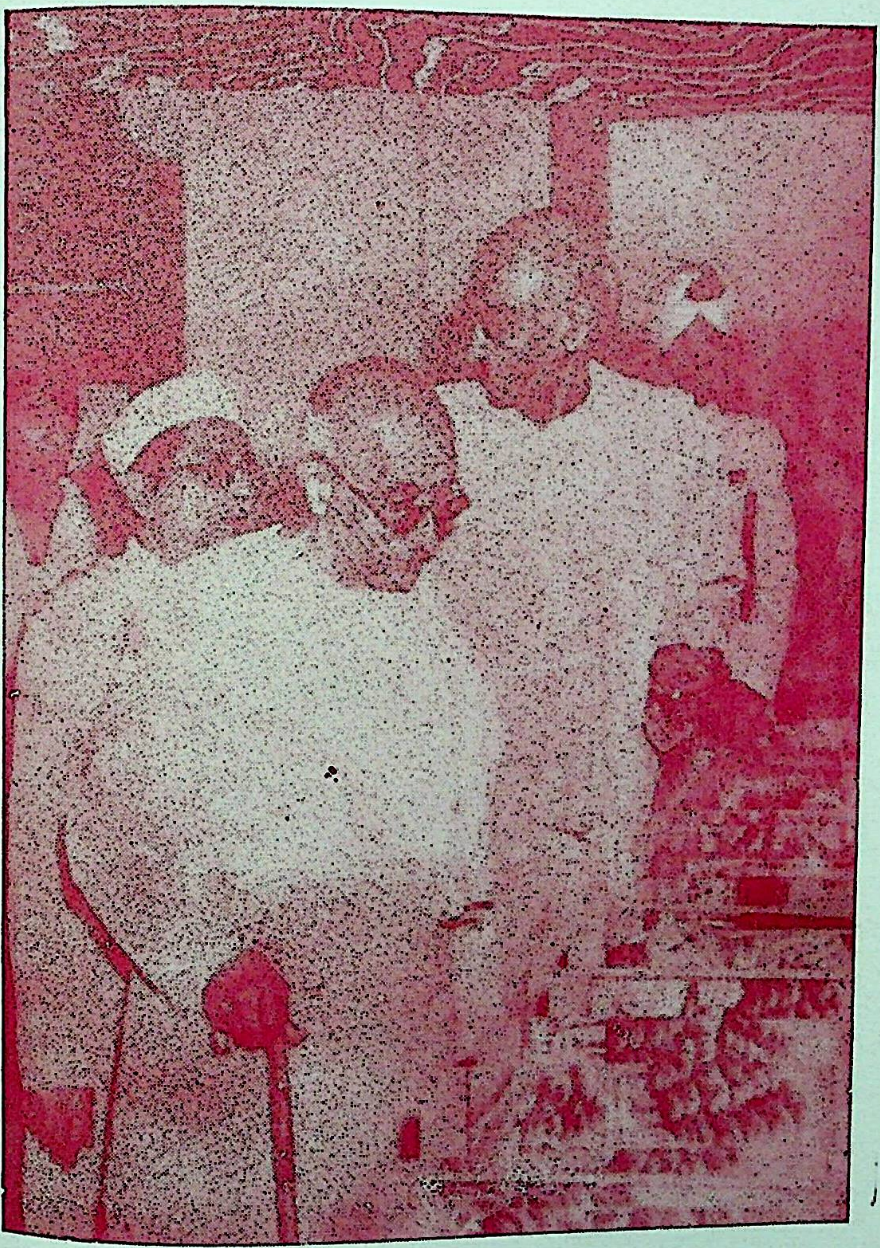

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के साथ
भारतीय विद्याभवन बम्बई में,
दाहिने, राजाजी की विनोदात्मक टिप्पणी
"Who is me and who is Muniji ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

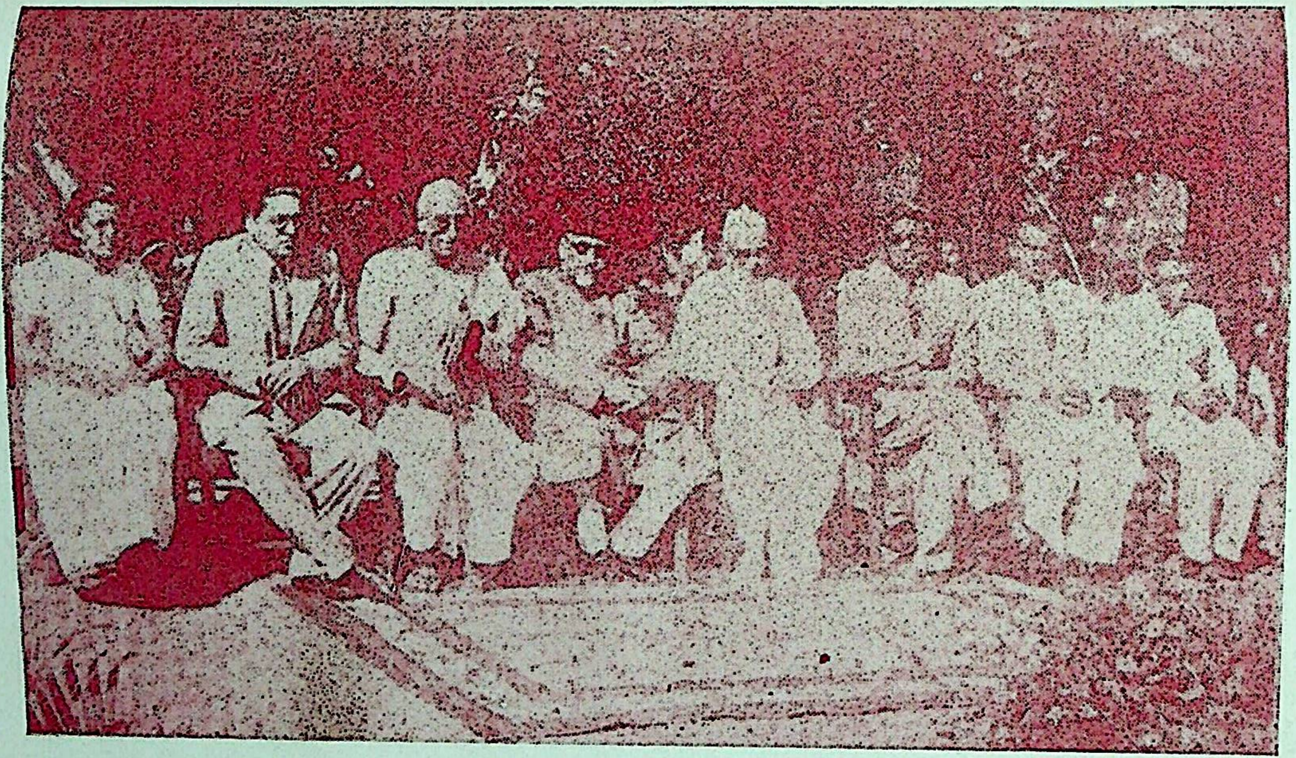

भारतीय विद्याभवन, बम्बई में मुनि जिनविजयजी, मौलाना आजाद और
श्री के. एम. मुन्शी आदि

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

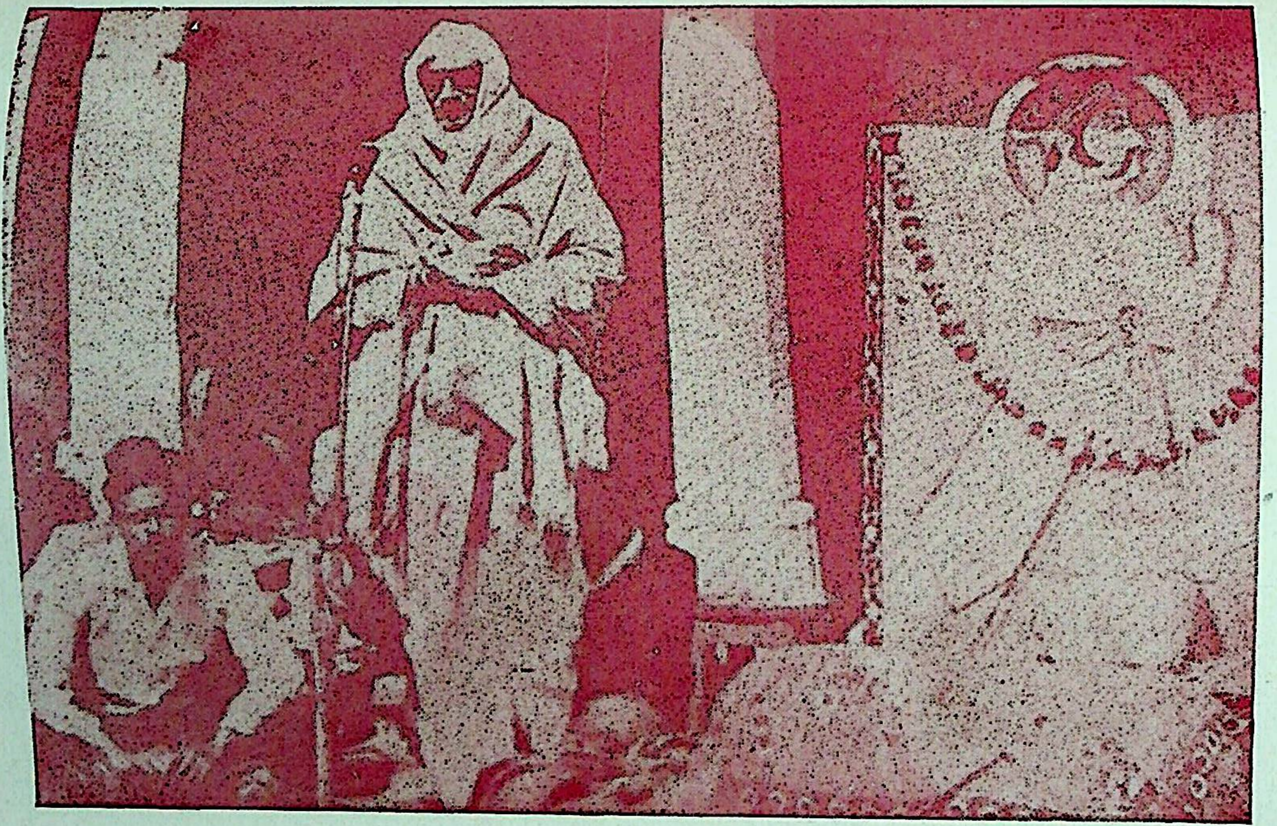

कुम्भा पंचशती समारोह में अध्यक्षीय
भाषण देते हुए मुनि जिनविजयजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

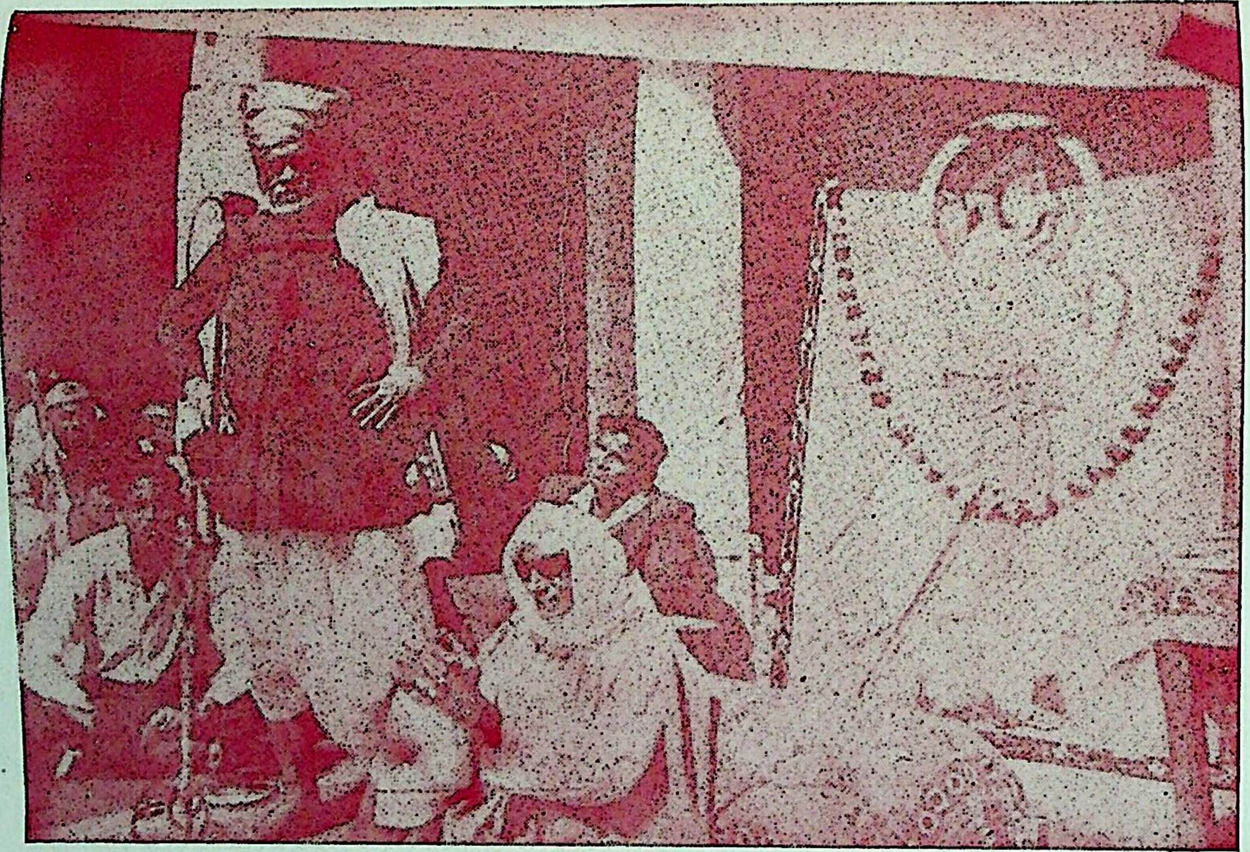

मुनि जिनविजयजी की अध्यक्षता में
कुम्भा पंचशती समारोह में श्री अगरचन्द नाहटा
भाषण देते हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

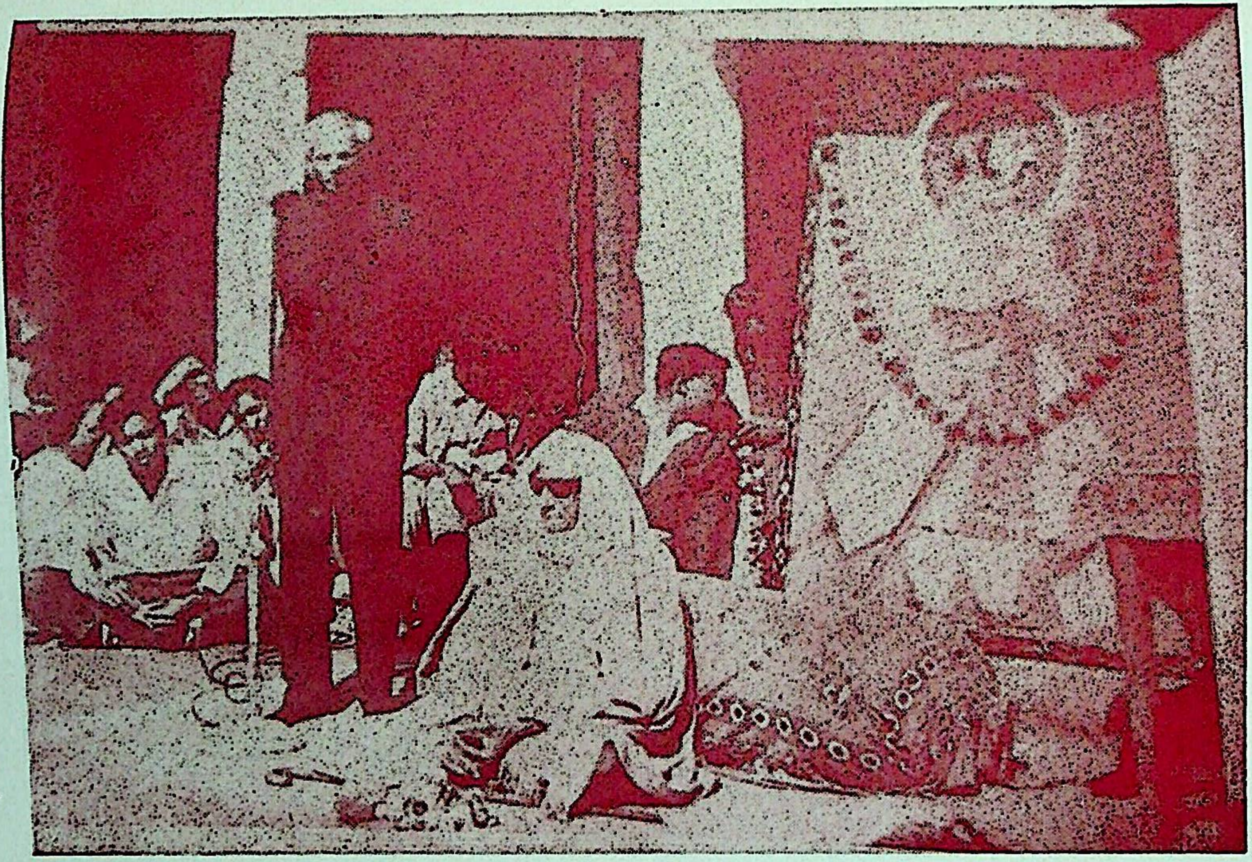

मुनि जिनविजयजी की अध्यक्षता में कुम्भापचशती
समारोह में पत्रवाचन करते हुए
डॉ० गोपीनाथ शर्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनि जिनविजयजी और संत विनोबा

संत विनोबा को सर्वोदय साधना आश्रम
समर्पित करते समय
चन्देरिया, १९५०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

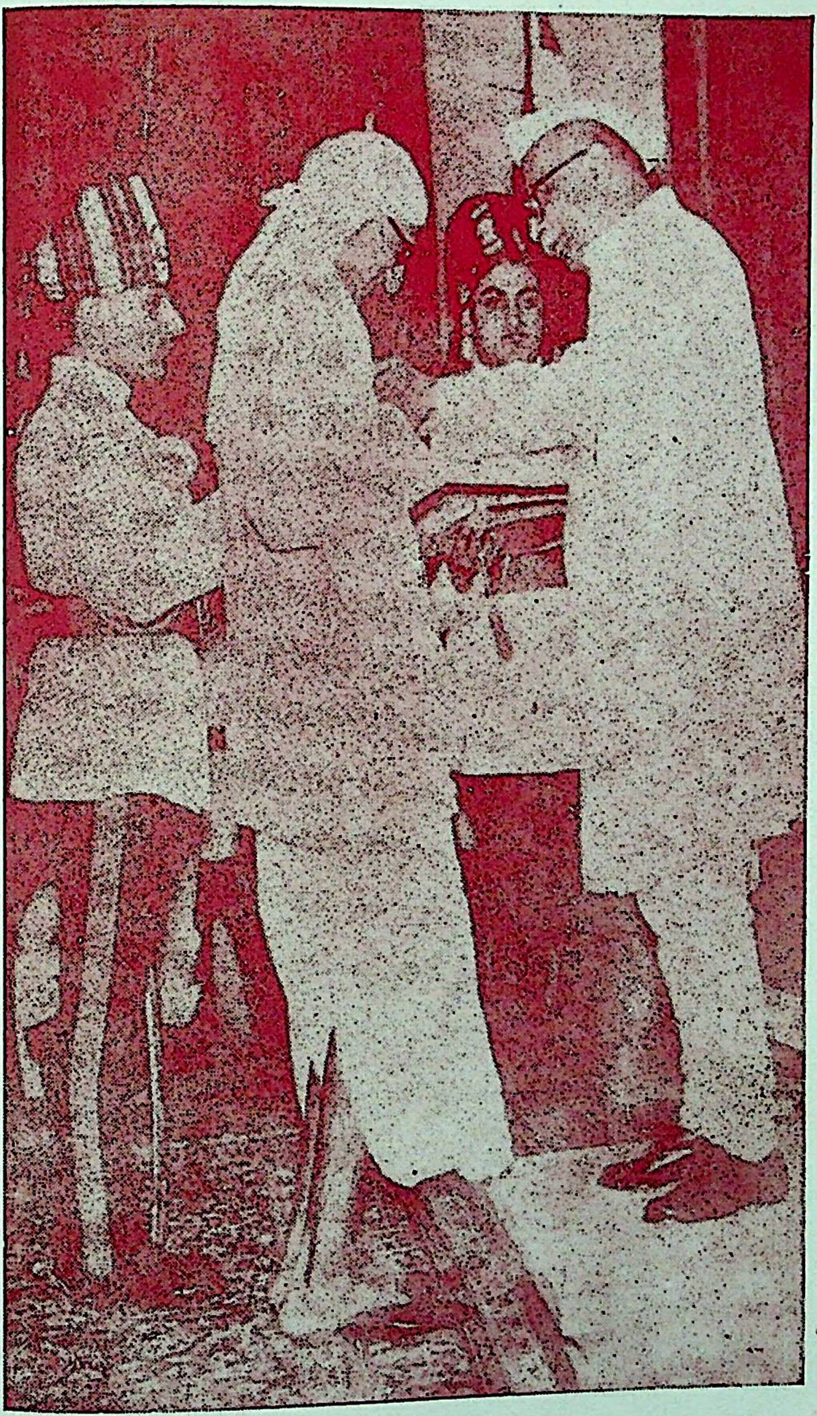

राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद द्वारा
पद्मश्री की उपाधि से
अलंकृत होते हुए
(१९६२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

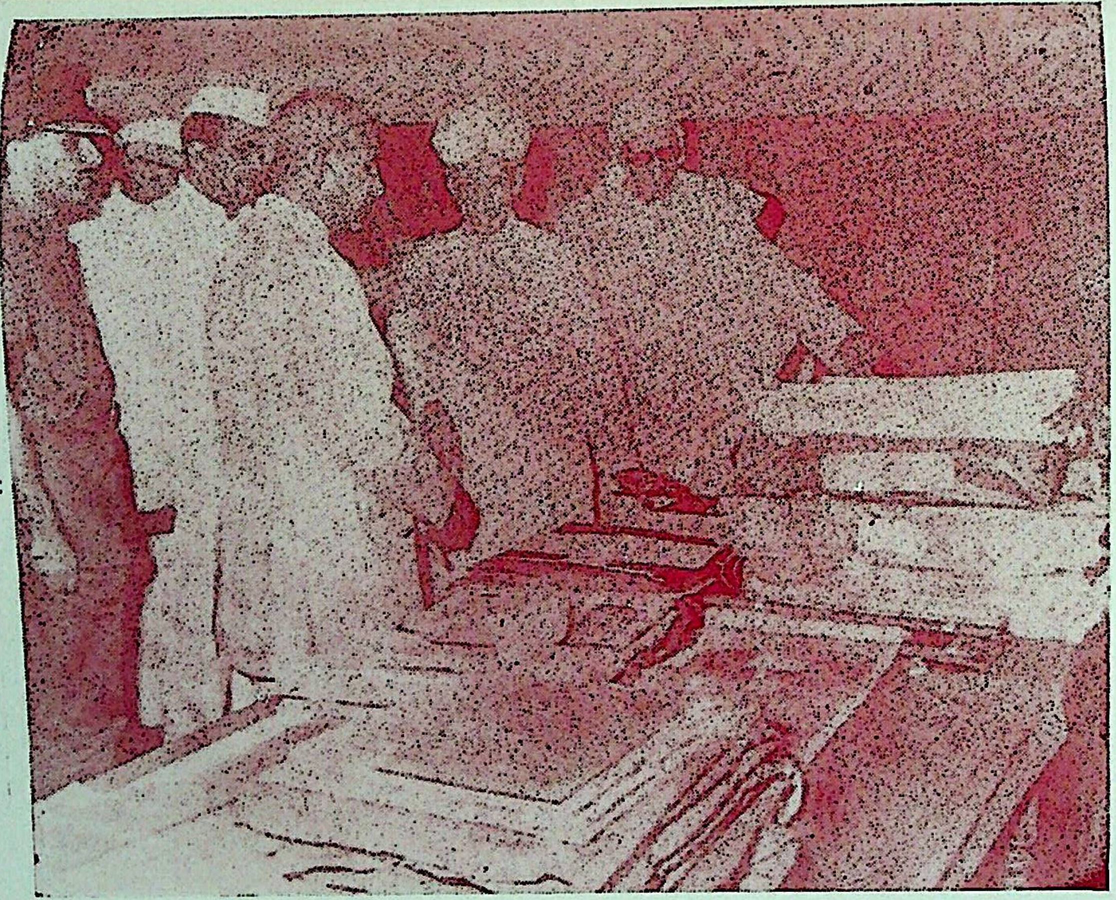

राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् को
राजस्थान के हस्तलिखित ग्रन्थो का परिचय देते हुए
(जोधपुर १९६२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

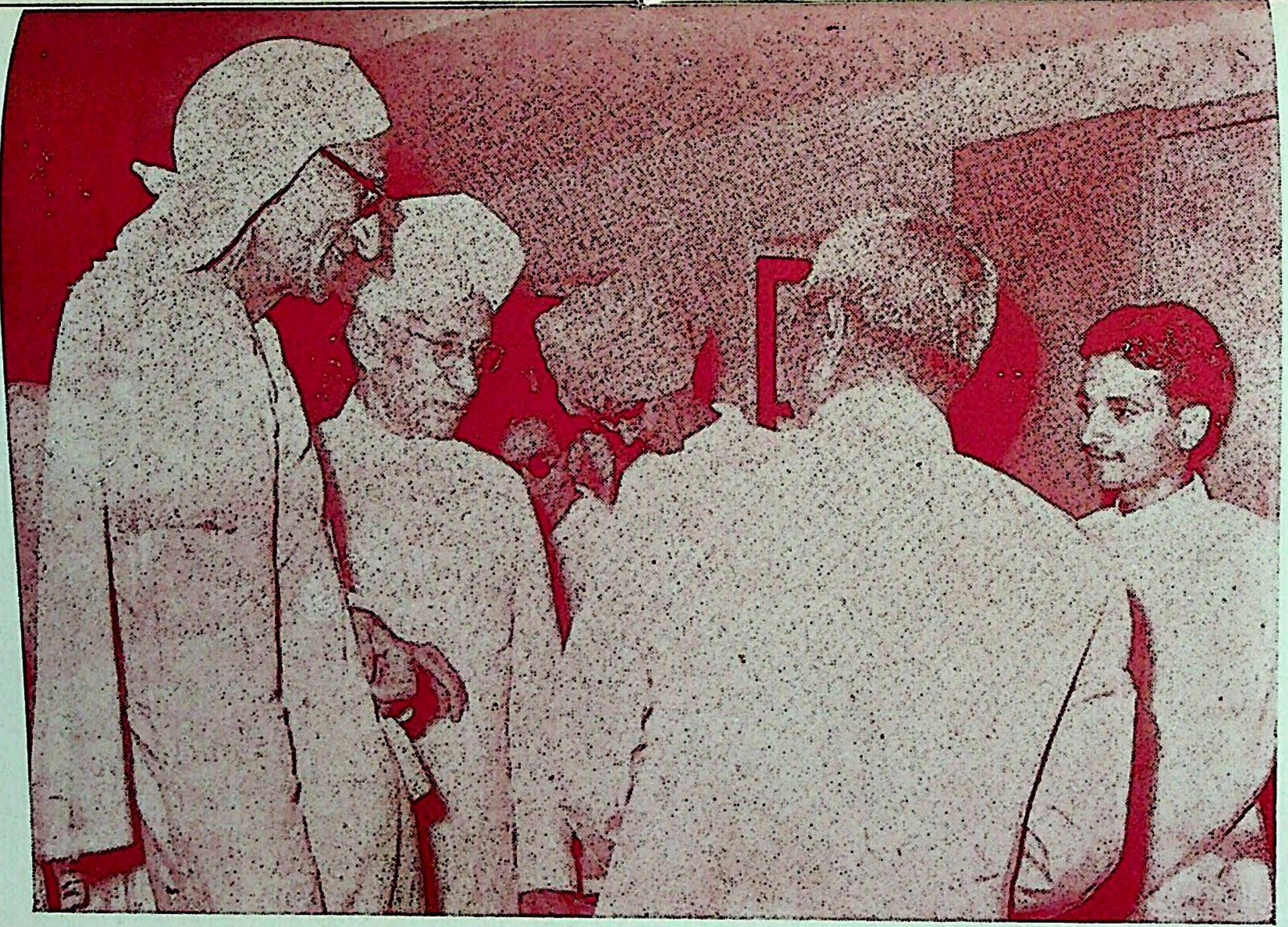

राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन को प्रतिष्ठान के अधिकारियों का परिचय देते हुए मुनि जिनविजयजी
(जोधपुर १९६२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

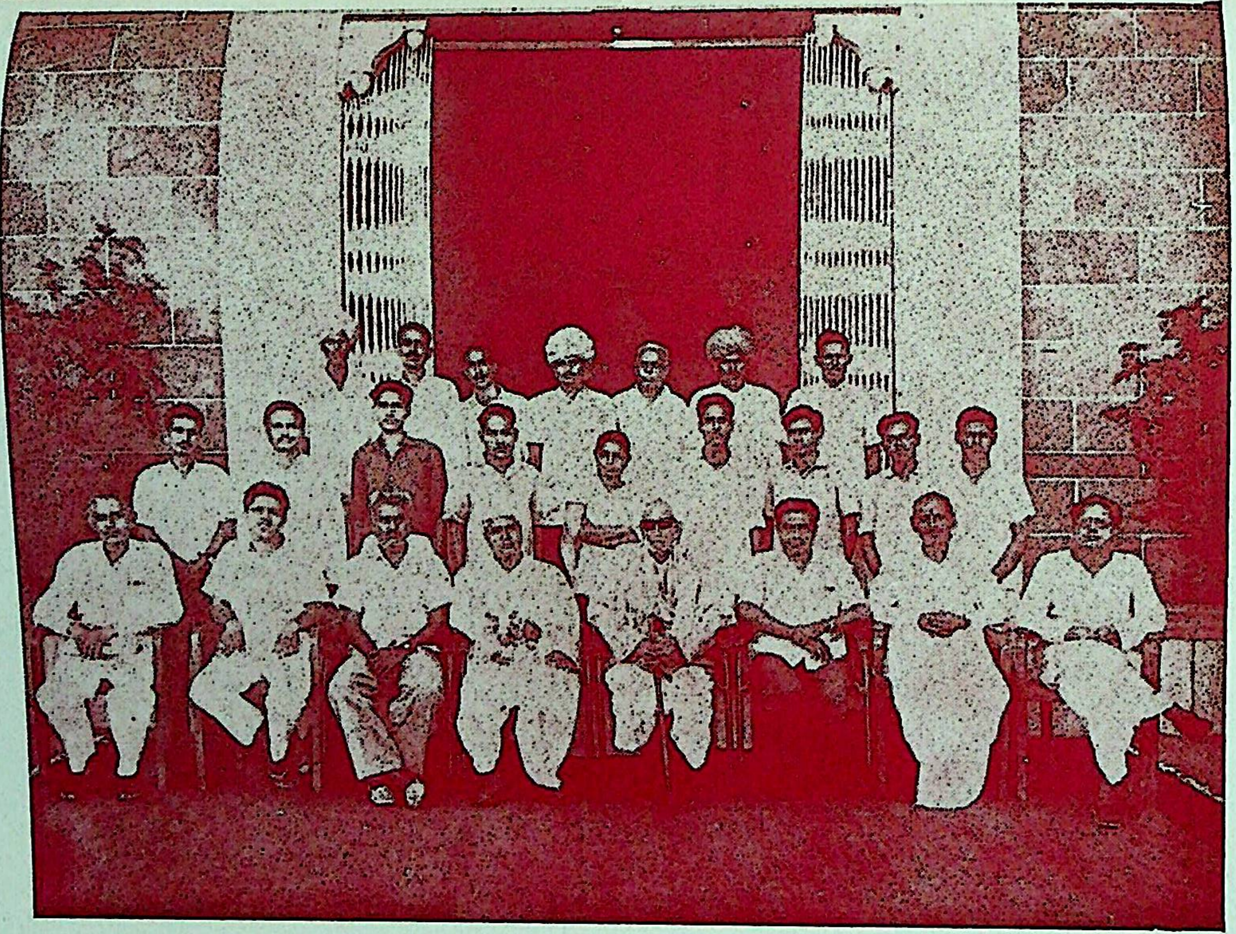

मुनि जिनविजयजी अपने ७७वें जन्मदिवस पर प्रतिष्ठान परिवार के साथ
जोधपुर (२७ जनवरी, १९६४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

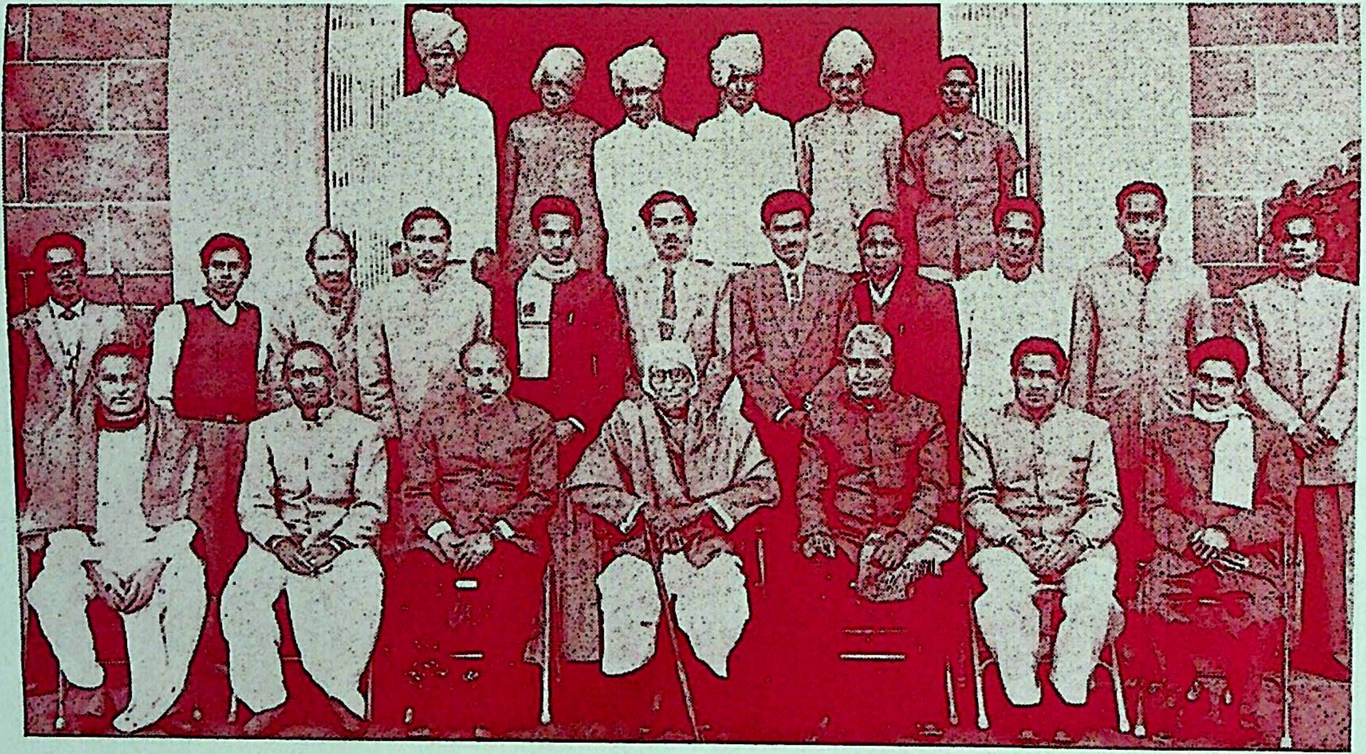

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान से सेवानिवृत्ति
के अवसर पर प्रतिष्ठान परिवार के साथ
(जुलाई १९६७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

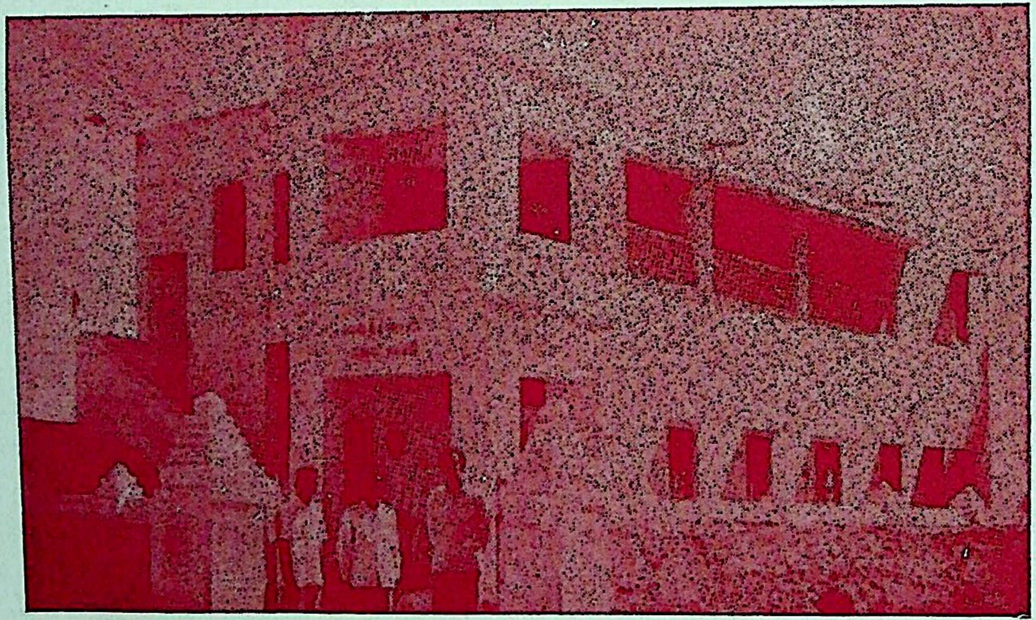

राजकुमारी बालमन्दिर, रूपाहेली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

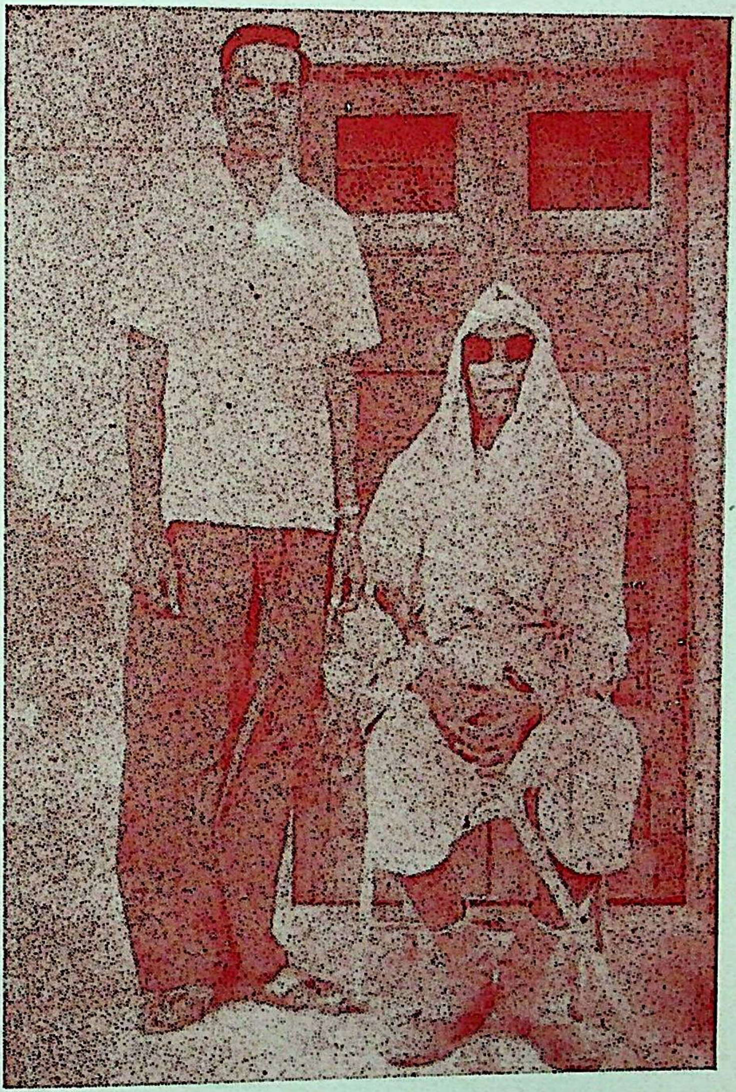

राजकुमारी बालमन्दिर, रूपाहेली के प्रबन्धक
श्री काशीराम शर्मा के साथ
मुनि जिनविजयजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनि जिनविजयजी का पार्थिव शरीर:
श्री नवरतन पटवारी और श्री भंवरलालजी सीसोदिया
आदि शोकाकुल मुद्रा में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनि जिनविजयजी के अंतिम दर्शन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

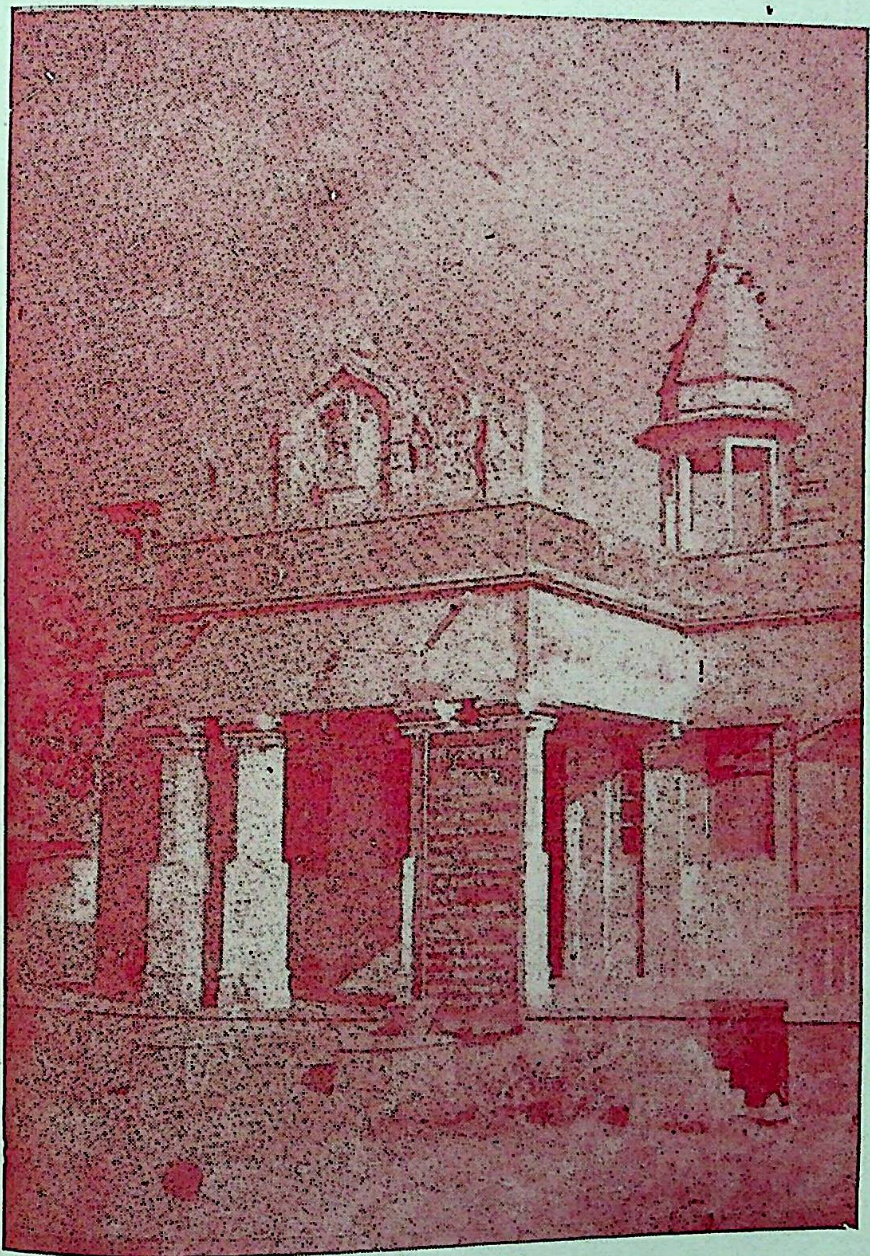

हरिभद्र सूरि स्मारक मन्दिर
(चित्तौड़गढ़)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

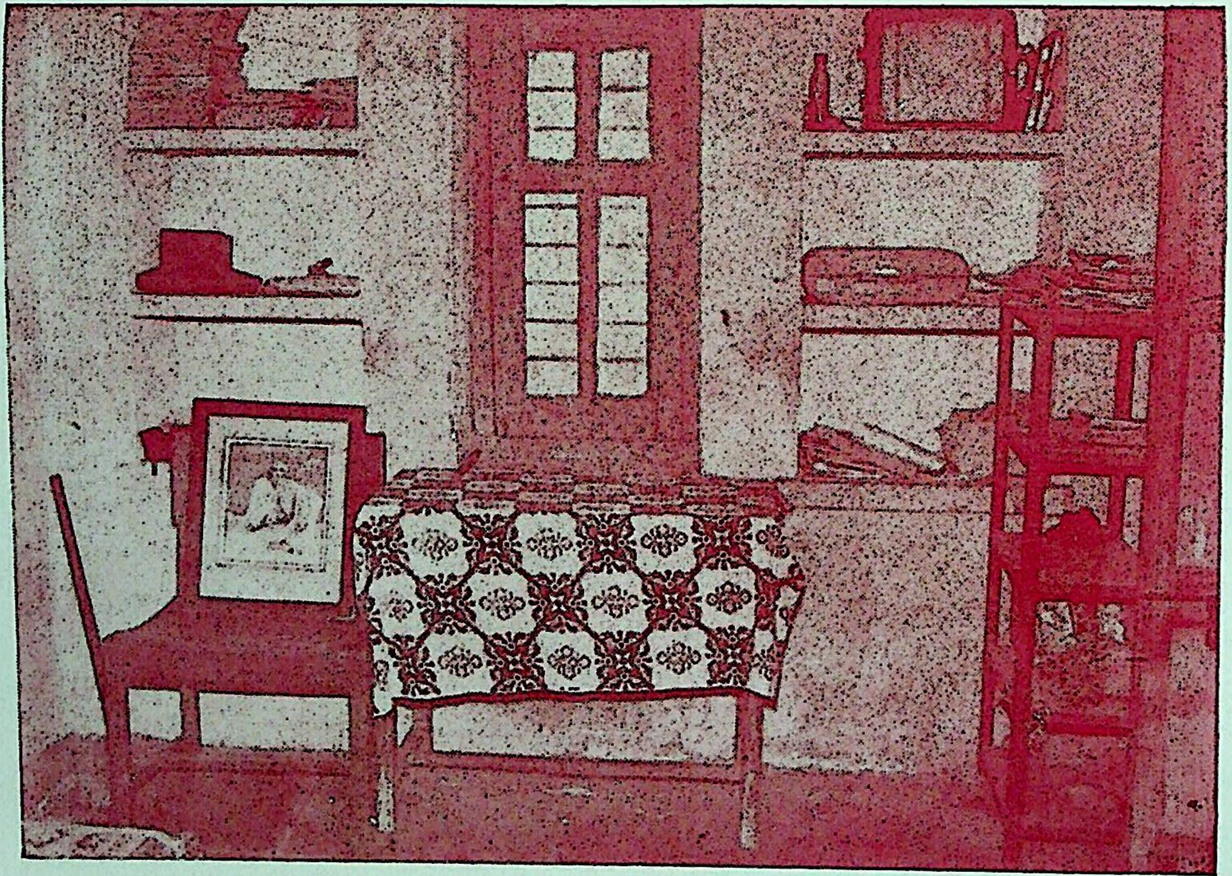

मुनि जिनविजयजी का प्रावास कक्ष
(चन्देरिया)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

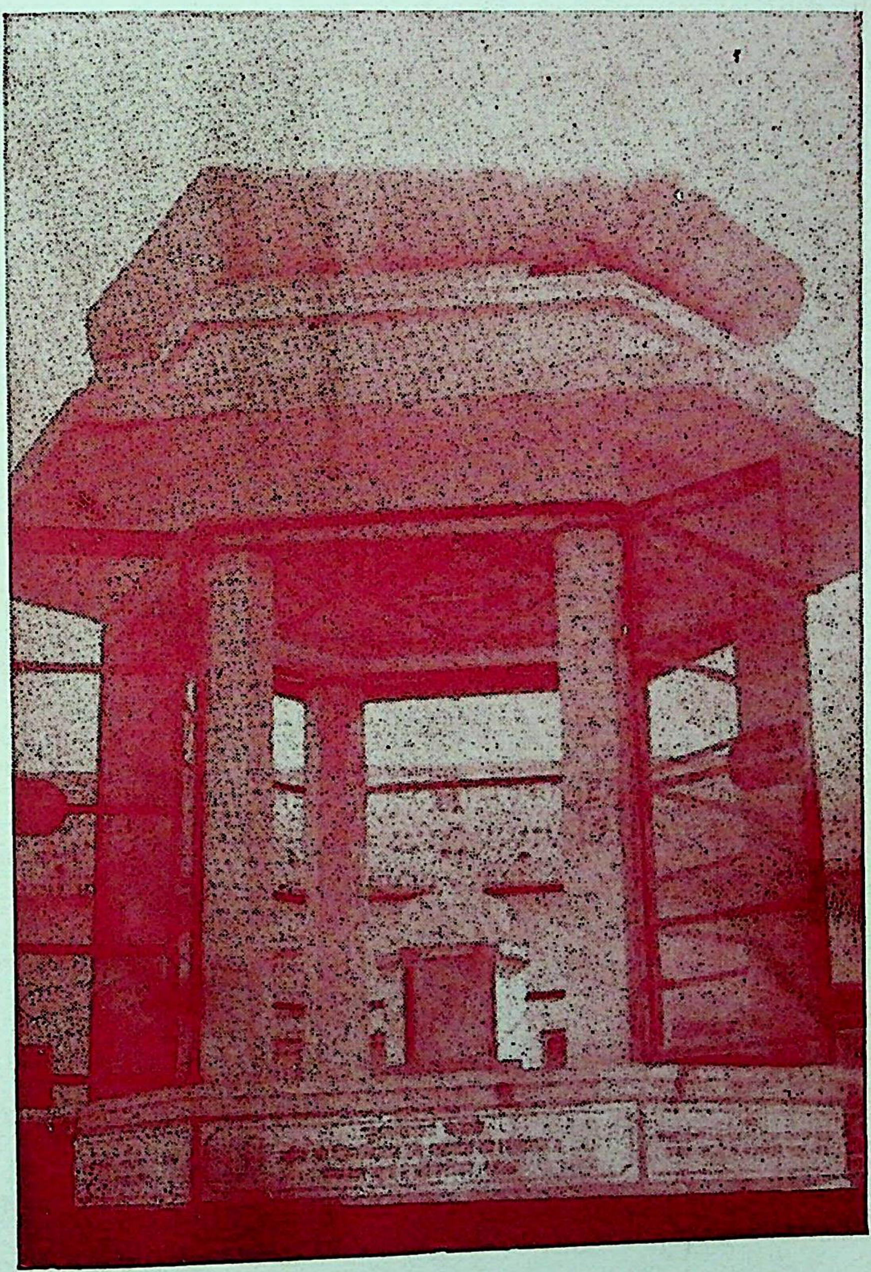

स्वर्गीय मुनि जिनविजयजी का स्मारक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

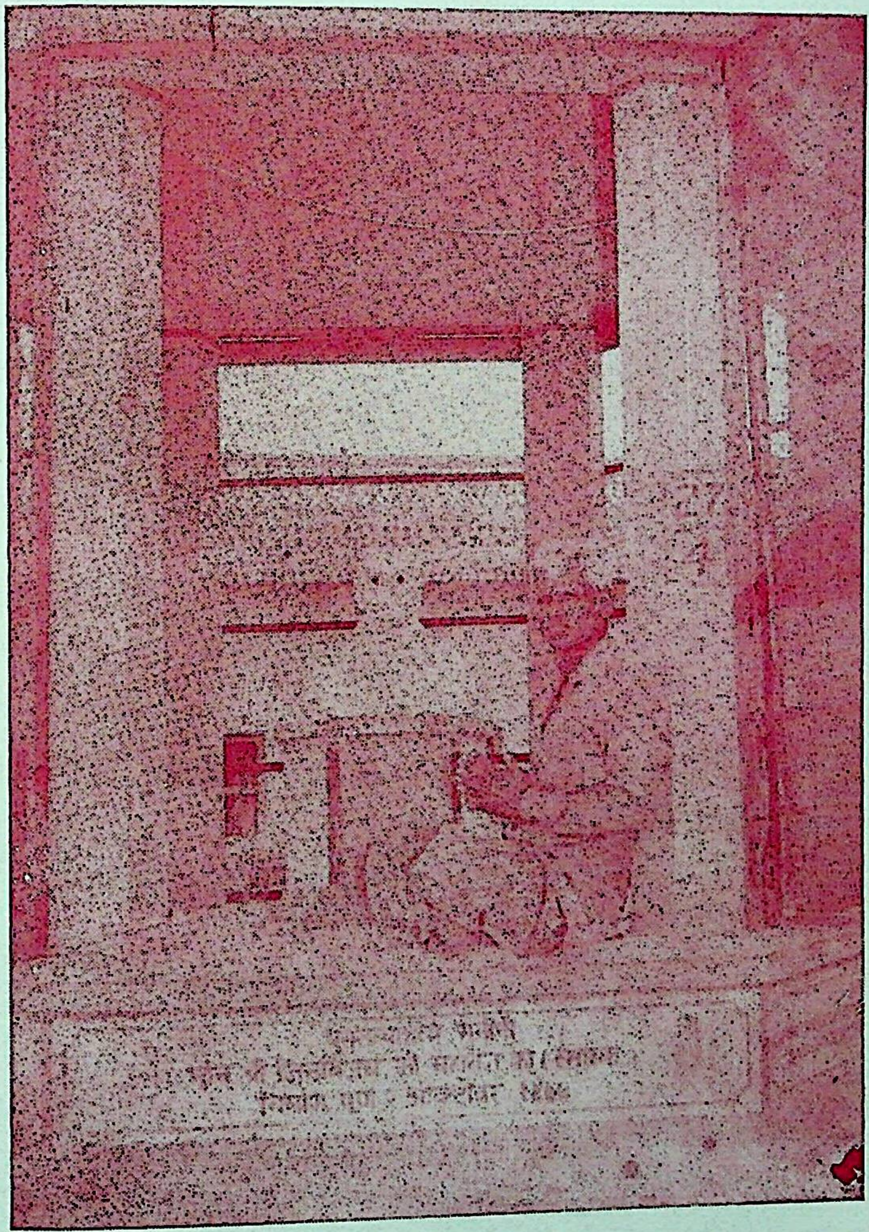

मुनि जिनविजयजी के स्मारक पर
उनका निजी सेवक श्री मांगीलाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

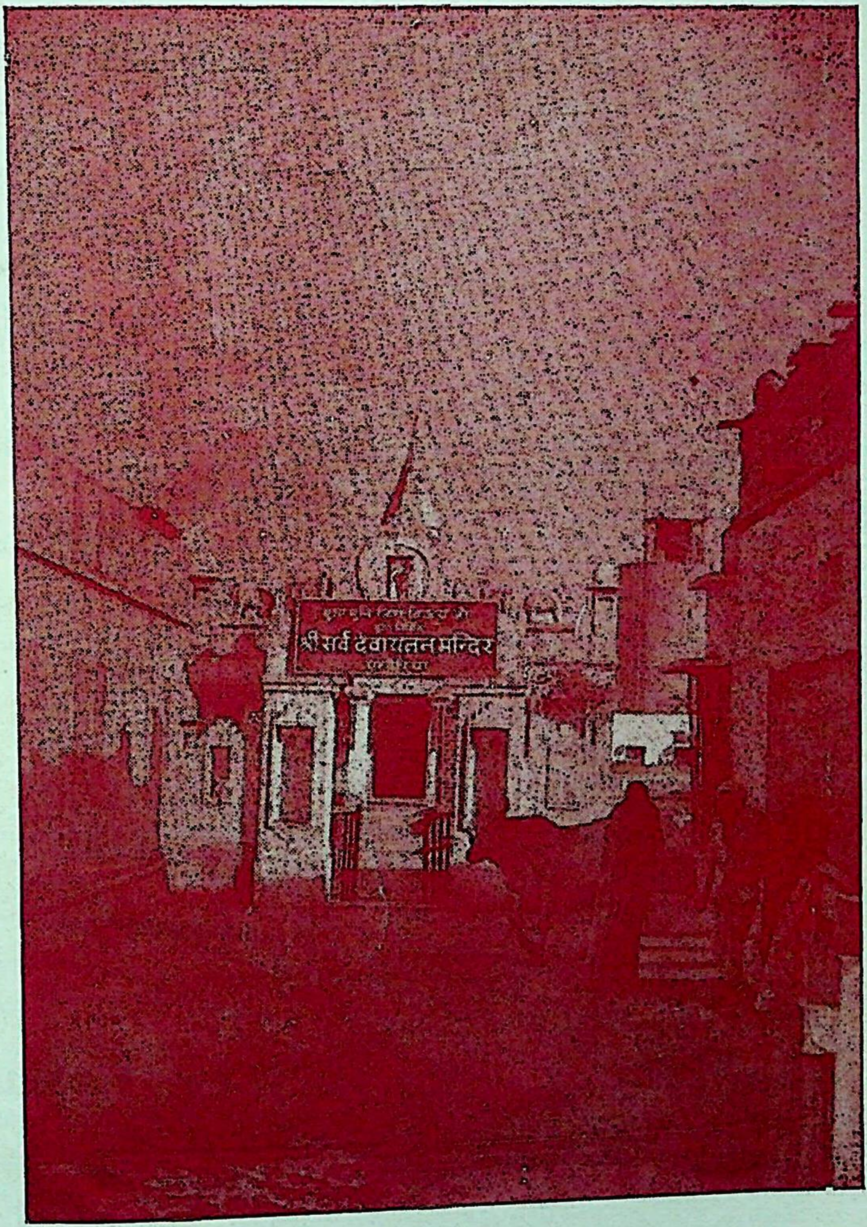

सर्व देवायतन मन्दिर, चन्देरिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

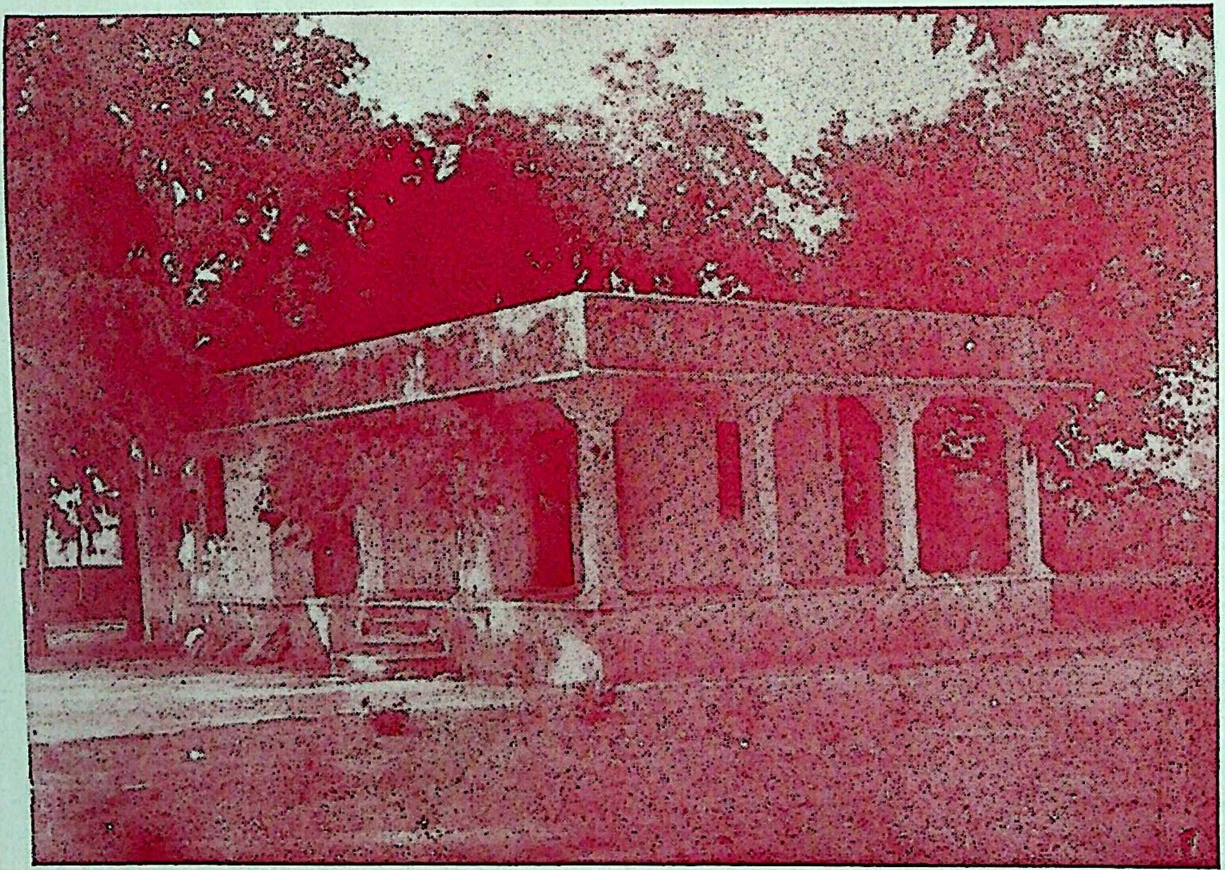

सर्वोदय साधना आश्रम
चन्देरिया (चित्तौड़गढ़)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi